[बंगाल-हिन्दी-मण्डल, द्वारा पुरस्कृत]

विजयनगर-साम्राज्य का इतिहास

[कई चित्रों तथा मानचित्रों सहित]

भूमिका लेखक
डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी, डी-एस. सी. (लन्दन)
अध्यक्ष, इतिहास विभाग, प्रयाग विश्व-विद्यालय

लेखक
श्री वासुदेव उपाध्याय, एम० ए०
(मंगलाप्रसाद-पारितोषिक विजेता)

बंगाल-हिन्दी-मण्डल के लिए प्रकाशित
स स्ता सा हि त्य मं ड ल
नई दिल्ली

प्रकाशक,
मार्तण्ड उपाध्याय, मन्त्री,
सस्ता साहित्य मण्डल,
नई दिल्ली।

प्रथम संस्करण
१९४५

मूल्य
चार रुपया

मुद्रक
अमरचन्द्र जैन,
राजहंस प्रेस,
सदर बाजार, दिल्ली

निवेदन

बंगाल-हिन्दी-मण्डल के विविध उद्देश्यो में एक यह भी है कि राष्ट्र-भाषा हिन्दी मे अपने-अपने विषय के उत्कृष्ट विद्वानो से, उन्हे आदर-पूर्वक पारितोषिक भेट करके, उत्तम प्रामाणिक पुस्तके लिखाई जाये और उचित समझा जाय तो, पुरस्कृत पुस्तकों को प्रकाशित भी कराया जाय।

सन् १९४४ ई० में जिन हस्तलिखित पुस्तकों पर बंगाल हिन्दी-मंडल ने पारितोषिक प्रदान किये थे, उनमें से हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ ऐतिहासिक, विद्वान् श्री वासुदेव उपाध्याय, एम० ए० लिखित 'विजयनगर-साम्राज्य का इतिहास' नामक यह पुस्तक प्रकाशित की जा रही है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक इतिहास विषयक ग्रन्थों के लिखने में खासी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। 'विजयनगर-साम्राज्य का इतिहास' मे पाठको को लेखक का गम्भीर तथा खोजपूर्ण ऐतिहासिक अध्ययन मिलेगा, ऐसी आशा है।

यदि इस पुस्तक ने विद्वानो मे उचित आदर पाया तो बंगाल-हिन्दी-मण्डल अपने विनम्र उद्योग को सफल समझेगा।

दिल्ली
५-७-४५

मन्त्री,
बंगाल-हिन्दी-मण्डल

वक्तव्य

किसी देश की सस्कृति उस देश के इतिहास मे सन्निहित रहती है। अतएव उस देश की सभ्यता तथा सस्कृति का अनुशीलन करने के लिए हमे उसका इतिहास जानना आवश्यक है। जब तक रोम और ग्रीस के पुरातन इतिहास का अध्ययन न किया जाय तब तक उसकी महत्ता का परिचय प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। ठीक यही दशा भारतवर्ष की भी है। यदि हमे अपने प्राचीन गौरव को जानना है तो हमे प्राचीन इतिहास पर दृष्टिपात करना नितान्त आवश्यक है।

भारत मे समय-समय पर अनेक साम्राज्य स्थापित हुए। वे उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँचे और अन्त मे काल के गाल मे सदा के लिए विलीन हो गये। इन मे कुछ ऐसे भी साम्राज्य हैं जिनका नाम केवल कथा-शेष रह गया है और जिनके अतुल वैभव तथा कला-कौशल की स्मृति वे खण्डहर दिलाते हैं जो समय के थपेडे को सहकर भी आज अपना सिर उठाये खडे हैं। विजयनगर का साम्राज्य इन्ही साम्राज्यों में से एक हैं। इस साम्राज्य की महत्ता क्या थी तथा इसको भारतीय इतिहास मे क्यो इतना महत्त्व दिया जाता है इसका वर्णन अगले पृष्ठों मे पाठकों को मिलेगा। परन्तु यहा तो मुझे केवल इतना ही कहना है कि हिन्दू-साम्राज्य के प्रतिष्ठापक तथा हिन्दू-सस्कृति के रक्षक ये विजयनगर सम्राट न होते तो आज हमारी सस्कृति का नाम भी न रहता। सच तो यह है कि दक्षिण भारत मे भारतीय सस्कृनि को बचाने का श्रेय इन्हीं राजाओ को प्राप्त है।

यह अत्यन्त दुःख का विषय है कि आज से केवल पचास वर्ष पूर्व इन महाप्रतापी राजाओं का कोई नाम भी नही जानता था। भारतीय जनता इनको भूल चुकी थी और विजयनगर का महान् साम्राज्य 'एक भूला हुआ

साम्राज्य' समझा जाने लगा था। इनकी पवित्र स्मृति को याद दिलाने वाले हम्पी के वे टूटे-फूटे खण्डहर थे जो मृत्यु के मुख मे जाने की प्रतीक्षा मे खडे थे। परन्तु सर्व प्रथम इस महान् साम्राज्य के इतिहास की ओर ई० सेवेल नामक विद्वान् का ध्यान आकर्षित हुआ, जिन्होंने अपनी सुप्रसिद्ध प्रामाणिक पुस्तक 'ए फारगाटेन इम्पायर' लिखकर इस साम्राज्य को प्रकाश मे लाने का प्रशसनीय कार्य किया। सेवेल की पुस्तक का नामकरण यथार्थ ही था। सेवेल के पश्चात् दक्षिणी भारत के ऐतिहासिको का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ और उन लोगो ने लगन के साथ इसका अध्ययन करना प्रारम्भ किया। इन विद्वानो मे डा० कृष्णस्वामी, डा० सालातोर तथा फादर हेरास का नाम उल्लेखनीय है। इन विद्वानो ने इस साम्राज्य के इतिहास पर प्रामाणिक पुस्तके लिखी हैं और इनकी शिष्य-मण्डली भी इस दिशा मे सराहनीय कार्य कर रही है। परन्तु यह सचमुच हमारे दुर्भाग्य की बात है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी मे इस विषय पर एक भी पुस्तक अभी तक नहीं लिखी गई। विजयनगर का यह प्रस्तुत इतिहास इसी अभाव की पूर्ति करने का एक विनम्र प्रयास है। इस ग्रन्थ मे विजयनगर साम्राज्य के राजनैतिक तथा सास्कृतिक इतिहास का सक्षिप्त तथा प्रामाणिक विवेचन किया गया है। परन्तु मुझे इसमे कहा तक सफलता मिली है यह बतलाना तो विद्वानो का ही कार्य है। जहा तक मुझे मालूम है, इस विषय पर हिन्दी मे यह सर्वप्रथम मौलिक ग्रन्थ है। मैने केवल विजयनगर-साम्राज्य के इतिहास को हिन्दी पाठको के लिए अन्धकार से हटाकर प्रकाश मे लाने का उद्योग किया है। यदि इस इतिहास को पढकर एक भी भारतीय अपनी प्राचीन-सस्कृति की श्रेष्ठता का गर्व अनुभव करेगा तो मै अपने प्रयास को सफल समझू गा।

अन्त मे इस इतिहास के लिखने मे जिन लोगो से मुझे सहायता मिली है उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना मै अपना परम-कर्तव्य समझता हू। सर्व प्रथम मैं डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी, एम० ए०, डी-एस० सी० को हृदय से धन्यवाद देता हूँ जिन्होने कृपाकर

इस ग्रन्थ की भूमिका लिखकर इसे गौरवान्वित किया है। गुरुवर डा० ए एस. अल्तेकर एम ए, डी. लिट् तथा डा० रमाशकर त्रिपाठी एम. ए, पी-एच डी का मै हृदय से आभारी हूँ जिनके समीप रहकर मुझे इतिहास के अध्ययन का सुअवसर मिला है। बगाल हिन्दी-मण्डल, दिल्ली के अधिकारियो–विशेषत श्री वियोगी हरि जी को मै किन शब्दो मे धन्यवाद दू जिन्होने इस पुस्तक को पुरस्कृत कर मेरे उत्साह को बढाया है। मित्रवर डा वासुदेव शरण अग्रवाल एम ए, पी एच डी का मै अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिन्होंने प्रातीय म्यूजियम लखनऊ में अनुसन्धान करने का मुझे सुअवसर प्रदान किया। पूज्य भ्राता प्रो० बलदेव उपाध्याय एम ए, साहित्याचार्य का मैं अभिवादन करता हूँ जिनकी कृपा से ही यह स्वल्प ज्ञान राशि मै प्राप्त कर सका हूँ, अन्त मे, मै श्री मार्तण्ड उपाध्याय को धन्यवाद देना कैसे भूल सकता हूँ जिनके प्रयत्नो से यह पुस्तक स्वच्छ तथा सुन्दर प्रकाशित हो सकी है।

जल्दी के कारण भूले इसमे कुछ रही हैं जिनके लिए मैं विद्वानो के समक्ष क्षमाप्रार्थी हूँ।

प्रयाग
५–७–४५

वासुदेव उपाध्याय

भूमिका

दक्षिण में ईसा की तेरहवी सदी तक हिन्दुओ की शक्ति अक्षुण्ण रही। हिन्दू-धर्म, उसकी सस्थाओ और सामाजिक व्यवस्थाओ का जैसा विकास दक्षिण मे हुआ वैसा गुप्त साम्राज्य को छोडकर सम्भवतः उत्तर भारत मे कहीं भी न हो सका। चीन, मध्य एव पश्चिमी एशिया की बर्बर तथा असभ्य जातियो के प्रवाह से प्रवाहित होने के कारण हिन्दू व्यवस्था उत्तरी भारत मे व्यवस्थित होकर पूर्णतया विकसित न होसकी। राजनैतिक, धार्मिक एव सामाजिक आधियो के बवडर मे उत्तरी भारत अनेक शताब्दियो तक ऐसा फसा रहा कि जिससे वहा का जीवन बहुत कुछ अस्त-व्यस्त रहा। उस प्रतिकूल वातावरण के कारण हिन्दू सभ्यता एवं सस्कृति का केन्द्र उत्तर से धीरे धीरे दक्षिण में चला गया। वहा उसकी बहुत कुछ रक्षा और वृद्धि हुई। जिसकी साक्षी वहा की वास्तु-कला, चित्र कला, मानसिक वृत्तिया, धार्मिक एव सामाजिक जीवन और साहित्य सृष्टि-आज तक प्रत्यक्ष रूप से दे रहे हैं।

तेरहवी शती के अन्तिम वर्षों मे इस्लाम मतावलम्बी तुर्कों और अफगानों ने दक्षिण मे बढना आरम्भ किया। जातीय दुर्भाग्य जातीयता एव सतर्कता के अभाव से क्रमशः दक्षिण मे भी वैसी ही परिस्थिति हो गई जैसी उत्तर मे थी। पहले देवगिर के राज्य का पतन हुआ। जिससे दक्षिण का सिहद्वार आक्रमणकारियों के लिए खुल गया। खिलजी सेनाए अपूर्व वेग से बढ़ती हुई काञ्ची, मधुरा, श्रीरङ्गम् एव रामेश्वरम् तक पहुच गई। दक्षिण के हिन्दू राज्यो के अस्त हो जाने से वहा के समाज की दयनीय दशा होगई और हिन्दू सस्कृति के लिए विपत्तिजनक वातावरण प्रकट होगया।

इस बहुमुखी विपत्ति का शमन दमन कठिनाइयो से कटकित था।

तथापि हिन्दू शक्ति हताश न हुई। आत्म और गौरव रक्षा के लिए प्रयत्न होते रहे। उन्ही प्रयत्नों मे सबसे प्रमुख और सफल विजयनगर राज्य की स्थापना हुई। इस राज्य ने मुसलमानी राज्य का तुङ्गभद्रा से आगे बढना यदि असम्भव नही तो दुस्तर और दुर्गम तो कर ही दिया। केवल इसी सेवा के लिए विजयनगर का राज्य भारतीय इतिहास मे विशेष महत्त्व का अधिकारी है। यदि अधिक नहीं तो कम-से-कम उतने ही महत्त्व की बात यह भी है कि उस राज्य ने हिन्दू सस्कृति की रक्षा ही नही वरन् देश-काल के अनुसार उसका सवर्द्धन किया। आर्थिक तथा सास्कृतिक उन्नति में इस राज्य ने जो सेवाए की वे भी उज्ज्वल और आदरणीय हैं। इस कथन मे मुझे तो कोई सकोच नही कि विजयनगर राज्य ने हिन्दू विद्या, सस्कृति, कला, मर्यादा की जैसी रक्षा और सेवा की वैसी महाराष्ट्र साम्राज्य द्वारा न हो सकी। उसका जो भी कारण हो किन्तु ऐतिहासिक स्थिति ऐसी ही है। इस राज्य की छत्रछाया मे वेद, वेदान्त, उपनिषद धर्मशास्त्र, मीमासा आदि का जैसा अध्ययन, पठन-पाठन और प्रचार हुआ वैसा फिर कभी किसी हिन्दू राज्य मे न हो सका। विशेष रूप से वेद के उद्धार का श्रेय इसी राज्य के प्रकाण्ड पडित राज्य-आचार्य सायण को ही है। इसके अतिरिक्त वैष्णव शैव, और जैन मतो की विषमता को कम करके उनकी उन्नति के लिए साधन भी इस राज्य ने उपस्थित किये। इस राज्य के प्राचीर के बल पर कला व कौशल सकुशल समृद्धि पाते रहे।

इस प्रकार सन् १३३६ से १५६५ अर्थात् सवा दोसौ वर्ष तक इसने हिन्दू स्वतन्त्रता और सस्कृति की पताका ऊँची रखी। इस अवसर से दक्षिण में वह आत्म विश्वास पूर्ण सस्कृतिक परिस्थिति उत्पन्न हो गई जिसके कारण विजयनगर के तिरोहित होने पर भी आक्रमणकारियों को वह सफलता न मिल सकी जो उन्हें पहले मिल चुकी थी। यही नहीं, वे भी ऐसे तेजहीन हो गए और उनके अस्त्र-शस्त्र ऐसे कुण्ठित हो गए कि
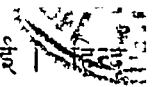
उनसे सास्कृतिक त्तति की सम्भावना बहुत ही कम रह गई। हिन्दू संस्कृति के गुण दोषों की छाया तो अन्यत्र भी देखने को मिलती है किन्तु उसके गुणों की छटा जैसी इस राज्य के आश्रय मे सुदूर दक्षिण मे रही और अब भी कुछ-कुछ सुदूर दक्षिण मे दिखाई पडती है, वैसी कही नहीं प्राप्त है।

उपर्युक्त का मुख्य आशय विजयनगर के ऐतिहासिक एव सस्कृतिक महत्ता की ओर ध्यान आकर्षित करना है। उत्तर के ऐतिहासिक सेवक अभी अपनी ही समस्याओ के अनुसधान मे इतने दत्तचित्त हैं कि दक्षिण के इतिहास अनुशीलन के लिए उन्हे अवकाश न मिल सका। दक्षिण के इतिहास सेवका का ध्यान स्वभाविकतया उस ओर गया। वहा के इतिहास के साधन उन्हे सुलभ थे। राइस, सेवेल, फादर हेरास आदि योरपीय और कृष्णस्वायी आयगर, सालातोर आदि दाक्षिणात्य इतिहास-सेवको ने विजयनगर राज्य के इतिहास और सस्कृति पर अच्छा प्रकाश डाला। और सामग्री एकत्रित की। तथापि यह नही कहा जा सकता कि उसके इतिहास का सागोपाग अनुसधान एव मार्मिक विवेचन समाप्त हो गया। अभी तक बहुत कुछ करना रह गया है। बहुत सी बातों मे अभी तक विवाद हो रहा है। बहुत सी सामग्री अभी तक एकत्र होना बाकी है। उस सब सामग्री का मथन, जो अभी तक प्राप्त हुई है। किया जा रहा है। जो अग्रेजी पुस्तके विजयनगर के इतिहास पर लिखी गई हैं। उनकी संख्या विषय के महत्त्व के अनुसार कम हैं। हिन्दी मे तो इसपर कोई भी ग्रंथ न था।

उत्तर के इतिहास सेवियों मे उस साम्राज्य पर सिवा वासुदेवजी उपाध्याय के सम्भवतः अन्य किसी ने इतना ध्यान नही दिया। किन्तु यही नही उन्होने अपने अध्ययन का फल हिन्दी साहित्य एवं हिन्दी पाठकों को देकर सर्वथा प्रशसनीय कार्य किया है। गुप्त साम्राज्य के इतिहास के अतिरिक्त उनका सरल सुग्राह्य और सारपूर्ण "विजयनगर-साम्राज्य का इतिहास" हिन्दी के ऐतिहासिक साहित्य की आवश्यक पूर्ति करता है।

इसके लिए हिन्दी साहित्य उनका अभारी है। प्रस्तुत ग्रथ में राजनीतिक इतिहास के अतिरिक्त विजयनगर की आर्थिक, सामाजिक साहित्यिक, एव धार्मिक दशा का सरल और सुबोध वर्णन है। जिससे पुस्तक की उपयोगिता बढ गई है।

काशी विश्व विद्यालय के इतिहास विभाग से जो फल फले हैं उनमें भी उपाध्यायजी कुछ अधिक मोहक और उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। अभी तो उनका यौवन काल है। अतएव भविष्य में उनसे बहुत कुछ आशा है। उपाध्यायजी जिन कठिनाइयों और प्रतिकूल परिस्थितिया मे जिस विश्वास और लगन के साथ काम कर रहे हैं वह आश्चर्य, कुतूहल और उत्साह-वर्द्धक है। वैसी स्थिति में जमकर अधिक परिश्रम करना और अपनी कृतियो को निरभिमान रहकर भूल जाना केवल उदात्त और विशाल हृदय व्यक्तियो मे ही देखा गया है। मे उनको इन गुणों के लिए बधाई देता हूँ। आशा है कि अन्य नव शिक्षित विद्या-प्रेमियों अथवा विद्याव्यसनी उनके इस गुण का अनुकरण कर सेवा के सच्चे अधिकारी एव उज्वल यश के पात्र बनेगे।

बगाल हिन्दी मडल ने इस इतिहास का आदर करके जिस विवेक का परिचय दिया है वह आशा-जनक है। मै भी इसका अभिवादन करता हूँ। और मगल कामना सहित हिन्दी के पाठकों और इतिहास प्रेमियो का ध्यान इस उपहार की ओर आकर्षित करता हूँ। मुझे पूरी आशा है कि वे इसका यथष्ट आदर करेगे।

रामप्रसाद त्रिपाठी,

इतिहास विभाग

प्रयाग विश्व-विद्यालय

१४-७-४५

विषय-सूची

संकेत-शब्द-सूची

अ० शा० —अर्थ-शास्त्र
आ० स० रि० —आर्क्योलाजिकल सर्वे रिपोर्ट
आरविदु —हिस्ट्री आफ आरविदु डाइनेस्ट्री
इ० ए० —इण्डियन एन्टिक्वेरी
ए० (एपि०) इ०—एपिग्रेफिका इण्डिका
ए० (एपि) कर०—एपिग्रेफिका करनाटिका
ए० कले० —एपिग्रेफिक कलेक्शन
एपि० रि० —एपिग्रेफिक रिपोर्ट
ए फार० इम्पा०—ए फारगाटेन इम्पायर
कन्ट्रीब्यूशन —कन्ट्रीब्यूशन आफ साउथ इण्डिया टु इण्डियन कलचर।
छा० उप० —छान्दोग्य उपनिषद्
जे० आर० ए० एस—जनरल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी।
जे० इ० हि० —जरनल आफ इण्डियन हिस्ट्री
जे० ए० एस० बी०—जरनल आफ एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल
जे. बी. एच. एस—जरनल आफ बाम्बे हिस्टारिकल सोसायटी।
जे.बी बी.आर ए एस—जरनल आफ बाम्बे ब्राञ्च आफ रायल एशियाटिक सोसायटी।
पराशर० —पराशर स्मृति
मनु० —मनुस्मृति
मै० आ० रि० —मैसूर आर्क्योलाजिकल रिपोर्ट
याज्ञ० —याज्ञवल्क्य-स्मृति
बृ० उप० —बृहदारण्यक उपनिषद्
शा० प० —शान्ति पर्व

शु० नी० —शुक्र-नीति
सा० इ० इ० —साउथ इण्डियन इन्सक्रुप्शन्स
सा० इ० ब्रो० —साउथ इण्डियन ब्रोन्जेज
सोर्सेज० —सोर्सेज आफ विजयनगर

इसके अतिरिक्त इलियट-हिस्ट्री का अर्थ 'हिस्ट्री आफ इण्डिया एज टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टोरियन्स' से तथा सालातोर-हिस्ट्री से अभिप्राय 'एडिमिनिस्ट्रेशन एण्ड सोसाइटी इन विजयनगर' नामक ग्रन्थों से समझना चाहिए।

दक्षिण भारतका प्राकृतिक मानचित्र
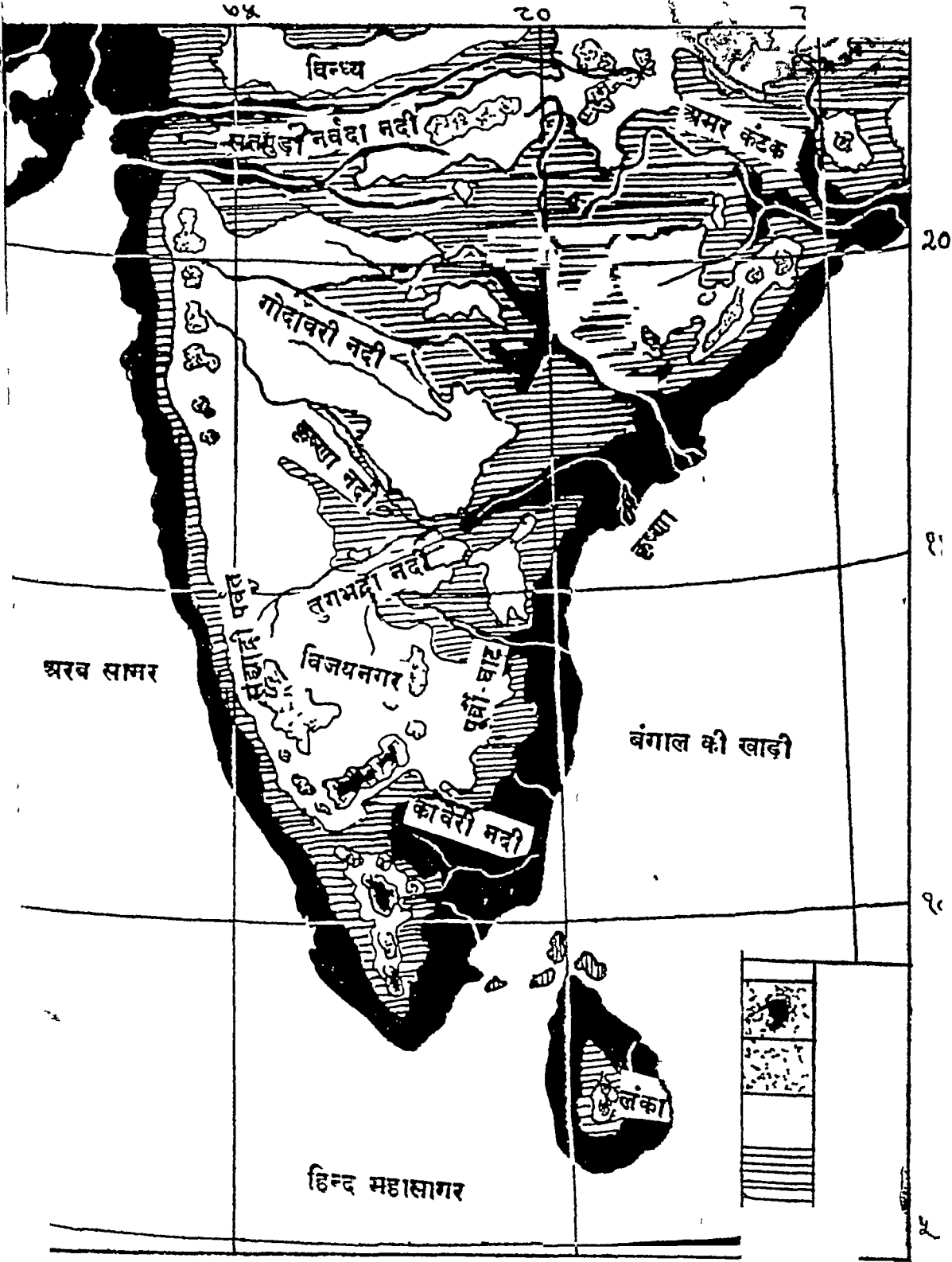
विजयनगर-साम्राज्य का इतिहास

: १ :

विजयनगर का परिचय

किसी देश के इतिहास के वास्तविक आधार वहाँ के मनुष्य तथा भूमि है। मनुष्यो के कार्यों का मूल कारण उस देश की प्राकृतिक अवस्था है। इतिहास मनुष्य के उन प्रयत्नो का विवरण प्रस्तुत करता है जिसे मनुष्य उस दशा में करने के लिए बाध्य हो जाता है। देश की प्राकृतिक अवस्था का—पहाड़ो, नदियों, जङ्गलो तथा जलवायु का प्रभाव मनुष्य के चरित्र तथा स्वभाव पर सदा दृष्टिगोचर होता है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य के कार्य उसकी परिस्थितियो के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। अतः किसी देश के इतिहास से भूगोल का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। (ऐतिहासिक भूगोल मे इस बात की विवेचना करने का प्रयत्न किया जाता है, जिससे उस देश का इतिहास और प्राकृतिक सम्बन्ध पूर्णतया ज्ञात हो सके)। भारतीय प्राकृतिक अवस्था ने राजनैतिक इतिहास को बहुत प्राचीन-काल से प्रभावित कर रक्खा है। इसी ने उत्तर तथा दक्षिण भारत मे अनेक भिन्नता पैदा कर दी। गगा-सिन्धु के मैदान के दक्षिणी भाग मे भारत का प्रायद्वीप फैला हुआ है जो पर्वतो के कारण पठार कहलाता है। दक्षिण भारत का पठार पश्चिमी भाग मे सब से ऊँचा है जिसे सह्याद्रि पर्वत या पश्चिमी घाट कहते है। पठार का ढाल उस पर्वत के कारण पूर्व की ओर है। इसी भाग से नदिया निकल कर दक्षिण में बहती हुई बङ्गाल की खाडी में गिरती हैं। पूर्वी घाट से लेकर कारोमण्डल

विजयनगर की भौगोलिक स्थिति

तक चौडी पृथ्वी के भाग को कर्नाटक कहते हैं। पश्चिम में मालाबार के किनारे की भूमि तंग है, तौभी विदेशियों को उसने आश्रय दिया। पश्चिमी घाट में कई स्थान पर ऐसे मार्ग भी हैं जहाँ से सदा आवागमन हुआ करता है और पठार के मनुष्य मालाबार के किनारे जा सकते हैं। विदेशी अपना व्यापारिक सम्बन्ध इन्हीं मार्गों के द्वारा स्थापित कर सके। पुर्तगाली लोगों ने विजयनगर से पूरी तरह से व्यापार सम्बन्ध कायम रक्खा। दक्षिण मे शासन करने वाले नरेशों ने अपनी जल-नौका तथा सेना को मालाबार के किनारे पर ही कायम किया। इस पठारी-भाग में कई एक नदियाँ भी बहती हैं जिन्होंने कितने साम्राज्यों तथा शासकों के उत्थान तथा पतन को देखा है। यहाँ की प्रधान नदी कृष्णा है जो पश्चिमी घाट से निकल कर बम्बई, हैदराबाद तथा मद्रास प्रान्त मे बहती हुई बगाल की खाडी मे गिरती है। इसी नदी के किनारे दक्षिण के विजयनगर तथा बहमनी राज्यों के बीच घोर ऐतिहासिक-संग्राम होते रहे। इसी कृष्णा की सहायक तुगभद्रा नदी के किनारे इस राज्य की प्रधान नगरी हम्पी जिले मे बसाई गई थी। अतएव तुगभद्रा को ही इस बात का गर्व है कि इसके गोद में विजयनगर पला था। विजयनगर के दुर्ग तुगभद्रा के दाहिने किनारे पर बनाये गए थे। बाया किनारा कम प्रसिद्ध न था। विजयनगर के पूर्वगामी होयसल नरेशों का प्रधान स्थान यहीं था। यह भाग उत्तरी भारत से अधिक दुर्गम है क्योंकि पठार दो हजार फीट के लगभग ऊँचा है। विन्ध्य तथा सतपुडा पर्वत की श्रेणियों ने उत्तर से आक्रमण को रोकने में पर्याप्त सहायता पहुँचाई। यदि एक अधिनायक स्वतन्त्रता की घोषणा करता तो उसको पराजित करने के लिए उत्तरी भारत में स्थित सम्राट् को सुदूर दक्षिण तक सेना पहुँचाने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पडता। उत्तरी मैदान तथा पठारी भाग की विभिन्न परिस्थितियों ने दोनों भागों के सामाजिक विचार, रीति-रिवाज, रहन-सहन तथा अन्य वस्तुओं में भिन्नता पैदा कर दी। उत्तरी भारत के महान् सम्राटों ने भी अपना शासन पठार में दृढ-रूप से स्थापित

करने मे असमर्थता दिखलाई। सुदूर दक्षिण में स्थित त्रिचनापल्ली, मदुरा आदि के नरेशो का भाग्य मध्य पठार के शासकों पर अवलम्बित रहा। साराश यह है कि पर्वतो तथा नदियों ने दक्षिण को बहुत समय तक बाहरी आक्रमणों से सुरक्षित रक्खा। सर्व-प्रथम उत्तरी भारत के मैदान पर प्रभुत्व स्थापित कर दक्षिण पर विजय प्राप्त करने का विचार बाहरी सम्राट् करते रहे। अग्रेजों से पूर्व भारत में विदेशी उत्तर-पश्चिम के मार्ग से आये। मैदान को जीत कर इस देश मे शासन आरम्भ कर दिया। दक्षिण पर विजय करने का सकल्प बहुत थोडे से शासकों ने किया था। मार्ग की कठिनता और प्राकृतिक दशा ही इसमे बाधक थे। यही कारण है कि विजयनगर-नरेश कई शताब्दियो तक स्वतन्त्र-रूप से शासन करते रहे। देश की पैदावार तथा वहाँ के पशुओं से ही किसी राज्य की समृद्धि होती है, अत. प्राकृतिक-विवरण के साथ-साथ विजयनगर-साम्राज्य के धान्य तथा पशुओं का वर्णन असंगत न होगा।

दक्षिणी पठार के हर एक प्रात की जलवायु गर्म है। यह गर्मी उत्तरी भारत के मुकाबिले में कम दुखदाई होती है। सर्दी के विचार से भी यहाँ पर ठढक की मात्रा कम नहीं है। इस कारण यहाँ के मनुष्य परिश्रमी होते हैं। दक्षिणी भारत की भूमि सदा से उर्वरा रही है। प्राचीन चट्टान से निर्मित होने के कारण अत्यन्त उपजाऊ है। विशेषतया विजय-नगर प्रान्त की भूमि अन्य भागों से अच्छी है। 'कर्नाटक कवि-चरित' में कवि सर्वज्ञ ने विजयनगर की भूमि को अत्यन्त उर्वरा बताया है। उस समय के विदेशी यात्रियो ने भी इस भूमि की भूरि-भूरि प्रशसा की है। यहाँ की उपज मे रुई, ज्वार, बाजरा, तिलहन आदि मुख्य हैं। ऊचे स्थानो पर फल भी पैदा होता है। ऊचे पर्वत सागौन तथा चन्दन के वृक्षों से भरे पडे हैं। यहाँ के पशु भी देश की सम्पत्ति का ज्ञान कराते हैं। विजय-नगर साम्राज्य में पाले जाने वाले पशुओं में गाय, घोडे, भैंस, बकरी, कुत्ते, तथा हिरन आदि की गणना होती रही[1]। वन-पशुओं में जगली सुअर,

---

[1] शुक्रनीति १, २८

शेर, चीता, भालू तथा नाना प्रकार की चिड़िया, विशेषतया मोर, तोता आदि सम्मिलित थे। इन पशुओं का शिकार भी जनता द्वारा किया जाता था। विजयनगर-साम्राज्य मे निर्मित मदिरों तथा अन्य भवनों पर चिड़ियों तथा हिरनों की आकृतिया बनी हैं जो मनुष्यों के भावों को प्रकट करती हैं। विजयनगर के शासक गाय को पवित्र पशु—गौ-माता समझकर पूजा करते थे[1]। घोड़े तथा हाथियों का प्रयोग युद्ध मे होता था इसलिए उनका विशेष रूप से पालन-पोषण किया जाता था। ऊट भी व्यापार का सामान ले जाने मे अधिक काम आता था। मनुष्य को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता था[2]। यही कारण है कि हम्पी की दीवारों पर ऊट की आकृतियाँ बनी हैं। पशु को सम्पत्ति का अग समझकर विजयनगर नरेशों ने अर्थ-शास्त्र तथा बृहत्सहिता में वर्णित मार्ग के अनुसार उनके पालन-पोषण का प्रबन्ध किया था। शासकों के कार्यनिपुण होने के कारण साम्राज्य धन-धान्य से परिपूर्ण था। विजयनगर राजाओं के उच्च विचार, प्रजा-पालन की इच्छा तथा साम्राज्य को सबल और सुव्यवस्थित बनाने की लिप्सा को उत्तेजित करने मे प्रकृति देवी ने पूर्ण रूप से सहायता की और उन्नति मे हाथ बटाया। इसी कारण कई शताब्दियों तक विजयनगर वैभवपूर्ण था और स्वतन्त्रता का उपभोग करता रहा।

दक्षिण-भारत का भूभाग सदा से आक्रमण करने वालों के मार्ग मे कठिनाइयाँ उपस्थित करता रहा। उत्तर-भारत से केवल महान् शक्तिशाली राजा ही दक्षिण पर अपना अधिकार स्थापित करने में सफल हुए। इस सम्बन्ध मे दक्षिण-भारत पर विजय करने वाले व्यक्तियों का सक्षिप्त वर्णन इस स्थान पर अप्रासगिक न होगा।

प्राचीन काल से ही आर्य लोगो ने विन्ध्य पर्वत तथा महाकान्तार के कारण दक्षिण में जाने का साहस नहीं किया था। वहा आर्य-

---

१ सेवेल-ए फारगाटेन इम्पायर पृ० २४८

२ सेवेल-ए फारगाटेन इम्पायर पृ० ३५०

सभ्यता किस ने फैलाई इसके विषय मे अधिक बाते ज्ञात नहीं हैं। रामायण से पता चलता है कि अगस्त ऋषि ने सर्व प्रथम आर्य धर्म, भाषा,तथा संस्कृति को फैलाया। समय-समय पर ऋषि लोग दक्षिण मे जाते रहे। बौद्ध ग्रथ 'सुत्तनिपात' मे गोदावरी के दक्षिण भाग का उल्लेख मिलता है। सम्राट् अशोक के लेख मैसूर-प्रांत मे मिले हैं। उसके लेखो मे चोल, पाड्य, केरल, ताम्रपर्णी (लका) आदि का नाम आता है जिससे प्रकट होता है कि ईसापूर्व चौथी सदी मे उत्तर से दक्षिण को बहुसख्या मे लोग जाया करते थे। उसके बाद शातवाहन लोगो ने राज्य प्रारम्भ किया। ईसा की तीसरी सदी तक दक्षिण मे इनका राज्य रहा। गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त ने अपने दिग्विजय के सम्बन्ध मे समस्त दक्षिण के शासको को परास्त किया था और उनसे कर लेता रहा। प्रयाग की प्रशस्ति मे दक्षिण-आक्रमण का वर्णन विस्तार पूर्वक मिलता है। गुप्तों का अत हो जाने पर उत्तर में हर्षवर्धन का नाम सम्राटो मे गिना जाता है। हर्ष का राज्य समस्त उत्तरी भारत मे विस्तृत था परन्तु दक्षिण मे उसका प्रभाव जाता रहा। उसके समकालीन चालुक्य वंशी राजा पठार मे शासन करते थे। उसी वंश के पुलकेशी द्वितीय ने हर्ष से भी युद्ध किया था। चालुक्यों के पश्चात् दसवीं सदी तक राष्ट्रकूट राजाओं का शासन दक्षिणी भारत मे रहा। राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीय ने काची और तंजोर को जीत लिया था। चोल शासक ने भी उसकी आधीनता स्वीकार कर ली थी।

विजयनगर पूर्व दक्षिण भारत की राजनैतिक अवस्था

इस राज्य के पतन होने पर दक्षिण मे कई राज्य स्थापित हो गए परन्तु उनमे से चार ही ऐसे थे जिनकी प्रधानता बनी रही। देवगिरि मे यादव लोगों का राज्य हो गया। इस वंश का सब से प्रमुख राजा रामचन्द्र तेरहवीं सदी के मध्य मे राज्य करता रहा। कहा जाता है कि यही रामचन्द्र संत ज्ञानेश्वर का आश्रयदाता था। इन्ही सत ने भगवत्-गीता पर मराठी मे 'ज्ञानेश्वरी' नामक टीका लिखी थी। इसी राजा के समय

मे मुसलमान सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के गवर्नर ने देवगिरि पर चढाई की थी। रामचन्द्र हार गया और सन्धि करने के लिए वाध्य हुआ। दूसरा मुख्य राज्य काकतीय लोगों का था जो वारगल मे शासन करते थे। गणपति वडा शक्ति-शाली और प्रतापी नरेश था। उसने आस-पास के सभी राजाओ को दवा कर अपनी प्रभुता स्थापित की। उसी की पुत्री रुद्रम्बा के पौत्र प्रतापरुद्र के समय मे काकतीय वश का ह्रास होने लगा। मुसलमानों ने उसे परास्त किया और धीरे-धीरे बहमनी सुल्तानों ने समस्त राज्य को ले लिया। तीसरा राज्य होयसल वश का था जिसके स्थान पर विजयनगर राज्य की स्थापना हुई। सुदूर दक्षिण में पाड्य राज्य करते थे। इस प्रकार सक्षेप में यह कहा जा सकता है कि छठी सदी के बाद विजयनगर राज्य के अन्त तक दक्षिण भारत के शासक ही पठार में राज्य करते रहे। यदा कदा मुसलमानों ने आक्रमण अवश्य किया परन्तु राज्य स्थापित न कर सके। दूरी तथा प्राकृतिक अवस्था को देख कर दिल्ली से शासन करने में असमर्थता का अनुभव किया और वे लूट का माल लेकर ही चले आए।

दक्षिण भारत में पट-परिवर्तन के साथ ही साथ सातवी सदी से ही उत्तर मे मुसलमानों का आक्रमण होता रहा। १२ वीं सदी के बाद तो उनका सुदृढ शासन स्थापित होगया। उनका विचार धीरे-धीरे बदल गया और लूटना छोड कर दिल्ली मे पठान लोगों ने राज्य करना शुरू कर दिया। उत्तरी भारत मे मुसलमानी राज्य सुदृढ रूप से काम करने लगा। बख्तियार के सैनिको ने सारे उत्तरी मैदान को रौद डाला। मुहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज को परास्त कर देहली मे गुलाम वश की स्थापना की। गुलाम वश के पश्चात् खिलजी वश दिल्ली की गद्दी का उत्तराधिकारी हो गया। बारहवीं शताब्दी तक किसी भी मुसलमान राजा ने दक्षिण भारत मे प्रवेश करने का साहस न किया।

जैसा कहा गया है कि ११ वी सदी के प्रारम्भ से ही दक्षिण भारत मे कृष्णा नदी के उत्तर तथा दक्षिण भाग में दो शक्ति-शाली राज्य स्थापित

हो गए थे। कृष्णा के उत्तर-पश्चिम मे यादव नरेश शासन करते थे जिनकी राजधानी देवगिरि थी। इससे पूर्व (आधुनिक निजाम राज्य) मे काकतीय वश का राज्य था, जिसकी राजधानी वारंगल के नाम से प्रसिद्ध थी। कृष्णा के दक्षिण मे समस्त पठार मे प्रतापी होयसल-नरेश अपनी राजधानी द्वारसमुद्र से शासन करते रहे। दक्षिण-पूर्व के मैदान भाग मे वीर पाड्य वश का राज्य था। मलाबार के किनारे ट्रावनकोर की प्राचीन जातिया अपना प्रभुत्त्व स्थापित कर चुकी थी। इन समस्त राजवशों मे होयसल का प्रभाव सर्वव्यापी था। सभी नरेश उसके प्रभुत्त्व को स्वीकार कर चुके थे और उसकी छत्रछाया में शासन करते थे। एक बार यादव रामचन्द्र ने होयसलो के प्रभुत्त्व को न मान कर उन पर १२७२ ई० मे आक्रमण कर दिया था[1]। यद्यपि रामचन्द्र ने होयसल वश को परास्त कर दिया परन्तु कुछ ही समय तक यादव वंश का प्रभाव स्थिर रहा। कारण यह था कि सन् १२७८ ई० मे अलाउद्दीन खिलजी ने दक्षिण मे देवगिरि (यादव राजधानी) पर आक्रमण किया। सुल्तान ने विजय की लालसा मे यह आक्रमण नही किया था, वह देवगिरि को नष्ट करके सारा सोना, जवाहिरात आदि सारी सम्पत्ति उठा ले गया। उस समय मुसलमानो का भय समस्त दक्षिण मे फैल गया। जज़िया भी सब लोग चुकाने के लिए तैयार हो गए थे। वीर नरसिंह होयसल के वेलूर ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि राजा ने सन् १२७८ ई० मे प्रजा द्वारा मुसलमानों को कर देने के निमित्त भूमि का अलग से प्रबन्ध कर दिया जिसकी आय से वह कर दिया जाने लगा। कहने का तात्पर्य यह है कि तेरहवी सदी के अतिम भाग मे दक्षिण भारत मे मुसलमानो का प्रवेश हो गया। सुदूर दक्षिण मे इससे भी पूर्व मुससमानों की एक छोटी सल्तनत कायम हो चुकी थी। सन् १०५० ई० मे मदुरा मे मलिकुलमुल्क ने मौलवी अलीयार के साथ अपना राज्य स्थापित कर लिया था और मला-

---

१ फ्लीट-डायनेस्टी आफ कनारी डिस्ट्रिक्ट इन बाम्बे प्रेसिडेंसी पृ० ७४

बार प्रात तक उसका राज्य फैल चुका था [१]। परन्तु वीर-पाड्य के उदय होने पर मदुरा का मुसलमानी राज्य नष्ट हो गया। अलाउद्दीन खिलजी के सिहासनारुढ होने पर दक्षिण भारत पर उसके सेनानायक मलिक काफ़ूर ने चढाई की। सन् १३०६ ई० मे काफ़ूर ने दिल्ली से प्रस्थान कर सर्वप्रथम वारंगल को घेर लिया। वहा के राजा प्रताप रुद्रदेव को परास्त कर होयसल राजधानी की ओर बढा। उस समय होयसल वश के प्रतापी राजा वीर बल्लाल तृतीय शासन करते थे। मुसलमानों की अगणित सेना के सन्मुख बल्लाल तृतीय ठहर न सके और मुसलमानो ने इन्हें कैद कर लिया [२]। मलिक काफ़ूर के हाथ मे सारी सम्पति आ गई [३] और कर्नाटक तक की भूमि मलिक काफ़ूर के अधीन हो गई [४]। राजा के पुत्र ने दिल्ली सुल्तान की आज्ञा लेकर वीर बल्लाल को मुक्त करा लिया। फिरिस्ता के कथनानुसार काफ़ूर नेद्धार समुद्र और मलाबार पर विजय प्राप्त करके भी मदुरा के पाड्य नरेशों को स्वतत्र रहने न दिया। दक्षिण भारत में शासन करने वाले किसी राजा की हिम्मत न हुई कि वह मुसलमानों को रोके। मदुरा मे शेखर पाड्य के पुत्रो मे राज्य के लिए झगडे हो रहे थे। मलिक काफ़ूर को यह बात ज्ञात हो गई। अतएव इससे लाभ उठाने की बात उसने सोची। अचानक राजा के पुत्र सुन्दर पाड्य ने मुसलमान सेनापति की सहायता मागी और मदुरा आने का निमन्त्रण दिया। काफ़ूर ने वहा पहुच कर सुन्दर पाड्य को राजा बनाया और उनके प्रतिद्वन्द्वी वीर पाड्या को परास्त किया। काफ़ूर ने मलाबार पर भी आक्रमण किया था। जहा पर उस समय मुसलमानों की ही प्रधानता थी [५]। मदुरा के समस्त हिन्दू मदिरों

---

१ नेल्सन-मदुरा डिक्ट्रक्ट मैन्युअल पृ० ६६।

२ ऐयंगर—साउथ इंडिया एण्ड मुसलिम इन्वेडर्स पृ० ९३।

३ इलियट—हिस्ट्री आफ इण्डिया भा० ३ पृ० २०३।

४ प्रा० स० रि० १६०७–८।

५ इलियट—हिस्ट्री भा० ३ पृ० ६०।

का ध्वस करके वह रामेश्वरम् की ओर बढा। रामेश्वरम् मे एक मसजिद की स्थापना कर अपनी विजय-यात्रा को समाप्त किया। काफूर दक्षिण की रक्षा के निमित्त सेना का एक भाग छोड आया। भारत मे सर्वत्र अपनी विजय-पताका फहरा कर मलिक काफूर सन् १३११ ई० मे दिल्ली लौटा। अमीर खुसरू के कथनानुसार वह ९६००० मन सोना, जवाहिरात, हीरा, नीलम आदि मूल्यवान सामग्री, ५१२ हाथियो तथा १२००० घोडो के साथ वह दिल्ली वापस आया था। सन् १३२७ ई० मे बहाउद्दीन ने कम्पिल पर चढ़ाई की। मुहम्मद बिन तुगलक के सेनापति ने कम्पिल के राजा को मार डाला। उसके लडके को मुसलमान बनाकर दिल्ली भेज दिया। इस आक्रमण का प्रभाव दक्षिण भारत पर अत्यन्त हानिकारक साबित हुआ। यादव नरेश हरिपाल के क्रूरता तथा निर्दयता पूर्ण मारे जाने, मदुरा के विशाल मदिर के ध्वस होने तथा हिन्दुओ के पवित्र तीर्थस्थान रामेश्वरम् मे मसजिद की स्थापना होने के कारण दक्षिण भारत के हिन्दुओं का हृदय टूक-टूक हो गया। इस दुखदाई घटना का अत्यन्त सजीव चित्र गगदेवो ने अपने काव्य 'मदुरा-विजयम्' मे खीचा है। उसका कहना था कि दक्षिण भारत मे मुसलमानो के आक्रमण से मदिरो मे मृदंग-नाद के स्थान पर शृगाल की अवाज सुनाई पड़ती थी और यज्ञ तथा वेद मन्त्र का सर्वथा लोप हो गया था।

विभिन्न वर्णो मे सम्मिश्रण के कारण मुसलमानो के ससर्ग से खूटन तथा लवेस नामक दो नई जातियॉ पैदा हो गई [1]। कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दुओ का सामाजिक जीवन पवित्र न रहा तथा अनेक बाधाए सामने उपस्थित हो गईं।

दक्षिण भारत पर मुसलमानो की विजय पताका बहुत काल तक फहरा न सकी। मलिक काफूर के लौटने के बाद ही हिन्दुओ ने पुनः स्वतन्त्र होने का प्रयास किया। समस्त दक्षिण भारत मे होयसल

---

१ डा० ताराचन्द—भारत पर मुसलमानी प्रभाव पृ० ६३

नरेश वीर वल्लाल तृतीय की तूती बोलने लगी। सभी शासक उसके आधीन हो गए। इसका एक कारण यह भी था कि उत्तरी भारत तथा मध्यभारत मे मुसलमान द्वन्द-युद्ध मे सलग्न थे। कृष्णा नदी के दक्षिण में मुसलमान शासक अपना प्रभुत्व स्थिर न रख सके। अतः वीर बल्लाल तृतीय का प्रभाव समस्त दक्षिण मे विस्तृत हो गया। अपनी राज-नगरी की रक्षा के निमित्त द्वारसमुद्र को छोड कर विरुपाक्षपुर को राजधानी बनाया[1]। कुछ विद्वानों का कथन है कि वीर बल्लाल तृतीय ने मदुरा के मुसलमान शासकों पर विजय प्राप्त करने के लिए द्वारसमुद्र को छोड कर तिरुवन्मलाई (विरुपाक्षपुर) को अपनी राजधानी बनाया। यह कथन इस कारण प्रामाणिक सिद्ध होता है कि सन् १३३० ई० में मुहम्मद तुगलक ने दक्षिणी राज्यो को आधीन करने के निमित्त एक विशाल सेना मदुरा भेजी। थोडे समय तक तुगलक का प्रभाव वहाँ रहा। सन् १३३४ ई० तक मुहम्मद तुगलक के सिक्के दक्षिण में चलते रहे, जिससे उसका प्रभुत्व दक्षिण भारत मे प्रमाणित होता है। सन् १३३५ ई० मलाबार का राज्य स्वतन्त्र हो गया[2] इसके पश्चात् वारंगल को स्वतन्त्र करने के लिए तथा दक्षिण सेमुसलमानों को भगाने के लिए एक हिन्दू सघ स्थापित किया गया। इसमे होयसल नरेश वीर बल्लाल तृतीय और काकतीय राजा प्रताप रुद्रदेव के पुत्र कृष्ण नायक सम्मिलित थे। इस सघ का फल यह हुआ कि वारंगल से मुसलमान निकाल बाहर किये गए। केवल देवगिरि तुगलक वश के हाथ मे रहा। सन् १३३५ ई० के बाद दक्षिण में उत्तरी भारत मे मुसलमानी आक्रमण बन्द हो गए।

होयसल राजा वीर बल्लाल तृतीय ने सन् १३४० ई० मे दक्षिण भारत से यवनों को निर्मूल करने की प्रतिज्ञा से मदुरा पर विशाल सेना

---

१ सालातोर—सोशल एण्ड पोलिटिकल लाइफ इन विजयनगर भा० १ भूमिका पृ० ७।

२ डा० ईश्वरीप्रसाद—मुसलिम रूल पृ० १४५।

लेकर चढाई की। मुसलमान शासक परास्त हो गया। होयसल राजा ने पराजित शासक को पीछे लौट जाने की आज्ञा दे दी और उसे मुक्त कर सन्धि कर ली। इब्न-बतूता उस काल मे दक्षिण मे वर्तमान था। उसने लिखा है कि पराजित मुसलमान शासक ने रात मे वीर बल्लाल तृतीय की सेना को घेर लिया। होयसल सेना मे भगदड मच गई। वीर बल्लाल पकड़ लिया गया। सन् १३४२ ई० मे मदुरा के राजा ने उस प्रतापी नरेश को निर्दयता पूर्वक मरवा डाला। इतना होते हुए भी होयसल वश का नाश न हो सका। मुसलमान मदुरा से उत्तर की ओर न बढ सके। होयसल वश के शासन की बागडोर बल्लाल के तृतीय पुत्र विरुपाक्ष या बल्लाल चतुर्थ के हाथ मे रही। मदुरा मे सन् १३५१ ई० तक मुसलमानी सिक्के पाये जाते रहे। इसी प्रमाण पर उस समय तक मदुरा के शासक मुसलमान ही कहे जाते हैं। तत्पश्चात् दक्षिण-भारत मे यवन शासन नष्ट हो गया। रामेश्वरम् से लेकर कृष्णा नदी तक पुनः हिन्दू राज्य स्थापित हो गया। इसी हिन्दू राज्य के सस्थापक विजयनगर के शासक कहे जाते हैं। कृष्णा नदी के उत्तरी भाग मे बहमनी राज्य की स्थापना हो चुकी थी। सन् १३६५ ई० में मुहम्मद गुलबर्गा की गद्दी का स्वामी हो गया था[१]। इन्ही बहमनी बादशाहों से हिन्दू शासक सदा युद्ध करते रहे।

दक्षिण भारत मे मुसलमानी प्रभुत्व तथा सस्कृति को मिटाकर विजयनगर के सम्राटों ने पुन. हिन्दू धर्म की सस्थापना की। परन्तु दक्षिण मे शताब्दियो पूर्व से ही आर्य सस्कृति का पूर्ण विकास था। विजयनगर ने पुनः उसको नवजीवन प्रदान किया और जनता अपने प्राचीन स्वरूप को समझ गई। दक्षिण की पुरानी सस्कृति को जानने के लिए यह आवश्यक है कि कई शताब्दियों पूर्व से ही इसका दिग्दर्शन कराया जाय। कहने की आवश्यकता नही प्रतीत होती कि प्राचीन-

विजयनगर से पूर्व दक्षिण-भारत की संस्कृति

१ कैम्ब्रिज हिस्ट्री भा० ३ पृ० ३८०।

काल मे भारतीय राजा स्थान-स्थान पर धर्म प्रचारक भेजते थे। उत्तरी भारत में जिस धर्म की उत्पत्ति तथा विकास हुआ, उसका फैलाव दक्षिण भारत मे भी अवश्य होता रहा। बौद्ध तथा जैनमतों का भी प्रचार पठार की भूमि में होता रहा। उत्तरी भारत से ब्राह्मणों ने विशुद्ध आर्य धर्म (वैदिक धर्म) को सुदूर दक्षिण मे फैलाया[1]। ईसा की सातवीं शताब्दी के बाद उत्तरी भारत धर्म तथा संस्कृति का केन्द्र न रह सका। उत्तर मे मुसलमानों के आक्रमण शुरू हो गए थे। भारत में हर्षवर्धन के बाद शासको में एकता न रही। कोई ऐसा वीर पैदा न हुआ जो सबको मिलाकर एक राष्ट्र कायम करता और बाहरी आक्रमण से देश की रक्षा करता। मुसलमानो के आक्रमण से सर्वत्र आतंक छा गया। वैमनस्य, ईर्ष्या तथा फूट के कारण से बाहर वालों ने लाभ उठाया और हिन्दू राज्यों का अंत होने लगा। किसी को सिर उठाने की हिम्मत न हुई। यही कारण है कि आठवीं सदी से महान धार्मिक नेता दक्षिण भारत में ही उत्पन्न हुए जिनकी विचार धारा से समस्त भारत ओत प्रोत हो गया। जिस मुसलमानी विजेताओं के डर से जो भारतीय संस्कृति दक्षिण मे शरण ले चुकी थी, वही दक्षिण के धार्मिक सुधारकों के साथ उत्तर भारत में फिर आयी। दक्षिण भारत में बौद्ध तथा जैन मतों का ह्रास वैष्णव और शैव संतों के द्वारा किया गया। इन लोगों ने निवृत्ति प्रधान मतों का खण्डन करके प्रवृत्ति पर जोर दिया। संसार मे भगवान् की प्रतिमा—विष्णु तथा शिव—की पूजा का, प्रचार किया। इस कार्य मे अडियार (शैव) और आलवार (वैष्णव) संतो का विशेष हाथ रहा। आलवार बौद्ध, जैन और शैवो के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने अपना प्रचार तामिल भाषा मे किया जिससे जनता पर विशेष प्रभाव पड़ा। उनके रचित ग्रंथ वेदों के सदृश पुनीत तथा प्रमाणिक समझे जाते हैं। जनता विष्णु प्रतिमा तथा लिङ्ग

---

१ गोविन्दाचार्य— कमिंग आफ ब्राह्मण टू साउथ इंडिया जे. आर ए. एस १९१२।

की पूजा करने लगी। बौद्धों के स्थानापन्न होने के कारण और जनता द्वारा अपनाए जाने के निमित्त अडियार तथा आलवार सतो ने भी, तीर्थयात्रा, उपवास, मठ मे पूजा, अहिसा तथा सभी जातियो की समानता के भावों को लोगों मे प्रचारित किया। परन्तु दक्षिण मे इन दोनों मतों मे शत्रुता की भावना सदा बनी रही। इसी को मिटाने के लिए भगवान् शकराचार्य का आविर्भाव हुआ। उन्होंने एकेश्वरवाद का सिद्धान्त चलाया। यद्यपि दक्षिण मे वैष्णव आचार्य तथा शैव सिद्धान्त के प्रतिपादको ने शकर का विरोध किया, परन्तु अद्वैत सिद्धान्त का प्रचार कन्या-कुमारी से हिमालय तक हो गया। सभी ने उसकी महत्ता को स्वीकार किया। पल्लव तथा चोल नरेशों ने शैवमत को अपनाया परन्तु शासक तथा धार्मिक नेताओ मे परस्पर विरोध बना रहा। इतनी विरोधी बातों के होते हुए भी रामानुज ने वैष्णव-मत का प्रचार किया। दसवी शताब्दी के पश्चात् दक्षिण मे वैष्णव मत की प्रधानता हो गई। उनका कथन था कि ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप है और उसकी उपासना ही मोक्ष का प्रधान मार्ग है। आचार्य रामानुज ने भक्ति की धारा समस्त दक्षिण भारत मे प्रवाहित की। उनका अद्वैत सिद्धान्त से भिन्न मत था। शकर के मत का खण्डन कर रामानुज ने विशिष्टाद्वैत का प्रतिपादन किया और अपने मत को पुष्ट करने के लिए अनेक ग्रथों की रचना की। वैष्णव सम्प्रदाय मे भक्ति की प्रधानता थी। ये 'हरि को भजे सो हरि का होई' के सिद्धान्त को कार्यरूप मे परिणत कर रहे थे। शैव सतो ने भी उनका अनुकरण कर पाच बातो का विशेष रूप से प्रतिपादन किया। सर्व प्रथम अपने देव शिव मे विश्वास रखने की शिक्षा दी। धार्मिक प्रचारक गुरु मे भी अन्ध-भक्ति की बात सुनाई। पूजा, योग और आचार पर जोर दिया। सहिष्णुता का प्रचार किया और भक्ति मे समस्त जातियो की एकता तथा समानता की भावना प्रवाहित की। इतना होते हुए भी वैष्णव मत का प्रचार तथा उन्नति अविच्छिन्न रही। उसी दक्षिण मे तीसरे व्यक्ति वल्लभाचार्य ने 'पुष्टि-मार्ग' की स्थापना की। दक्षिण भारत मे उत्पन्न इन धार्मिक

सिद्धान्तों का प्रचार समस्त उत्तर भारत मे भी हो गया। स्वामी रामानन्द ने वैष्णव मत का और अधिक प्रचार किया। उत्तर में कबीर तथा नानक आदि ने निर्गुण पंथ की आवाज उठाई। बगाल मे चैतन्य ने कृष्ण-भक्ति की धारा कीर्तन के रूप मे प्रवाहित की। सत ज्ञानेश्वर ने महाराष्ट्र जनता में वैष्णव धर्म का प्रचार आरम्भ कर दिया था। कहने का तात्पर्य यह है कि विजयनगर शासकों से पूर्व दक्षिण भारत में अद्वैत तथा द्वैत सिद्धान्तों मे विरोध था। जगम तथा लिङ्गायत लोगों में असीम वाद विवाद हो रहा था। मुसलमानों के आक्रमण से हिन्दू जाति के रीति-रिवाज तथा सामाजिक नियमो पर कुठाराघात हो रहा था। मुसलमानों के पदार्पण से रवूटन तथा लवेस नामक नई जातिया पैदा हो गई थीं। अमीर खुसरू का कहना था कि कारोमण्डल के किनारे की भूमि पर मुसलमान जनता की प्रधानता थी। उनकी जनसंख्या वढती जा रही थी। अरब के गयासुद्दीन दगमनी का राज्य सुदूर दक्षिण मे विस्तृत था[१]। ऐसी अवस्था मे सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्रों मे उथल-पुथल मच रही थी और सर्वत्र अशाति का राज्य था। हिन्दू जनता किसी ऐसे नायक को ढूढ रही थी जो प्रत्येक बधना को काट कर उनको मुक्त करे और हिन्दू-सस्कृति के आदर्श-मार्ग को दिखलावे।

विजयनगर की उत्पत्ति

ईसा की चौदहवी सदी में दक्षिण भारत मे हिन्दू जाति की रक्षा का प्रश्न था। प्राचीन धर्म पर होने वाले प्रहार से समाज को बचाना था। यही कारण है कि भारतीय-सस्कृति की रक्षा करने वाले एक राज्य की आवश्यकता थी, जिसकी पूर्ति विजयनगर-साम्राज्य की स्थापना से की गई। दक्षिण मे समाज की दशा शोचनीय हो गई थी। समस्त धार्मिक सिद्धान्तों में एकता का अभाव था। एक सम्प्रदाय वाले दूसरे से युद्ध किया करते थे। सभी मत वाले, वैष्णव तथा शैव आदि अपनी बातों की प्रधानता बतलाते तथा अपने सिद्धान्त की महानता का प्रतिपादन करते थे। वाद-विवाद

---

१ ईलियट-हिस्ट्री भा० ३ पृ० ६०।

से दक्षिण भारत के समाज मे वैमनस्य का वायुमण्डल उत्पन्न हो गया था। विजयनगर के राजाओं ने सभी को यथार्थ ज्ञान का पाठ पढाया। सच्चे धर्म की ओर लोगो का ध्यान आकर्षित किया और सहिष्णुता का भाव पैदा किया। इस कारण से जनता मे आपस मे प्रेम तथा एकता की भावना जागरित हुई। विजयनगर के सम्राटों ने विद्यारण्य तथा वेदान्त-देशिकाचार्य की सहायता से वैदिक साहित्य को पुनः प्रतिष्ठापित किया। विद्या की उन्नति तथा वैदिक ग्रन्थों के पठन-पाठन से जनता मे प्राचीन सस्कृति का प्रचार हुआ। वेदो मे निहित ज्ञान को सबके सामने रक्खा गया। इसमे वर्णित राजनीति को कार्यान्वित किया गया। इन्हीं बातों के उत्पादक विजयनगर के सम्राटो ने दक्षिण भारत मे एकछत्र हिन्दू राज्य स्थापित किया। ये बातें विजयनगर की महत्ता तथा विशेषता की द्योतक हैं। इसके बाद ही हरिहर ने होयसल वंश का शासन अपने हाथ मे ले लिया। इसके लिए किसी प्रकार का गृह-युद्ध न हुआ। बल्लाल तृतीय के वंशज ने भी इसे उचित समझा। इसी से राज्य की रक्षा हो सकती थी। अतएव विरुपाक्ष ने (वीर बल्लाल का पुत्र) स्वय हरिहर के आधीन रहना स्वीकार कर लिया।

ऊपर बतलाया जा चुका है कि चौदहवीं शताब्दी के मध्य में तुगभद्रा से लेकर रामेश्वरम् तक होयसल वश की तूती बोल रही थी। सम्राट वीर बल्लाल तृतीय ने समस्त दक्षिण पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। केवल नाम के लिए मुसलमान जनता मलाबार (तामिल देश) मे निवास करती थी। इब्नबतूता ने सन १३४२ तक बल्लाल तृतीय की शक्ति को देखा था, परन्तु इस प्रतापी राजा के मदुरा-युद्ध में विजयी होने पर भी धोखे से मुसलमानी सेना ने इसे पकड लिया तथा मार डाला। वीर बल्लाल तृतीय के राज्य में हरिहर तथा बुक्क नामक दो भ्राता थे। जो होयसल वश के राज्य की रक्षा करते रहे तथा एक प्रात के स्वामी (गवर्नर) थे। सन् १३३३ ई० तक वीर बल्लाल शासन

करता रहा[1] । उसके पश्चात् उसका पुत्र वल्लप्पा उत्तराधिकारी हुआ । इसको बल्लाल विरुपाक्ष भी कहते थे । होयसल वंश के शिलालेखों में वर्णन मिलता है कि हरिहर वीर बल्लाल तृतीय का सन् १३३३ई० में प्रधान मन्त्री था और 'महामण्डलेश्वर' की पदवी से विभूषित था । उसके लेखों से ज्ञात होता है कि बल्लाल तृतीय का पुत्र विरुपाक्ष सन् १३३६ ई० में हरिहर के महामण्डलेश्वर पद पर विराजमान था[2] । उसी समय हरिहर के भ्राता मारप्प ने राज्य के पश्चिमी भाग में शत्रुओं पर विजय प्राप्त की[3] । हरिहर ने सम्राट की महान् पदवी धारण की और विजयकी खुशी में उत्सव मनाया तथा भूमि दान में दी[4] । इन समस्त प्रमाणों के विवेचन से यही प्रकट होता है कि सन् १३३६ ई० में विजयनगर राज्य की स्थापना होयसल वंश के स्थान पर हुई । हिन्दू जनता ने इसका तनिक भी विरोध नहीं किया । होयसल वंश के प्रांत-अधिपति हरिहर ने ही नये राज्य की स्थापना की । वीर बल्लाल के पुत्र को शासन की बागडोर न देकर स्वयं अपने हाथ में ले लिया । उस समय इसकी ही आवश्यकता थी । जब कि कृष्णा के उत्तर में मुसलमानों का प्राबल्य था, उस दशा में किसी हिन्दू शक्तिशाली व्यक्ति की परम आवश्ययता थी, जो दक्षिण को मुसलमानों के आक्रमण से बचाये । आर्य संस्कृति की रक्षा कर सके । हरिहर ने विजयनगर की स्थापना कर इसकी पूर्ति की । दुर्बल तथा प्रभावहीन शासक विरुपाक्ष से कार्य भार स्वयं ले लिया । जनता ने भी इसे उचित समझा । बल्लाल के पुत्र विरुपाक्ष से हरिहर ने अपनी पुत्री का विवाह किया और अपनी छत्रछाया में उसे महामण्डलेश्वर बनाया । कहने का तात्पर्य यह है कि हरिहर ने किसी प्रकार का अन्याय नहीं किया । देश तथा काल पर विचार करने से उसका कार्य सर्वथा समुचित प्रतीत होता है । इसलिए जनता ने भी इस परिवर्तन का स्वागत किया । होयसल

---

१ ई० कर०, ६ पृ० २०२ । २ इ० कर ०भा० १० पृ० १६६
३ ए० कर० ६ पृ० ३४७ । ४ ए० कर० भा० ६ पृ० ३३) ।

वंश के स्थानापन्न विजयनगर के शासकों की आज्ञा का पालन जनता उसी प्रकार करती रही, उनमे उसी मात्रा मे शांति विराजमान थी, जिस प्रकार वीर वल्लाल तृतीय के समय मे थी। जनता मे विद्रोह तथा नवीन राज्य के प्रति विरोध का तनिक भी आभास किसी लेख या साहित्य मे नही मिलता। सब ने उस काल की आवश्यकताओ की पूर्ति करने वाले, हिन्दू धर्म के प्रतिपालक विजयनगर-नरेशों का हार्दिक स्वागत किया। उनके साथ दत्त-चित्त होकर शासन मे सहायता की। कुछ विद्वानो का मत है कि हरिहर होयसल वश का युवक था[1]। अतएव जनता ने उसका स्वागत किया।[2] लेखो में इस प्रकार वर्णन पाया जाता है कि नन्द के कुमार कृष्ण (बुक्क) उत्पन्न होकर म्लेच्छो का नाश करेंगे[3]। वर्णन की शैली जो कुछ भी हो, परन्तु यह तो मानना ही पडेगा कि विजयनगर के शासकों ने राज्य स्थापित कर समस्त दक्षिण भारत की रक्षा की। सभी सम्प्रदाय (जैन, शैव, वैष्णव) वालों को मुसलमानों के रोष से बचाया। इस प्रकार देश तथा जाति की प्रतिष्ठा विजयनगर के द्वारा सुरक्षित की गई[4]।

उपर्युक्त कथन की पुष्टि विजयनगर के प्रथम दो शासको की प्रशस्तियों द्वारा की जाती है। इन्ही लेखों के आधार पर यह कहा जाता है कि जब मुसलमानो का आक्रमण होयसल राज्य पर प्रारम्भ हुआ तो उसी समय वीर वल्लाल तृतीय ने हरिहर प्रथम (विजयनगर के प्रथम शासक) को होयसल राज्य के उत्तरी भाग का सरक्षक बनाया और 'महामण्डलेश्वर' की पदवी से विभूषित किया। मुसलमानों ने द्वारसमुद्र (होयसल की

---

१ इसका इस स्थान पर उत्तर देना उचित नहीं प्रतीत नही होता। इसका खण्डन अन्यत्र किया जायगा।

२ हेरास-बिगनिग आफ विजयनगर पृ० ९३

३ ए० कर० ४ पृ० ५८।

४ कृष्णस्वामी-कन्ट्रीब्यूशन आफ साउथ इंडिया टू इंडियन कल्चर पृ० २९७-९९

राजधानी) को सन् १३२७ ई० मे नष्ट कर डाला[1] । उस समय से लोग तिरुवन्नमल्लाई (नई राजधानी) मे निवास करने लगे । महामण्डलेश्वर हरिहर ने मुसलमानों के आक्रमण को रोकने में घोर परिश्रम किया । यही हरिहर जब स्वय शासक बना उस समय भी इसने महामण्डलेश्वर की पदवी न छोडी और न अन्य राजकीय पदवी को धारण किया । कारण स्पष्ट है कि हरिहर अपने को प्रजा का सरक्षक समझता था । स्वतत्र शासक होने पर भी राजा की ऊची आकाक्षाओं को न रखते हुए पहले ही की तरह जनता की सेवा करता रहा । लोगों ने भी इसे अपना पालक समझा और उनमे पूर्व की सी भावना बनी रही ।

अतएव लेखो मे "महामण्डलेश्वर हरिहर होयसल देश में शासन करता है" ऐसी बात लिखी मिलती है । उसके उत्तराधिकारी बुक्क प्रथम की भी वैसी ही पदवी लेखों में मिलती है । सर्व प्रथम लेख (सन् १३३५ ई०) में महामण्डलेश्वर बुक्क का शासन होयसल देश में बतलाया गया है[2]। इन सब का कारण यही ज्ञात होता है कि विजयनगर शासकों को राज का प्रबध आदर्श मार्ग पर करना था। वे अपने देश को यवनों के आक्रमण से बचाना चाहते थे। पूर्व के शासक होयसल राज्य मे ही उनका शासन प्रारम्भ हुआ । अतः हरिहर प्रथम तथा बुक्क प्रथम भी होयसल देश के शासक (महा-मण्डलेश्वर) कहलाए। उनको नवीन पदवी धारण करने तथा राज्य के नाम-करण की चिन्ता न थी प्रत्युत सुचारु-रूप से वे शासन-प्रबध मे सलग्न रहे । ऐसे शासकों का जनता द्वारा स्वागत करना अत्यन्त स्वाभाविक बात थी ।

होयसल वश के समाप्त हो जाने पर दक्षिण भारत में विजयनगर नाम का नवीन राज्य स्थापित किया गया । जिस समय दक्षिण की बागडोर विजयनगर नरेशों के हाथ मे आई उस समय उत्तरी भारत मे

---

१ फ्लीट—डाइनेस्टी आफ कनारी डिस्ट्रीक्ट पृ० ७० ।

२ आ० स० रि० १६०७-८-विजयनगर राज्य ।

विभिन्न मुसलमानी रियासतें—जौनपुर, गुजरात, बंगाल, खानदेश और कृष्णा नदी के किनारे बहमनी नामक—स्वतन्त्रता की घोषणा कर चुकी थीं। ये समस्त रियासतें दिल्ली साम्राज्य के विभिन्न प्रान्त (राज्य के छोटे टुकड़े) के रूप में कायम की गई थीं। दिल्ली सम्राट के निर्बल होने पर स्वतन्त्र हो गई। अतएव विजयनगर का विरोध समीपवर्ती बहमनी राज्य से सदा रहा और युद्ध होते रहे। इस विकट परिस्थिति में यवनों के अत्याचार से बचाने के लिए एवं हिन्दू संस्कृति की रक्षा के निमित्त विजयनगर राज-वंश ने वीर बल्लाल के पुत्र को हटाकर अपना शासन प्रारम्भ किया।

विजयनगर का राज-वंश

विजयनगर के राजवंश-परम्परा के विषय में विद्वानों में मतभेद है। इसके लिए चार भिन्न-भिन्न मतों का प्रतिपादन किया जाता है। (१) काकतीय (२) कादम्ब (३) तुलुव तथा (४) यादव (तेलेगु) वंश से उनका सम्बन्ध बतलाया जाता है। कुछ विद्वानों का कथन है कि हरिहर तथा बुक्क काकतीय वंश में उत्पन्न हुए थे। वे काकतीय नरेश प्रताप रुद्रदेव के कोषाध्यक्ष थे। जिस समय वारंगल पर मुसलमानों का आक्रमण हुआ, ये दोनों वहाँ से भागकर होयसल नरेश वीर बल्लाल की शरण में आये। राजा ने उनको अपने यहाँ नियुक्त कर 'महामण्डलेश्वर' के पद पर रक्खा। इस मत के स्वीकार करने में कठिनाई यह है कि ऐतिहासिक घटनाएँ असत्य प्रमाणित हो जाती हैं। मुसलमानों को परास्त करने के साथ वारंगल के राजा ने होयसल राज्य पर भी आक्रमण किया था[1]। उपर्युक्त कथन के मानने वाले इस घटना को सत्य नहीं मानते। इसके अतिरिक्त विचारणीय विषय यह है कि काकतीय कुलोत्पन्न हरिहर और बुक्क ने आपत्ति के समय (मुसलमानी आक्रमण के समय) प्रताप रुद्रदेव को क्यों छोड़ कर होयसल नरेश की शरण ली। इसके अतिरिक्त वीर बल्लाल अपने शत्रु प्रतापरुद्र के वंशज को कभी महामण्डलेश्वर का पद

---

१ शर्मा—जे. बी. एच. एस. भा० २ पृ० २०७

नही दे सकता था [१] । यदि हरिहर के उत्तराधिकारी शासकों के लेखों का अध्ययन किया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वे सगम के पुत्र तथा यदुकुल के भूषण थे [२] । अत' काकतीय वश से उत्पत्ति की बात सर्वथा अप्रमाणित हो जाती है ।

तुलुव वश से उत्पत्ति मानने वालों ने समस्त शासक वर्गो को मिश्रित कर दिया है । सगम के वशज के शासन पश्चात् विजयनगर में कृष्णदेव-राय तुलुव का राज्य रहा । उसके समय मे इस राज्य की अत्यन्त उन्नति हुई । इसी कारण से यह मान लिया जाता है कि हरिहर आदि भी तुलुव वश के महान् व्यक्ति थे । परन्तु यह बात सारहीन है और सगम सालुव तथा तुलुव वशों का सम्मिश्रण हो जाता है ।

राइस महोदय ने विजयनगर की उत्पत्ति कदम्ब वश से बतलाई है । परन्तु यह मत यथार्थ नहीं प्रतीत होता । आगे यह बात बतलाई जायगी कि विजय नगर के प्रात अधिपति सगम के पुत्र मारप्प ने कदम्ब कुल का नाश कर दिया [३] । यदि सगम उसी वश मे उत्पन्न होता तो उसका पुत्र अपने वश को नष्ट करने की बात कभी भी नही सोचता । आदर्श हिन्दू नरेश विजयनगर के शासक ऐसे कार्य को कभी भी नहीं कर सकते थे । अतएव राइस का सिद्धान्त भी अप्रमाणित हो जाता है।

साहित्य तथा लेखों के आधार पर यह बात युक्ति-सगत प्रतीत होती है कि विजयनगर के शासक होयसल वश के थे । इस को सिद्ध करने के इतने प्रमाण मिलते हैं जिससे किसी प्रकार का सदेह नही रह जाता । प्रथम बात तो यह है कि सर्वत्र एक प्रकार का ही उल्लेख पाया जाता है कि विजयनगर शासक होयसल देश पर अथवा होयसल राजधानी मे राज्य करते थे । इन राजाओं ने इस पट्टन (होयसल राजधानी) को

---

१ सेवेल—ए फारगाटन एम्पायर पृ० २३

२ विट्टगुंठा लेख—ए० इंडिका ३ प० २३

३ हेरास—कदम्ब-कुल ।

अपना केन्द्र बनाया[1]। बुक्क की राजधानी सदा द्वारसमुद्र ही थी[2]। सन् १३८८ ई० मे हरिहर द्वितीय पेनुकोडा (होयसल राज्य का नगर) में शासन करता था[3]। सन् १५७१ के लेखों मे तिरुमल्ल भी कर्नाटक का शासक कहा गया है[4]। इससे पूर्व १४६३ ई० के एक लेख मे आदि पुरुष संगम की प्रशसा की गई है और साथ ही साथ यह उल्लेख मिलता है कि संगम कर्नाटक की राज्य-लक्ष्मी का स्वामी था। इसके राज्य मे यह देश सुख तथा वैभव पूर्ण था[5]। 'मदुरा-विजय' नामक काव्य-ग्रथ मे वर्णन मिलता है कि संगम के पुत्र बुक्क को कर्नाटक की जनता चन्द्रमा से तुलना करती थी। कहने का तात्पर्य यह है कि विजय-नगर वश का शासन कर्नाटक (होयसल देश) मे सदा बना रहा। गग-देवी ने उसका वर्णन इस प्रकार किया है—

कर्णाटलोकनयनोत्सवपर्वचन्द्रः साकं तथा हृदयसंभृतया नरेन्द्रः।
कालोचितानि भुवने क्रमशः सुखानि वीरः चिराय विजयापुरमध्यवासीत्॥

कृष्णस्वामी ने भी इसी की पुष्टि की है कि विजयनगर के राजा कर्नाट वंश के थे[6]। समस्तप्रमाणों का यदि विवेचन किया जाय तो निम्न लिखित बातों पर विजयनगर शासक की उत्पत्ति होयसल वंश या कर्नाट वश से प्रतीत होती है—

(१) विजयनगर शासक होयसल राजधानी से शासन करते रहे तथा उसको शीघ्र बदलने का प्रयत्न नहीं किया।

(२) विजयनगर के राजाओं ने होयसल वश के रीति तथा शासन-प्रबन्ध को अपनाया।

(३) होयसल राज्य के अधिकारियो को विजयनगर साम्राज्य में उचित स्थान दिया गया।

---

१ मैसूर आर्क० रिपोर्ट १९१६ पृ० ५६।
२ रंगाचार्य—भा० १ पृ० १७। ३ ए० कर० भा० ४ पृ० १४।
४ ए० कर० भा० १२। ५ ए० कर० भा० ८ पृ० १५८।
६ कन्स्टीट्यूशन ऑफ साउथ इण्डिया पृ० २६९।

(४) तेलेगु भाषा का ही व्यवहार विजयनगर-नरेशों ने किया।

(५) कर्नाट देश के आराध्यदेव विरुपाक्ष को ही विजयनगर के शासकों ने अपनाया। उनके लेखो के अन्त में "श्री विरुपाक्ष" लिखा मिलता है[1]।

अत में विद्वानो के मतों से तेलेगु जाति से ही इनका सम्बन्ध प्रमाणित होता है। विजयनगर शासकों मे इस जातीयता का गर्व था। पूर्वगामी होयसल राजाओ के किये गए कार्यो का समर्थन किया। वीर बल्लाल तृतीय के सारे दान-पत्रों की पुष्टि की। ज्यों के त्यों दानग्राही उसका उपभोग करते रहे[2]। यदि वश-परम्परा मे भेद होता तो विजयनगर शासक अपनी जातीय प्रभुताको बढाते, अन्यजाति को इतना प्रोत्साहन न देते। इन बातो पर विचार करने से ये होयसल वंशज ही माने जा सकते हैं।

---

१ नेलोर लेख ए० इंडिका भा० ३ पृ० ११७।

२ ए० कर० भा० ६ पृ० १०५।
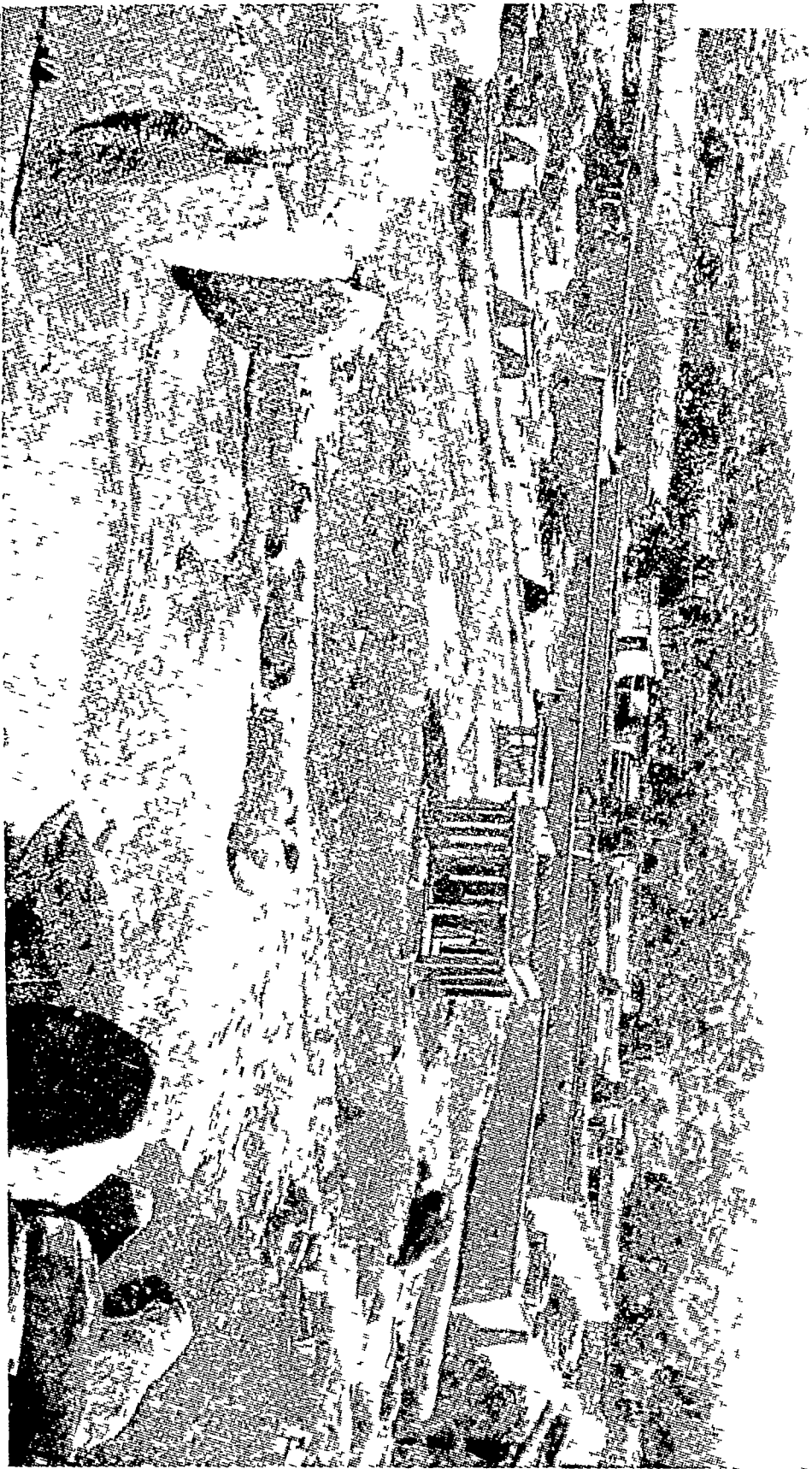
विजयनगर का विहङ्गम दृश्य

थे[1]। एक अन्य शिलालेख मे वर्णन मिलता है कि विष्णु भगवान् चन्द्रवश में जन्म लेने के विचार से सगम के रूप मे पैदा हुए[2]। किसी ने लिखा है कि जिस प्रकार वसन्त के आगमन से समस्त ऋतुओ की शोभा वढ जाती है उसी प्रकार सगम ने अपने गुणो से यदुवश को सुशोभित किया[3]। इसी के वशज सगम द्वितीय के बिट्रगुन्ट दान-प्रशस्ति में भोगनाथ ने लिखा है कि सगम (आदि पुरुष) के चरण कमला पर राजाओं के मणियुक्त मुकुट रक्खे जाते थे और उनका सिर सदा झुका करता था[4]। इन सब बातों के आधार पर संगम एक प्रतापी शासक ज्ञात होता है। सम्भवतः वह होयसलो का आधीनस्थ एक बड़ा सामन्त था। तत्कालीन मुसलमाना को उसने युद्ध मे परास्त किया[5]। इसलिए इन प्रशस्तियो के वर्णन को कोरी कल्पना नहीं मान सकते और साथ ही साथ इन पर विशेष महत्त्व भी नही दे सकते हैं।

आदि-स्थान

सगम का मूल स्थान मैसूर के पश्चिमी भाग मे 'कलास' नामक स्थान मालूम पड़ता है। इसी भाग मे प्रसिद्ध शकराचार्य ने अपने आदि-पीठ शृंगेरी मठ की स्थापना की। इस पर सगम के पुत्र हरिहर बुक्क आदि वड़ी श्रद्धा रखते थे। विजय-नगर की स्थापना के पश्चात् हरिहर तथा उसके समस्त भ्राताओं ने विजय के उपलक्ष मे इस प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान की यात्रा

---

१ ए० कर० भा० ८। २ ए० कर० भा११, २३

३ राइस—मैसूर इन्सक्रिपशन्स पृ० ५५

४ अस्ति प्रस्तूयमानप्रबलनिजभुजाखर्वगर्वानुरोधि ।
स्वाधीनोदारसारस्थगितरिपुनृपोद्दामसग्रामशक्तिः ॥
राजा राजन्यकोटिप्रणतिपरिलुठन्मौलिमाणिक्यरोचि-
राजीनिराज्यमान स्फुरदुरुचरणाम्भोरुह. सगमेन्द्रः ॥
(ए० इ० भा० ३)

५ हेरास—विजयनगर हिस्ट्री पृ० ७३
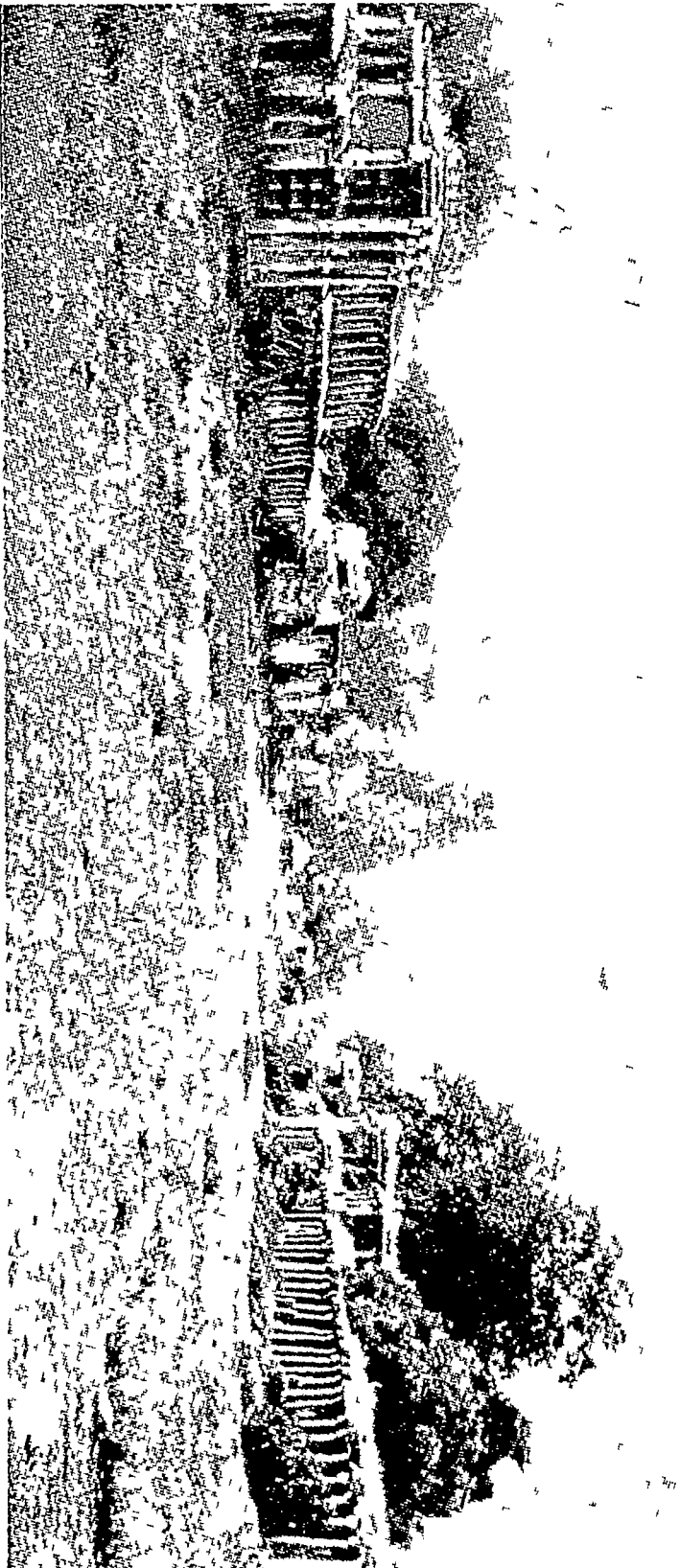
विजयनगर का बाजार

की थी। इस घटना से यही ज्ञात होता है कि ये मैसूर के पश्चिमी भाग के मूलनिवासी थे। अतः इन लोगों के हृदय मे इस तीर्थ पर अतुल श्रद्धा होना स्वाभाविक है।

संगम के पुत्र

सङ्गम के अनेक पुत्र थे जिनका उल्लेख कई शिलालेखों मे भिन्न-भिन्न रीति से मिलता है। किसी लेख मे सङ्गम के केवल एक ही पुत्र बुक्क का नाम मिलता है [1]। यह बात निर्विवाद है कि सङ्गम के पुत्रो मे से बुक्क के कारण ही इस वंश की कीर्ति विजयनगर साम्राज्य के रूप मे कायम रही। इन शिला-लेखों का पूर्वोक्त कथन अन्य ऐतिहासिक प्रमाणो के सामने सत्य नही माना जा सकता। कही सगम के प्रथम दो पुत्रो—हरिहर तथा बुक्क का निर्देश मिलता है [2]। पर अधिकांश लेखो में संगम के पाच पुत्रो के नाम मिलते हैं। यह उल्लेख प्रायः समान क्रम से ही सर्वत्र मिलता है जिससे उनके जेठे तथा छोटे होने का अनुमान सहज मे ही किया जा सकता है। इन पाच पुत्रो के नाम इस प्रकार है [3]:—हरिहर, कम्पण, बुक्क, मारप्पा तथा मुद्दप्पा। हरिहर सब से जेठा और मुद्दप्पा सब से छोटा पुत्र था क्योंकि प्रशस्तियो मे नामोल्लेख का क्रम सब मे एकसा पाया जाता है।

सगम के समकालीन होयसल वंश का प्रतापी शासक बल्लाल तृतीय कर्नाटक देश मे शासन करता था। फिरिश्ता ने लिखा है कि उत्तर के

---

१ एपि० कर्ना० भा० ५, १४८; भा० ८, ६५, भा० ६, ८१ आदि

२ वही भा० ११, ३४, जे बी, बी आए. ए एस० भा० १२ पृ० ३७३

३ तस्मादुद्भवन् पञ्च तनया शौर्यशालिन.।
कल्पावनिरुहा. पूर्वं कलशाम्बुनिधेरिव ॥
आदौ हरिहरः क्ष्माभृदथ कम्पमहीपतिः।
ततौ बुक्कमहीपालः पश्चान्मारप्पमुद्दपौ ॥

एपि० इ० भाग ३, पृ० २५

मुसलमानी आक्रमण की आशका से वीर बल्लाल ने अपने जाति वालों की एक महती सभा की[1]। इसी सभा मे सगम के पुत्रों को विधर्मियों के आक्रमण को रोकने का कठिन कार्य सौंपा गया।

हरिहर प्रथम

सगम का सब से ज्येष्ठ पुत्र हरिहर ही विजयनगर साम्राज्य का स्थापक था। लेखों मे वर्णन मिलता है कि चौदहवीं सदी के पूर्वार्द्ध मे होयसल वश का प्रतापी नरेश वीर बल्लाल तृतीय शासन कर रहा था। प्रारम्भिक जीवन में हरिहर इसी के यहाँ सामन्त के रूप मे कार्य करता रहा। फिरिस्ता का कहना है कि वारगल पर मुसलमानों का अधिकार हो जाने पर काकतीय शासक रुद्रदेव का पुत्र कृष्ण कर्नाटक के अधिपति बल्लालदेव के समीप आया और उसने हिन्दू सस्कृति के विनाशक मुसलमानों की चढाई की सूचना दी। इस गुप्त मन्त्रणा के फलस्वरूप सब ने मुसलमानो से लोहा लेना स्वीकार किया। बल्लाल ने अपने स्वजातियों की एक महती सभा बुलाई जिसमे राज्य-रक्षा के अनेक उपाय सोचे गए। इसकी सफलता के लिए विरुपाक्षपुर की किलेबन्दी हुई और इसमे हरिहर महामण्डलेश्वर बनाया गया[2]। पठानों के आक्रमण से राज्य के उत्तरी भाग की रक्षा करना हरिहर के लिए प्रधान कार्य था। यह काम उत्तर-दायित्व का था। हरिहर की वीरता का परिचय इस उच्च-पद से स्वत. मिलता है। विट्ठगुन्ठ की प्रशस्ति मे उल्लेख पाया जाता है[3] कि हरिहर ने इन्द्र के समान बलशाली किसी मुसलमान सुल्तान को परास्त किया था।

यह कहना सर्वथा न्याय-युक्त है कि बल्लाल तृतीय के जीवन-पर्यन्त

---

१ फिरिस्ता (ब्रिग्सका अनुवाद) भा० १ पृ० ४२७

२ हेरास—विजयनगर हिस्ट्री पृ० ६०

३ तत्र राजा हरिहरो धरणीमशिषच्चिरम्।
सुत्रामसदृशो येन सुरत्राण पराजितः॥
(ए० इ० ३)

हरिहर महामण्डलेश्वर (प्रात-अधिपति) के स्वरूप मे ही शासन-प्रबन्ध करता रहा। सगम के वशज को प्रारम्भिक अवस्था मे स्वतत्रता न मिली तथा हरिहर को इसकी कोई आवश्यकता भी न थी। इसके पश्चात् अतिम राजा विरुपाक्ष के समय मे हरिहर ने होयसल शासन का अन्त करके विजयनगर की स्थापना की। इसका मूल कारण हिन्दू जाति तथा सस्कृति की रक्षा ही माना जा सकता है। दक्षिण भारत मे आर्य सभ्यता को पुनः जीवित करने की भावना से प्रेरित होकर हरिहर को यह कार्य करना पड़ा। सन् १३३६ ई० मे हरिहर ने अपने भाइयो को साथ लेकर शृ गेरी मठ के प्रधान श्रीपाद भारती तीर्थ विद्यारण्य के समीप यात्रा की। अनुमान किया जाता है कि इसने विद्यारण्य के आदेशानुसार विजयनगर साम्राज्य की स्थापना की।

विजयनगर साम्राज्य की स्थापना

उपर्युक्त वर्णन से यह प्रकट होता है कि 'महामण्डलेश्वर' होते हुए हरिहर प्रथम ने सन् १३३६ ई० मे विजयनगर राज्य की नीव डाली। होयसल वश से सम्बन्धित तथा उन्ही के स्थानापन्न होने के कारण हरिहर ने अपनी पदवी को नही त्यागा। वह स्वतन्त्र शासक होने पर भी अपने को 'महामण्डलेश्वर' तथा होयसल भूमि का राजा कहता रहा [1]।

इस काल के पश्चात् प्रशस्तियो मे वर्णन मिलता है, कि दक्षिण भारत के दक्षिण और उत्तरी भाग के अन्य छोटे शासकों ने हरिहर की सत्ता को स्वीकार कर लिया। उसकी आज्ञा का पालन करने लगे। सन् १३४७ ई० के लेखो मे हरिहर को विजयनगर का रक्षक कहा गया है। उसके समस्त भ्राताओं ने हरिहर को सम्राट मान लिया था और उसके शासन मे प्रात के अधिपति थे। कम्पण दक्षिण-पूर्व का अधिपति था। बुक्क द्वारसमुद्र मे शासन करता था [2]। मारप्पा प्राचीन वनवासी राज्य मे चन्द्रगुण्टी स्थान मे राज्य प्रबन्ध करता था। उसने वनवासी लोगों को परास्त कर विजयनगर की प्रभुता बढ़ाई।

शासनकाल व प्रबंध

१ मद्रास आ० रि० १९१६। २ मद्रास आ० रि० १९०६

इस अवस्था मे हरिहर अपने भ्राताओं की सहायता से सन् १३४६ ई० से १३५५ ई० तक शासन करता रहा। उसने कभी सम्राट् की पदवी धारण न की। स्वतन्त्र होते हुए भी जीवन पर्यन्त 'महामण्डलेश्वर' की पदवी से विभूषित रहा। इसका कारण यह था कि उसने होयसल राज्य के स्थान पर विजयनगर की स्थापना की थी। अतएव वह होयसल रीति को लेकर ही कार्य करना चाहता था। जनता ने भी इसे पसन्द किया और राज्य परिवर्तन होते हुए भी प्रजा मे शान्ति विराजमान रही। सभी ने हरिहर की राज-मुद्रा से अकित आज्ञा-पत्र का पालन किया[1]। हरिहर ने तुगभद्रा नदी के दाहिने किनारे पर एक नया नगर बसाया जिसका नाम विजयनगर पडा। यहीं उसकी राजधानी रही। हरिहर उस नगर मे रहते हुए उत्तर से मुसलमानी आक्रमण को रोकने का प्रयत्न करता रहा। विजयनगर की स्थापना से होयसल के आधीन शासकों ने स्वतन्त्र होने का विचार किया।

कदम्ब, कोकण, तेलेगु तथा मदुरा के मुसलमान शासक उस विद्रोह में सम्मिलित थे[2]। यही नहीं, तत्कालीन दिल्ली के तुगलक शासक ने भी हरिहर को परास्त करने का प्रयास किया[3]। परन्तु यशस्वी वीर हरिहर ने सभी विद्रोहियो तथा आक्रमणों को दबा दिया और अपने राज्य मे सुख व शान्ति की वृद्धि की। इन युद्धों के पश्चात् सन् १३५४ ई० में बुक्क को अपना युवराज बनाया[4]। कुछ विद्वानो का मत है कि शासन के अतिम भाग मे हरिहर ने अग और कलिग पर विजय-पताका फहराई थी[5]। सुदूर पाड्य चक्रवर्ती ने भी हरिहर की आधीनता स्वीकार करली।

युद्ध और शान्ति

---

१ ए० कर० ६।

२ कृष्णस्वामी—सोरसेज ऑफ विजयनगर पृ० २२।

३ ए० इ ०३।

४ हेरास—बिगिनिग ऑफ विजयनगर पृ० १०७, ए० कर० भा० ८, ६।

५ वटरवर्थ लेख पृ० ११३।

इस प्रकार तुगभद्रा से लेकर पाड्य देश तक समस्त भाग हरिहर के आधीन रहा। कहने का तात्पर्य यह है कि हरिहर का राज्य-विस्तार होयसल नरेश वीर बल्लाल तृतीय के समान बना रहा। हरिहर ने विजय प्राप्त करने के पश्चात् शृंगेरी मठ मे भूमि दान भी किया जहाँ पर उसके सभी भ्राता वर्तमान थे[1]। इस प्रकार शासन करता हुआ हरिहर प्रथम सन् १३५५ ई० मे इस ससार से चल बसा।

ऊपर बतलाया गया है कि हरिहर प्रथम के अन्य चार भ्राताओं को शासन प्रबंध मे भाग लेने का अवसर प्राप्त हुआ था। जिस समय बल्लाल तृतीय ने अपने राज्य की रक्षा के लिए 'महामण्डलेश्वर' नियुक्त किये उसी समय कम्पण को पूर्वी भाग का भार सौंपा गया था। ये सगम के द्वितीय पुत्र तथा हरिहर के अनुज थे। हरिहर के साथ ही इनका जीवन समाप्त हो गया। अतएव इनके विषय मे कुछ वर्णन करना असगत न होगा। इनका पदवी युक्त नाम कम्पणभति ओडयर लेखों मे मिलता है। इनका कार्य हरिहर प्रथम के साथ होयसल राज्य के पूर्वी भाग मे प्रारम्भ हुआ। इनके उपलब्ध शिलालेखों के प्राप्ति-स्थान से यह सिद्ध होता है। समस्त प्रशस्तिया नेल्लूर जिले के भिन्न-भिन्न स्थानो से प्राप्त हुई हैं। इनके पुत्र सगम द्वितीय का प्रधान शिलालेख नेल्लूर जिले के ही विट्रगुन्ठ नामक स्थान से मिला है[2]। उसमे उल्लिखित स्थानों से ज्ञात होता है कि कम्पण नेलोर तथा कडुप जिलो मे शासन करता था। भौगोलिक स्थिति पर विचार किया जाय तो कम्पण का उस प्रात मे राज्य करना युक्ति-संगत प्रतीत होता है। नेल्लोर जिले के अन्तर्गत ही उदयगिरि का प्रसिद्ध किला था। उस स्थान की विशेष महत्ता थी। इसका कारण यह था कि उत्तरी भाग मे वारगल को मुसलमानो ने जीत लिया था। उदयगिरि पर आक्रमण की बारी थी। इसके अतिरिक्त दक्षिण में प्रवेश करने का यह एक मुख्य मार्ग था। इसका सैनिक महत्त्व अधिक होने

भ्राता कम्पण

---

१ हेरास—पृ० १०५। २ एपि० इडिका भ० ३ पृ० ३३।

के कारण उदयगिरि की रक्षा की व्यवस्था बड़ी सावधानी तथा चतुराई से की गई थी। वहा पर मुसलमानों को रोकना बड़ा सरल था। इन सब बातो पर विचार कर कम्पण को पूर्वी भाग की रक्षा का भार सौंपा गया था।

कम्पण प्रभावशाली शासक था। प्रशस्ति लेखक भोगनाथ का कहना है कि शत्रुओं को सदा कम्पित करने के कारण ही कम्पण नाम सत्य हो गया।[1] बिट्रगुन्ट के लेख मे हरिहर के राज्य करने की घटना के उल्लेख के बाद कम्पण की भी बहुत दिना तक (चिरम्) शासन करने की वार्ता उल्लिखित है।[2] इससे स्पष्ट मालूम होता है कि हरिहर के स्वतत्र शासन-काल में भी कम्पण राज्य-प्रबध मे सहयोग करता रहा। हरिहर प्रथम को सभी भ्राताओं ने राजा माना और शासन मे सहायता करते रहे। होयसल भूपति की आज्ञा के समान कम्पण अपने भ्राता विजयनगर नरेश हरिहर प्रथम की भी आज्ञा का पालन करता रहा तथा दोनों साथ-साथ शासन करते रहे। वीर बल्लाल की तरह हरिहर ने भी समस्त राज्य मे अपने भ्राताओ को अधिपति (महामण्डलेश्वर) बना रक्खा था। कम्पण के पुत्र सगम द्वितीय ने भी अपने पितृव्य हरिहर का नामोल्लेख किया है जिससे यही अनुमान किया जाता है कि दोनों भाइयों में मेल और विशेष मैत्री का व्यवहार था। एक ही समय मे भिन्न-भिन्न प्रांतो पर एक ही उद्देश्य से शासन करने वाले भाइयो में मित्रता का व्यवहार उचित ही नहीं प्रत्युत स्वाभाविक भी है। शृ गेरी मठ की यात्राओं में कम्पण ने अपने भाइयों का साथ दिया था।[3] ये सब बाते हरिहर और कम्पण के पारस्परिक प्रेम को बतलाती हैं।

कम्पण प्रसिद्ध वेदभाष्यकार सायण के आश्रयदाता थे। इनके लेखों

---

१ तस्यानुजश्चिरमशाद् धात्रीं कम्पणभूपतिः।
याथार्थ्यम् भजन्नोभयस्य कम्पयितु द्विषदभि' (ए.पि० इ० भा० ३)

२. ए० कर० भा ४, पृ० २४

३ बटरवर्थ—नेलोर इन्सक्रिप्शन भा० २ पृ० ७८६।

मे सायण का नाम उल्लिखित है। सायण ने भी 'सुभाषित-सुधानिधि' की पुष्पिका मे अपने को पूर्व पश्चिम समुद्राधीश्वर कम्पराज का महाप्रधान बतलाया है[1]। इस प्रबल शासक ने विजयनगर साम्राज्य की स्थापना मे योगदान देते हुए उसे पुष्ट करने का भी प्रयत्न किया था। हरिहर के स्वतन्त्र रूप से राज करते समय एक प्रात का अधिपति बनकर कम्पण ने साम्राज्य के वैभव को बढ़ाया। ये हिन्दू सस्कृति की पूरी तरह से रक्षा करते रहे। हरिहर की मृत्यु के दूसरे वर्ष मे सन् १३५५ ई० मे कम्पण का देहावसान हो गया। अतः कम्पण विजयनगर साम्राज्य का शासक न बन सका। हरिहर के तीसरे भ्राता बुक्क को उत्तराधिकार प्राप्त हुआ।

हरिहर प्रथम के शासनकाल मे उसके चौथे भाई मारप्प को वर्तमान मैसूर राज्य के अन्तर्गत शिमोगा तथा उत्तरी कनारा (वनवासी) का शासन-प्रबध सौपा गया था[2]। मारप्प ने कदम्ब के राज्य को जीतकर विजयनगर साम्राज्य की वृद्धि की।

भ्राता मारप्प

यह कहा जाता है कि इस युद्ध मे हाथी, घुडसवार तथा पैदल सेना ने भाग लिया था। मारप्प अपने मत्री माधव की सहायता से सुचारु-रूप से शासन कर रहा था। विद्वानों की धारणा है कि यह मत्री (माधव) माधवाचार्य से विभिन्न व्यक्ति था[3]। माधव मत्री क्रियाशक्ति के प्रधान शिष्यों मे से था। मारप्प शैवमत को मानने वाला था। उसके रचित ग्रथ 'शैवागम सार' से इस कथन की पुष्टि होती है।

सन् १३५५ ई० मे विजयनगर के शासक हरिहर प्रथम की मृत्यु के पश्चात् बुक्क सिंहासन पर बैठा। होयसल नरेश बल्लाल तृतीय के समय से ही बुक्क राज्य के दक्षिणी भाग का राज्य-प्रबध करता रहा। शिलालेखों के वर्णन से मालूम पडता है कि महामण्डलेश्वर बुक्कराय होयसल राज्य मे शासन

बुक्क

---

१ पूर्वपश्चिमसमुद्राधीश्वरविशालकम्पराजमहाप्रधान-सायणाचार्येण।

२ एपि० कर० भा० ८। ३ वही

करना था[1]। इसके साथ ही साथ उसे युवराज की भी उपाधि मिली थी[2]। सम्भवतः स्वतन्त्र शासक होकर, हरिहर प्रथम ने इसे अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया हो। समस्त लेखों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि १३५५ ई० के पश्चात् विजयनगर साम्राज्य के शासन की बागडोर अपने हाथ मे लेकर भी बुक्क किसी महान् पदवी से विभूषित न हुआ बल्कि अपने को 'महामण्डलेश्वर' ही लिखता रहा।

सर्व प्रथम बुक्क ने शासक होकर अपने राज्य के सहायक शृंगेरी मठाधीश विद्यातीर्थ श्रीपाद को श्रद्धाञ्जलि अर्पित की और वहा अनेक गाव दान मे दिये[3]। इसके पश्चात् अपनी मर्यादा का पालन करने तथा साम्राज्य का सुचारु रूप से सचालन करने के लिए द्वारसमुद्र से अपनी राजधानी विजयनगर को हटा लिया[4]। विदेशी यात्री न्यूनिज ने भी ऐसा ही लिखा है[5]।

विद्वानों का मत है कि हरिहर प्रथम की मृत्यु-पश्चात् तेलेगु प्रात मे विद्रोह प्रारम्भ हो गया। वहा के शासक ने स्वतन्त्र होने का सपना देखा

शत्रुओं से युद्ध

परन्तु प्रतापी शासक ने इन विद्रोहियों को शीघ्र परास्त कर दिया[6]। लेखों मे वर्णन मिलता है कि बुक्क की युद्ध-कुशलता से तथा उसकी तलवार की चमकाहट से शत्रुओं के दिल दहल उठे और उनको अन्ध-गुफाओं मे छिपना पडा[7]। इस प्रकार इसने आन्ध्र, अग

---

१ जे० बी० बो० आर० ए० एस० भा० ,२ पृ० ३२६

२ राइस—मैसूर इन्स्क्रिप्शन्स पृ० २

३ एपि० कर० भा० ६, मद्रास वार्षिक रिपार्ट १९१६

४ अथानुजस्तस्य जगत्प्रतीत श्रीबुक्कराजो विजयाभिधानम्
(एपि० कर० ११ पृ० ४२)

५ सेवेल—ए फारगाटेन इम्पायर पृ० २२, २९९

६ हेरास—विजयनगर की हिस्ट्री पृ० ११९

७ एपि कर० ६, १०, मद्रास आ० रिपोर्ट १९१९ प० ५१

और कलिङ्ग पर अपना प्रभुत्त्व स्थापित किया [1]। विजयी बुक्क ने शत्रुओं को हटा कर धार्मिक मार्ग पर चलकर पृथ्वी की रक्षा [2]।

बुक्क का पर्याप्त समय नये स्थापित बहमनी राज्य के प्रसिद्ध शासक मुहम्मद शाह (सन् १३५८-१३७७ ई०) से युद्ध मे व्यतीत हुआ। सन् १३६५ ई० मे मुहम्मद शाह गुलबर्गा की गद्दी पर बैठा। उसके पश्चात् सुल्तान ने कई कारणो से विजयनगर शासक बुक्क से घोर सग्राम किया। सर्व प्रथम कारण यह था कि बहमनी राज्य मे बुक्क तथा वारगल के राजा विनायक देव (कडप्पा) के नाम के सिक्के प्रचलित थे। सुलतान मुहम्मद ने गद्दी पर बैठते ही सोने के सिक्के अपने नाम से चलाना प्रारम्भ किया। बहमनी राज्य के सेठ साहूकार बुक्क के सिक्के को ही पसद करते थे क्योंकि इस सिक्के का तोल कम था। मुहम्मद शाह को यह बात पसद न आई, उसने राज्य के समस्त सेठो को सन् १३६० ई० मे मरवा डाला और उनके स्थान पर उत्तर भारत से पठानों के साथ आये हुए खत्रियों को बैक का काम सौंपा। इस निर्दय व्यापार से बुक्कराय का हृदय द्रवित हो गया तथा मुहम्मदशाह भी बुक्क के बढते हुए प्रभाव को देखकर मन ही मन जलता था। सन् १३६५ मे राज्यारोहण के अवसर पर दरबार मे हिन्दू नरेशो की अनुपस्थिति के कारण मुहम्मदशाह क्रोधित होगया और दण्ड देने की इच्छा से उसने बुक्क से सोना तथा जवाहिरात मागा। बुक्क इस बात से बहुत क्रोधित हुआ और युद्ध की तैयारी करने लगा। कम्पण तथा बुक्क ने बीस हजार की संख्या मे अपने घुड़सवार युद्ध के लिए भेजे। सेना ने तुंगभद्रा को पार कर मुद्गल किले को जीत लिया। संग्राम मे हजारो मुसलमान हताहत हुए। विजयनगर नरेश ने रायचूर द्वाब को बहमनी सुलतान से लेने के लिए दूत भेजा। मुहम्मद शाह ने राजदूत को

बहमनी से घोर संग्राम

---

1 वटरवर्थ—इन्सक्रिप्शन्स पृ० ११२: एपि० कर० भा० १०

२ धर्मेण रक्षति क्षोणीं श्रीबुक्कभूपतौ।

कैद करलिया। शाति के बदले अन्य मुसलमानों की सहायता लेकर पुन. युद्ध की तैयारी करने लगा। सन् १३६७ ई० की बात है, कि मुहम्मदशाह ने नृत्य के अवसर पर मदिरा से उन्मत्त होकर बुक्क के कोप से द्रव्य लेने के लिए एक पत्र लिखा। स्वभावतः बुक्कराय इससे झुझला उठा और अत में बड़ी विषम लड़ाई हुई। बुक्क के पास विशाल तोपखाना, तीस हजार घुड़सवार तथा नव लाख पैदल सिपाही थे। इस विशाल सेना से मुहम्मद शाह को युद्ध करना सरल न था, परन्तु दौलताबाद की सहायता से हिन्दू तथा मुसलमान सेनाओं में घोर सग्राम हुआ। विजयनगर के सेनानायक मल्लिनाथ ने यवन सेना को पहले तो भगाना प्रारम्भ कर दिया. पर स्वय घायल हो गया। इस घटना से हिन्दू सेना मे भगदड़ मच गई। सत्तर हजार हिन्दू मारे गए। मुहम्मदशाह ने मुद्गल पर पुन. अधिकार कर लिया। समीप की सारी हिन्दू जनता कत्ल कर दी गई। विजयनगर के तोपखाने तथा सारे धनको मुसलमान उठाकर ले गए। इस उथल-पुथल तथा जन-सहार के पश्चात् दोनों शासकों में सुलह हो गई[1]।

शासन-प्रबंध

शान्ति स्थापित हो जाने पर राजा बुक्क ने राज्य-प्रबध आदर्श मार्ग पर व्यवस्थित किया। अपने मंत्रियों की सहायता से हिन्दू-धर्म का पुनरुद्धार किया। इसके समय में तीन मन्त्रियों का कार्य विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रथम माधवाचार्य जो इसके गुरु थे और साथ ही साथ विजयनगर राज्य के मन्त्री के पद पर भी अधिष्ठित थे। माधव मन्त्री के ऊपर पश्चिमी भाग—वनवासी प्रात—पर शासन करने का भार था। यहा से तुरुष्कों को निकाल कर इन्होंने भग्न-मदिरों का जीर्णोद्धार किया तथा प्रजावर्ग मे सुख शाति की स्थापना की। दूसरे मंत्री सायणाचार्य थे जिन्होंने बुक्कराय की अनुमति से चारों वेद और तत्सम्बन्धी ब्राह्मण ग्रथों पर विस्तृत तथा प्रामाणिक भाष्य बनाया। प्रजा मे शाति का वातावरण पैदा

---

१ कैम्ब्रिज हिस्ट्री भा० ३ पृ० ३८०-८४

किया[1]। 'माधवीया धातुवृत्ति' की पुष्पिका से पता लगता है कि पहले सायणाचार्य कम्पराज के पुत्र संगम द्वितीय के मन्त्री रहे,[2] तत्पश्चात् बुक्क के पास चले आए[3]। इनके लेख मे नागण नामक व्यक्ति के भी महाप्रधान होने की बात उल्लिखित है[4]। अन्य विभागों के लिए भी प्रधान नियुक्त किये गए थे। लेखों मे वर्णन से प्रकट होता है कि प्रधान केवल पाच वर्ष के लिए नियुक्त किये जाते थे। धन्नायक, वसेय तथा गोयरस का नाम विशेष उल्लेखनीय है। बुक्कराय के सुशासन तथा कीर्ति का वर्णन प्रशस्तियों मे पाया जाता है। हरिहर के नेलूर लेख मे बुक्क को साक्षात् शिव का अवतार कहा गया है और इसकी ख्याति भुवन-व्यापिनी बतलाई गई है[5]। इसके उत्तराधिकारी हरिहर द्वितीय के अतिरिक्त दूसरे पुत्र कुमार कम्प ने विशेष सहायता पहुचाई। राज्य को मुसलमानों से सुरक्षित करना तथा मदुरा से मुसलमानों को निकालने का कार्य

---

१ श्रीमत्पूर्वपश्चिमदक्षिणसमुद्राधीश्वरकम्पराजसुतसंगमराजमहामंत्री मायणपुत्रमाधवसहोदरसायणाचार्यकृता।

कुछ विद्वानो का कहना है कि माधवाचार्य मारप्प के मंत्री रह चुके थे।

२ देखिए-पराशर स्मृति की टीका (भूमिका)

३ धर्मेण रक्षति क्षोणी वीरश्रीबुक्कभूपतौ (एपि० इ० ३ पृ० १२१)

४ एपि० कर० भा० ६, २६

५ तस्य श्रीसंगमेन्द्रस्य पुत्रोऽभूत् पुण्यवैभवात्।
वीरः श्रीमंगलादर्शो श्रीश्रीबुक्कभूपतिः ॥ १०
ससार्चिरलसं लोका अभुजंगं विभूषयन्।
वदन्त्यनुग्रनामानं शिवोयं बुक्कभूपतिम् । ११
यत्कीर्तिलक्ष्म्याः क्रीडन्त्याः ब्रह्मांडत्रयमण्डलम्
मुक्ताच्छत्रं शशाङ्कस्तु दीपः शुक्रदिवाकरौ। १२
—नेलूर लेख (एपि० इ० ३)

कुमार कम्पण ने किया। इसकी विदुषी पत्नी गगदेवी ने अपने ऐतिहासिक महाकाव्य 'मधुरा विजयम्' मे मदुरा की विजय का वर्णन बड़ी रोचकता के साथ किया है। हरिहर और कम्प के पितृदेव बुक्कराय की प्रशसा माधवाचार्य ने अपनी पुस्तक मे की है, जो उचित ही प्रतीत होती है—

युक्तिं मानवतीं विदन् स्थिरधृति वेदविशेषार्थभाक्।
आसोह क्रमकृध्ययुक्तिनिपुणः श्लाघ्यातिदेशोन्नतिः॥
नित्यं स्फूर्त्यधिकारवान् गत सदा वाध. स्वतन्त्रेश्वरो।
जागर्ति श्रुतिमध्यसङ्गचरित' श्रीबुक्कणक्ष्मापति॥
(जैमिनीय न्यायमाला)

इस आदर्श मार्ग पर शासन कर बुक्क ने अपने साम्राज्य का विस्तार तुगभद्रा से मदुरा तक कर दिया। इस विशाल साम्राज्य की रक्षा और सुप्रबध के लिए विजयनगर शासक ने अनेक विभाग कायम किये।

महामण्डलेश्वर और प्रात-शासन

उसने प्रातों पर एक व्यक्ति नियुक्त किया गया जो 'महामण्डलेश्वर' कहा जाता था। सायण के जामाता मल्लिनाथ का नाम लेखों में उल्लिखित है जो चित्तलदुर्ग प्रात के महामण्डलेश्वर का कार्य करते रहे। कम्पण प्रथम के पुत्र सगम द्वितीय 'पाक विषय' का शासन प्रवध करता रहा। इनकी राजधानी विक्रमपुर थी। प्रबध मे प्रत्येक महामण्डलेश्वर स्वतत्र रूप से काम करते थे। केन्द्रीय विभाग से हस्तक्षेप न किया जाता था। वह स्वतत्र रूप से मन्त्रिमण्डल तैयार करता, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता और समस्त विषयो की जिम्मेदारी महामण्डलेश्वर स्वयं रखता था। वह शासक को युद्ध मे अनिवार्य रूप से सहायता करता था। बुक्क ने प्रधान प्रातों के महामण्डलेश्वर के पद पर अपने पुत्रों अथवा कुटुम्बियों को नियुक्त किया था। हरिहर द्वितीय युवराज होने के नाते पिता बुक्क के साथ रहा करता। कुमार कम्प को सुदूर दक्षिण का प्रात—पाड्य देश—दिया गया, भास्कर को उदयगिरि का भाग सौपा गया[1] और पूर्वी भाग का प्रबध कम्पराय प्रथम के पुत्र सगम

---

[1] एपि० इ० १६०३ नं० ६१

द्वितीय को दिया गया था[1]। समस्त महामण्डलेश्वरो मे सगम द्वितीय का नाम विशेषतया उल्लेख किया जा सकता है। अतः उसके विषय मे कुछ लिखना असगत न होगा।

पिता कम्पराज की मृत्यु के पश्चात् सगम द्वितीय की अवस्था छोटी थी। अतएव सारे प्रात का भार उसके मत्री सायण पर पड़ा[2]। बालक सगम पर सायण का विशेष ध्यान रहा। उसने केवल राज्य का ही प्रबध नही किया परन्तु शत्रुओ को परास्त कर राज्य का विस्तार किया। विद्वान् सायण ने शासक को समस्त विद्यादान कर उच्च पद के योग्य बनाया। इस सुशिक्षा के कारण सगम विद्वान् तथा प्रतापी राजा हुआ। सायण ने युद्ध मे ले जाकर उसे युद्ध-कुशल बनाया।

संगम द्वितीय का एक महत्त्वपूर्ण लेख विट्रगुन्ठ मे मिला है जिसके अध्ययन से इनके जीवन की विशेष घटनाओ का पता मिलता है। ये पितृभक्त तथा गुरुभक्त थे। इनके गुरु उस समय के प्रसिद्ध यति श्री कण्ठनाथ थे[3]। इनकी इच्छा से सगम ने विट्रगुन्ठ नामक बड़ा ग्राम दान मे दिया और उसका नाम 'श्रीकण्ठपुर' रक्खा। पिता की प्रत्येक वार्षिक तिथि पर सगम दान देता था। सायण के सहवास मे सगम विद्वानो का अनुरागी हो गया। मन्त्री सायण के अतिरिक्त उनके अनुज भोगनाथ सगम के नर्म-सचिव थे[4]। सन् १३५५ ई० मे ये सिंहासन पर बैठे। सम्भवतः नव वर्षो तक इन्होने राज्य कार्य किया[5]। भोगनाथ की लिखी

---

१ जयन्त इव जम्भाटे प्रद्युम्न इव शार्ङ्गिणः।
तनय समभूद् वीरस्तस्य संगमभूधरः।
एपि० इ० ३ पृ० २५

२ यही सायण बुक्क प्रथम के भी मन्त्रीपद को सुशोभित करते रहे।

३ एपि० इ० भा० ३ पृ० २६ श्लोक १२

४ इति भोगनाथसुधिया संगमभूपालनर्मसचिवेन। वही पद्य ३५,

५ हेरास—विजयनगर हिस्ट्री पृ० ६८

प्रशस्ति मे ऐसे विरुद सगम के लिए उपयुक्त किये गए है जिनसे पता चलता है कि राज्य की प्रजा विशेष सुखी थी[1]। सगम पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्र के अधीश्वर बतलाये गए हैं। ये शत्रुओं की सेना के विध्वसक थे। अतिशयोक्ति को छोड देने पर भी यह तो निश्चित है कि यह भूपाल एक विजेता था। भोगनाथ ने भी लिखा है कि जयश्री इन्हीं के बलशाली भुजाओं का आश्रय लेकर रहा करती थी[2]।

सगम द्वितीय के अतिरिक्त अन्य महामण्डलेश्वर भी पूर्ण स्वाधीनता से शासन प्रबन्ध करते थे। सायण के सदृश अन्य सामन्तों के मन्त्री वर्तमान थे। लेखों मे वर्णन मिलता है कि वीरुप्पण नामक व्यक्ति पेनुगोंडा राज्य का स्वामी बनाया गया था[3]। इसके मन्त्री ने कृषि की उन्नति के लिए एक नहर बनवाई थी[4]। भास्कर के मन्त्री ने एक तालाब बनवाया था[5]। इससे प्रकट होता है कि प्रान्त के अधिपति अपने मन्त्री की सहायता से समस्त राज्य-प्रबन्ध सुचारु रूप से किया करते थे। यदि केन्द्रीय शासक को किसी महामण्डलेश्वर की आवश्यकता होती तो वह राजधानी मे बुला लिया जाता। बुक्क ने अपने प्रान्त अधिपति विरुप्पण को प्रथम पेनुगोंडा मे नियुक्त किया। पुन: अरगड़ या मले राज्य में तबादला (transfer) कर दिया[6]। कुछ समय पश्चात् वह विजयनगर मे वापिस बुला लिया गया। प्राय: सात वर्ष तक कार्य सम्पादन करने के बाद वह फिर

---

१ निरातका भयात्तस्मिन्नित्यं भोगोत्सवा प्रजा.।

नेलोर का दानपत्र, ए इ भाग ३ पृ० १२१,

२ यद्भुजाश्रयजातकौतुका नापरं जयरमाऽभिवृण्वती।
सयुगानि समुपेयुषी चिरादासिधारमनुतिष्ठति व्रतम्॥

[एपि० इ० ३ पृ० २५

३ एपि० इ० ४ पृ० ३२७। ४ एपि० कर० १२, पृ० ६२।

५ एपि० रिपोर्ट० १९०३ नं० ६१।

६ एपि० कर० भा० ८ नं० २०, ३७।

महामण्डलेश्वर बना दिया गया[1]। इस तरह राजा मण्डलेश्वर की सहायता से शासन करता था।

विजयनगर का समस्त प्रबन्ध करने के पश्चात् शासक बुक्क हिन्दूधर्म को सुदृढ बनाने तथा संस्कृति की उन्नति मे अपना समय व्यय किया करता था। सर्व प्रथम उसने अपने मन्त्री माधवाचार्य को हिन्दूधर्म के मूल स्रोत वेदों पर भाष्य लिखने की आज्ञा प्रदान की। परन्तु माधव ने अपने भ्राता सायण को इस कार्य के लिए योग्य समझ कर राजा से उनकी चर्चा की। बुक्क ने मन्त्री के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और सायणाचार्य पर वेदों के भाष्य लिखने का भार रक्खा गया। सायण ने अपने भाष्य के प्रारम्भ मे इसी बात का उल्लेख किया है—

हिन्दू संस्कृति की रक्षा

यत्कटाक्षेण तद्रूपं दधद् बुक्कमहीपतिः।
आदिशन्माधवचार्यं वेदार्थस्य प्रकाशने॥

ऋग्वेद भाष्य की पुष्पिका मे सायण द्वारा बुक्क की संरक्षता मे रह कर भाष्य लिखने की वार्ता उल्लिखित है[2]।

इन उद्धरणों से पता चलता है कि बुक्क वैदिकमार्ग का प्रवर्तक था। वेदों के सरल होने पर उनके पठन-पाठन से जनता हिन्दू संस्कृति पर आस्था रक्खेगी, इसी विचार से प्रेरित होकर बुक्क ने भाष्य लिखवाने का बीड़ा उठाया था।

बुक्क ने दक्षिण भारत से यवनों को निकाल भगाया। दक्षिण मे श्रीरंगम् पर मुसलमानों ने आक्रमण कर अधिकार कर लिया था। उस स्थान पर मुसलमानों का प्रभाव बढ गया था। मदुरा मे उनका राज्य

---

१ एपि० कर० ६, पृ० ५२ (शक १२६२.)

२ "इति श्री राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरबुक्कसाम्राज्य-धुरन्धरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिता-भाष्ये।

कायम हो गया। उनके बुरे आचरण के कारण प्रसिद्ध वैष्णव भक्त लोकाचार्य भगवान् रंगनाथ की प्रतिमा लेकर भाग गए। वेदान्तदेशिक ने देवगिरि में शरण ली और भिक्षा माग कर जीवन व्यतीत करने लगे। जब माधवाचार्य को पता लगा तो उन्होंने वैष्णव यतियों को बुला भेजा। किसी ने बादशाह के शरण मे रहना पसद न किया [१]। अतएव बुक्क ने अपने पुत्र कुमार कम्पण को सेनापति गोपणार्य के साथ मदुरा से यवनों को भगाने के लिए भेजा। कुमार कम्प ने चम्पराय को पराजित किया और सन् १३७७ ई० में हिन्दू सेना ने मदुरा के सुलतान अलाउद्दीन सिकन्दर शाह को हरा दिया। इस प्रकार मदुरा तथा सारे दक्षिण का मुसलमानो से उद्धार किया [२]। कम्पण की स्त्री विदुषी गङ्गदेवी ने अपने रचित महाकाव्य 'मधुरा विजयम्' अथवा 'कम्पणचरितम्' में विस्तार के साथ मदुरा पर विजय का वर्णन किया है। इस घटना के बाद वेदान्तदेशिक और लोकाचार्य ने भगवान् की मूर्तियों को पुनः स्थापित किया। गोपणार्य सेनापति ने इस कार्य में बहुत सहायता की। इसी कारण उसकी भूरि-भूरि प्रशसा की गई है। वेदान्तदेशिक ने मन्दिर के द्वार पर एक पद्य उत्कीर्ण कराया जिसमे गोपणार्य का नाम उल्लिखित है—

सम्पच्चर्या सपर्या पुनरकृतयश प्रायणो गोपणार्य.।

इसके पश्चात् बुक्क का यश सर्वत्र फैल गया। बहुत सम्भव है कि बुक्क ने महाराजाधिराज की पदवी इस विजय के बाद धारण की हो [३]। एक स्थान पर सायण ने भी ऋक्भाष्य की पुष्पिका मे बुक्क को 'महाराजाधिराज परमेश्वर' लिखा है। इस प्रकार लगभग पचीस वर्षों तक विजयनगर का शासन कर बुक्क ने सामाज्य की सर्व प्रकार से उन्नति की।

---

१ कृष्णस्वामी—कन्ट्रीब्यूशन आफ साउथ इण्डिया पृ० ३११

२ हेरास–आरविदु डाइनेस्टी पृ० १०५

३ एपि० कर० भा० ५
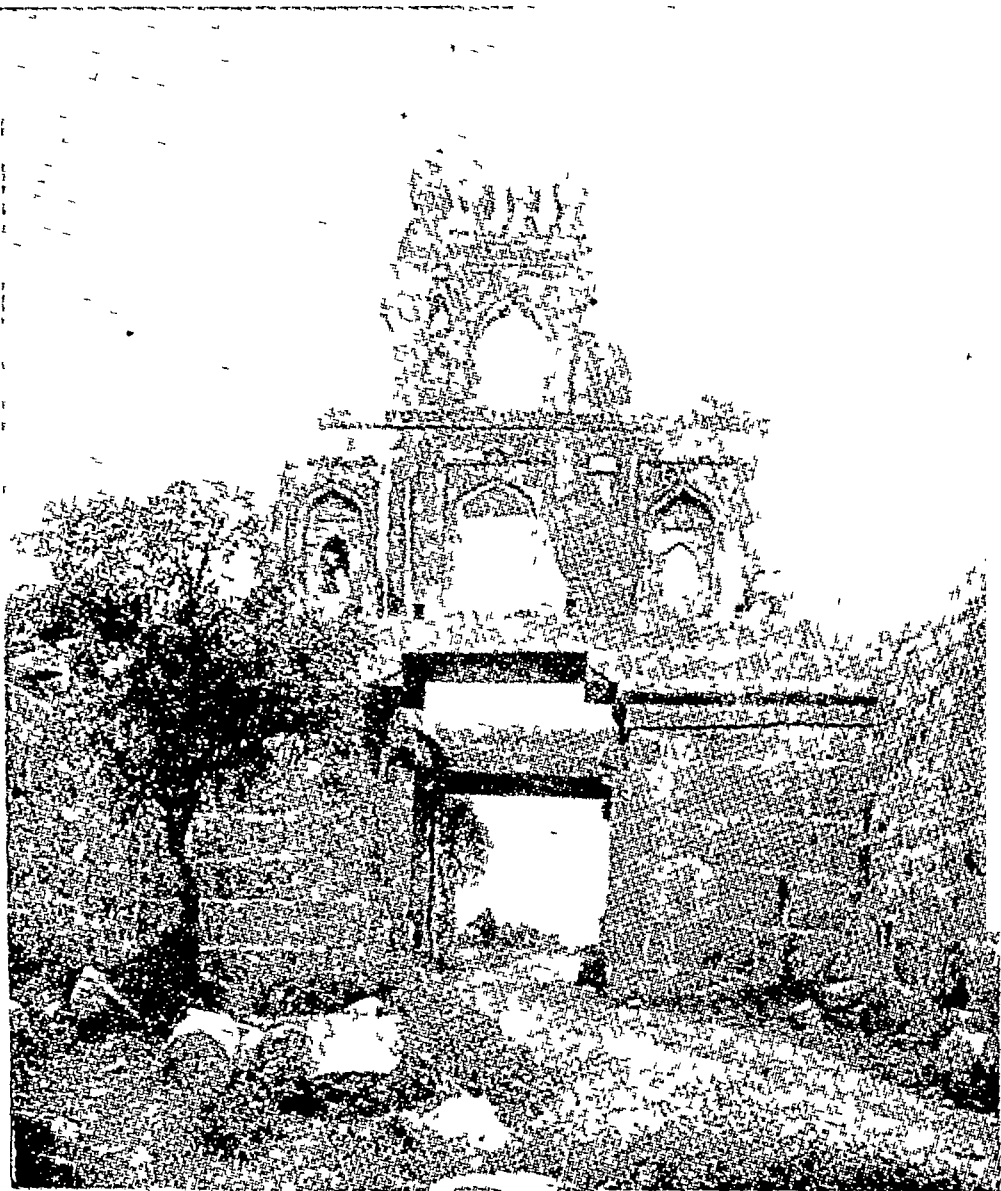
राज-महल का सिंहद्वार

तुगभद्रा से पाड्य देश तक शासन करता रहा। यही कारण है कि लेखों में इसे निम्न लिखित पदवी प्रदान की गई है:—[१]

श्रीमत्प्रतापचक्रवर्तीपूर्वदक्षिणपश्चिमसमुद्राधीश्वरश्रीमन्महाराजाधिराज राजपरमेश्वरश्रीवीरहरिहरमहाराजः॥

इस प्रकार शासन करते हुए हरिहर की ख्याति चारो तरफ फैल गई।

हरिहर ने साम्राज्य को विस्तृत तथा सुशासित करके भारतीय संस्कृति की रक्षा मे अपना जीवन बिताया। इसका प्रमाण लेखों मे तथा तत्कालीन

भारतीय संस्कृति की रक्षा

विद्वानों के रचित ग्रथों मे मिलता है। नेलूर दान पत्र मे हरिहर के लिए 'वैदिकमार्गस्थापनाचार्य' 'चतुर्वर्णाश्रमपालकः' तथा 'धर्म-धुरीण.' आदि पदविया उल्लिखित हैं[२]। सायण ने भी शतपथ ब्राह्मण की पुष्पका मे 'हरिहर को वैदिक मार्ग प्रवर्तक' लिखा है। राजा हरिहर द्वितीय अपने पिता बुक्क के सदृश धर्म का पालक था। उसने दक्षिण भारत मे वैदिक धर्म के प्रसार के लिए बहुत समय व्यतीत किया। सारे समाज मे वर्णाश्रम धर्म को प्रतिष्ठापित किया। सब लोगों तथा सब वर्णों को सब आश्रमों का आचार सिखलाकर आदर्श नागरिक बनाया[३]। अपने कार्य तथा धर्म की उन्नति करके प्रजा को सुख तथा सम्पति प्रदान की। यही कारण है कि प्रजा उसके समय मे सतयुग की बात सोचने लगी[४]।

---

१ नेलूर दानपत्र (एपि० इ० ३)

२ एपि० इ० भा० ३ (नेलूरदानपत्र)

३ सर्ववर्णाश्रमाचारप्रतिपालनतत्परे तस्मिन् चतुसमुद्रान्ता भूमि.-कामदुधाऽभवत्।

४ विजितारातिव्रातो श्रीहरिहरक्ष्माधीश।
धर्मब्रह्मधुरीण कलिं स्वचरितेन कृतयुगं कुरुते॥

हरिहर अपने समय का बडा राजा दानी था। वह षोडश महादान दिया करता था। प्रशस्तियों मे इसके दानो का वर्णन निम्न प्रकार से मिलता हैं—

षोडश महादान

तुलापुरुषदानानि महादानानि षोडश।
कृतवान् प्रतिराज्यन्य वज्रपाताख्यवैभवः॥
यः षोडशमहादानं महामहिमकर्मणा।
भवनं कृतवान् सर्वं भुवनं कीर्तियोषितः॥ [1]

इसी बात की पुष्टि सायण ने अथर्व सहिता के भाष्य के प्रारम्भ में की है—

विजयी हरिहरभूपः समुद्वहन् सकलभूभारम्।
षोडश महान्ति दानान्यनिशं सर्वस्य तृप्तये कुर्वन्॥

यही नहीं कि अपने धर्म या राज्य की उन्नति की भावना से प्रेरित होकर हरिहर ने ऐसा किया हो, परन्तु अन्य मतानुयायियो के साथ भी उसने अपने उदार हृदय का परिचय दिया। हरिहर स्वय शैव था तथा 'विरुपाक्ष' का पुजारी था। परन्तु इसके हृदय मे सहिष्णुता का भाव था। सन् १३२१ ई० मे उसने केशव मदिर के एक भाग का पुनः निर्माण किया तथा १२९१ ई० मे होयसलो के बनाए हुए विष्णु मदिरो का जीर्णोद्धार किया [2]। विजयनगर नरेश ने जैन मदिरों को भी बहुत सा द्रव्य दान में दिया। इसका न्याय-कुशल मत्री इरुगप्प जैन धर्मावलम्बी था, परन्तु उससे राजा अत्यन्त प्रेम करता। उसीके कहने से विजय नगर मे एक विशाल जैन-मदिर बनाने की आज्ञा हरिहर ने प्रदान की। ये बाते राजा की सहिष्णुता का परिचय देती हैं।

इसके अतिरिक्त हरिहर द्वितीय विद्वानो का आश्रय दाता था। इसी के आश्रय मे रहकर सायण ने अथर्व सहिता तथा शतपथ ब्राह्मण पर

---

१ सत्यमंगल दानपत्र

२ सा० इ० इन्सक्रिप्शन भा० १ पृ० १६

भाष्य लिखे। सायण ने शतपथ ब्राह्मण की पुष्पिका मे इसकी पुष्टि की है और हरिहर को 'वैदिक मार्ग' प्रवर्तक लिखा'—

"श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीवीरहरिहरभूपाल-साम्राज्यधुरधरेण सायणाचार्येण।"

इसका ही पिष्टपेषण हरिहर के नेलूर लेख से भी होता है, जिसमे राजा को 'वेद भाष्य प्रकाशक' की उपाधि दी गई है [1]। सायण के अतिरिक्त उसका मत्री इरुगप्प भी विद्वान् पुरुष था। उसने 'नानारत्न माला' नामक कोष का निर्माण किया था। हरिहर के अधीनस्थ सर्वज्ञ का कनिष्ठ भ्राता चिन्नभट्ट भी एक प्रगाढ विद्वान् था। हरिहर के आश्रय मे रह कर उसने भी 'तर्क-भाषा-प्रकाशिका' नाम की पुस्तक लिखी। उस की पुष्पिका से उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है,—

"श्री हरिहरमहाराजपरिपालितेन सहज सर्वज्ञविष्णुदेवरायतनूजेन सर्वज्ञानुजेन चिन्नभट्टेन विरचितायां तर्कभाषाप्रकाशिकायाम्।

इस प्रकार सर्व वर्ण को आचार सिखलाते, आश्रमों को आदर्श मार्ग बतलाते हुए एव पूर्ण सहिष्णुता का भाव प्रसारित करते हुए वैदिक मार्ग प्रवर्तक राजा हरिहर द्वितीय पचीस वर्ष तक शासन करता रहा। सन् १४०४ ई० मे इसकी मृत्यु हो गई। हरिहर के राज्य मे व्यापार की भी उन्नति हुई। उसने अनेक सोने तथा ताँबे के सिक्के अपने नाम से प्रचलित किये जिन पर 'प्रताप हरिहर' उत्कीर्ण है।[2]

सन् १४०४ ई० के पश्चात् हरिहर का जेठा पुत्र देवराय विजय-नगर राज्य का अधिकारी हुआ। कृष्णस्वामी का कथन है कि प्रधान राजकुमार होने के कारण ही देवराय राज्य का उत्तराधिकार हुआ।[3] हरिहर द्वितीय के अन्य दो पुत्र—

देवराय प्रथम

विरुपाक्ष प्रथम तथा बुक्क द्वितीय—थे जो प्रांतों के अधिपति थे। सर हेग

१ एपि० इ० भा० ३ प, ११७

२ एपि० इ० भा २०, २१ पृ० ३०२, ३२१

३ आ० स० रि० १९०७–८

का मत है कि बुक्क द्वितीय हरिहर के पश्चात् इस विजयनगर सामाज्य का अधिकारी हुआ।[1] सम्भवतः दोनों नाम एक ही व्यक्ति के हों। राजकुमार की अवस्था मे उसका नाम बुक्क हो सकता है परन्तु शासन प्रारम्भ होने के साथ नाम बदल दिया गया हो। इस वश मे हरिहर प्रथम के बाद बुक्क शासक हुआ, हरिहर द्वितीय के पश्चात् राजा का नाम बुक्क द्वितीय हो सकता है।

अन्य राजाओं के सदृश देवराय को भी बहमनी के नवाब से युद्ध करना पडा। सन् १४०६ की बात है कि फिरूज ने सब प्रान्तों के मुसलमानो को इकट्ठा करके देवराय प्रथम पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध का कारण यह बतलाया जाता है कि विजयनगर का शासक एक स्वर्णकार की लडकी से विवाह करना चाहता था। वह लड़की इस कार्य से सहमत न थी और बहमनी राज्य मे भग गई। इसी बहाने को लेकर फिरूज ने मुद्गल पर चढाई कर दी। उसके साथ अहमद खॉ ने द्वाब पर अधिकार कर लिया। यवन सेना ने विजयनगर की राजधानी पर धावा किया। इस युद्ध मे देवराय (प्रथम) परास्त होने पर सन्धि के लिए बाध्य हो गया। इस सन्धि में विजयनगर राज्य की बहुत बड़ी हानि हुई। बकापुर के जिले दे दिए गये। असख्य द्रव्य, मोती और जवाहिरात सुल्तान को देने पडे। मुसलमानो ने दो हजार नाचने वाले युवक तथा युवतियो को विजयनगर के शासक से मॉगा। इतने ही से कार्य समाप्त न हो सका और बहमनी सुल्तान शांत न हुए। कहा जाता है कि देवराय को अपनी पुत्री शादी मे देनी पडी तथा उपर्युक्त सामान व राज्य दहेज मे दिये गये[2]। इन सब दुर्दशाओ का मूल कारण स्वयं शासक ही कहा जा सकता है। रण-क्षेत्र मे भी यह अपने राग-रंग में फसा रहा तथा नाचने मे व्यस्त रहना ही पसन्द किया। अतएव मुसलमानी

बहमनी से युद्ध

---

१ कैम्ब्रिज हिस्ट्री भा० ३ पृ० ३६१

२ कैम्ब्रिज हिस्ट्री भा० ३ पृ० ३६२.

सेना को अवसर मिल गया और देवराय प्रथम को परास्त होना पड़ा।

देवराय को उचित मार्ग पर लाने में उसके मन्त्री लक्ष्मीधर का बहुत हाथ रहा। उसने राज्य के समस्त प्रान्तों पर बराबर दृष्टि रक्खी[१]। युवराज विजय को मूलबापी राज्य का महामण्डलेश्वर बनाया। दूसरे मन्त्री इरुगप्प ने भी राज्य की दशा सुधारने में पर्याप्त प्रयत्न किया। यही व्यक्ति देवराय प्रथम से लेकर देवराय द्वितीय पर्यन्त मन्त्री का कार्य करता रहा। इसी के कारण मन्दिरों तथा विद्वानों को भूमि दान में दी गई। इस प्रकार देवराय प्रथम का अंतिम जीवन सुख और शान्ति में बीता। सन् १४२२ में इसकी मृत्यु हो गई और विजय ने राज्यभार ग्रहण किया।[२]

देवराय की मृत्यु के उपरान्त उसके पुत्र विजयराय ने नव वर्ष तक राज्य किया[३]। एक लेख से ज्ञात होता है कि विजय ने 'महाराजाधिराज' की पदवी धारण की[४]। उसके पुत्र देवराय द्वितीय के लेख से भी उपर्युक्त पदवी मिलती है। इस लेख में विजय के लिए 'वीरप्रताप विजयराय महाराज' की पदवी का उल्लेख मिलता है। न्यूनिज का कथन है कि विजय ने केवल ६ वर्ष राज्य किया और इसका दूसरा नाम बुक्क तृतीय था[५]। विद्वानों का मत है कि विजय अपने पिता तथा पुत्र के साथ मिलकर छः वर्ष तक राज्य करता रहा।

विजय के शासनकाल मे बहमनी सेनापति अहमदखाँ ने पुनः विजयनगर साम्राज्य पर आक्रमण किया। कारण यह था कि देवराय प्रथम के परास्त होने पर विजयनगर शासक बहमनी नबाब को वार्षिक कर

---

१ एपि० कर० भा १० नं० ७

२ वही भाग ७ (६३)

३ ईश्वरीप्रसाद—मिडिवल इण्डिया ६, ४१५।

४ एपि० कर० भा० ७

५ एपि० रि० १८०७ पृ० ८३।

दिया करते थे। विजय ने उसे बद कर दिया। अतएव सन् १४२३ ई० में अहमदखाँ ने चढाई करदी। मुसलमानों की सेना तुगभद्रा के किनारे नवरोज त्यौहार मनाने के लिए ठहर गई। प्रजा को तंग करने लगी। विजय ने उनके कार्यो से घबरा कर सन्धि कर ली और पिछला सारा बकाया चुका दिया। परन्तु युद्ध के फलस्वरूप हजारो हिन्दू मारे गये, कैदी बनाए गये तथा इस्लाम धर्म मे दीक्षित किये गये। जब गर्मी के दिन आये, तब अहमदखाँ गुलबर्गा लौट गया। आते समय वह असख्य धन, मूल्यवान् जवाहिरात तथा हाथी साथ ले गया। इन सब बातों से विजयनगर राज्य पर आपत्ति का अनुमान किया जा सकता है। विजय का शासन भी राज्य के लिए दुःख का समय रहा।

देवराय द्वितीय

विजय के पश्चात् उसके पुत्र देवराय द्वितीय ने विजयनगर के शासन की बागडोर अपने हाथ में ली। इसके सर्व प्रथम लेख से ज्ञात होता है कि यह सन् १४२४ ई० मे सिंहासन पर बैठा। उसी लेख मे इसको इम्माडी देवराय कहा गया है[1]। पहले कहा जा चुका है कि देवराय प्रथम की मृत्यु सन् १४२२ ई० में हुई अतएव दोनों लेखों की तिथिया (१४२२, १४२४) यह बतलाती हैं कि विजय इन दो वर्षों मे स्वतत्र रूप से शासन करता रहा। विद्वानों ने विजय का छः या नव वर्ष का राज्य-काल बतलाया है। अतएव यह कहा जा सकता है कि विजय अपने पुत्र देवराय द्वितीय के साथ मिलकर भी राज्य प्रबन्ध करता रहा।

देवराय द्वितीय का राज्य समस्त दक्षिण भारत में लका के समीप तक विस्तृत था। उसके नायक के पद पर उसका भ्राता विराजमान था। उत्तरी आरकाट का भार उसके भाई को तथा उसके मन्त्री लक्ष्मण को शेष दक्षिण का कार्य भार सौंपा गया था। लक्ष्मण सर्व प्रथम राजधानी में मन्त्री का कार्य करता था, परन्तु वह दक्षिण भारत में अच्छे प्रबन्ध के लिए

---

1 एपि० कर० भा० ७; तिथि १३४६ शक।

भेजा गया"। वहां कुछ समय तक काम करके लक्षण सन् १४३१ में सालुव गोपराज को कार्य भार देकर वापस आ गया। वहा उसने अनेक ग्राम दान मे दिए[१]।

देवराय द्वितीय एक आदर्श शासक था। उसके समय मे सगम-वश की उन्नति चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। वह एक विद्वान् व्यक्ति, पण्डितों का आश्रयदाता तथा प्रजापालन में सलग्न रहने वाला राजा था। उसके मन्त्री जैन इरुगप्प ने जैन धर्म के प्रचार के लिए बहुत दान दिया। देवराय ने भी विरुपाक्ष मन्दिर के लिए अनेक ग्राम दान मे दिए। शिक्षा की वृद्धि के लिए शासक ने सम्पतकुमार पण्डित को ग्राम दान दिया। ये आयुर्वेद के प्रगाढ विद्वान् थे तथा विद्यार्थियों को शिक्षा दिया करते थे[२]। देवराय ने यह अनुचित समझा कि प्रजा से राज्य में प्रचलित वैवाहिक कर ग्रहण किया जाय। अतएव उसने इस कर को बन्द कर दिया[३]। इस आज्ञा से विशेषतः कर्नाटक, तामिल तथा तेलेगु के ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुए। प्रजा की श्री वृद्धि तथा खेती की उन्नति-के लिए शासक ने नहरें खुदवाईं। इस प्रकार देवराय द्वितीय के समय में प्रजा सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रही थी।

सब से बड़ा कार्य देवराय द्वितीय ने यह किया कि उसने अपनी सेना मे दस सहस्र तुर्की घुडसवार नियुक्त किए। विजय के परास्त होने के पश्चात् देवराय को ज्ञात हुआ कि हिन्दू सेना मे धनुषधारियों की कमी है। मुसलमान धनुषधारी अधिक दक्ष थे, अतएव युद्ध में उनको विजय मिलती थी। इस कमी को पूरा करने के लिए देवराय ने अपनी सेना में दो हजार मुसलमान धनुषधारी नियुक्त किये थे[४]। इनका मुख्य कार्य

---

१ ए० कर० भा० १० नं० २

२ कैटलाग आफ कापर प्लेट्स् (मद्रास) म्यूजियम, पृ० ४५

३ एपि० रि० १९०५ पृ० ५०

४ एपि० कर० भा० ३ भूमिका पृ० २३

हिन्दू सैनिकों को धनुष सिखलाना था। विजयनगर राजा ने इनके रहने के लिए शहर में एक पृथक् स्थान निश्चित कर दिया। इनके लिए मसजिद तथा कसाईखाने का प्रवन्ध किया गया। राजा अपने सिंहासन के समीप मे कुरान की पुस्तक रखता था जिससे किसी भी मुसलमान को उसके सामने झुकने में (सलाम करने मे) संकोच या विरोध न हो [1]। इस प्रकार देवराय ने अपनी विशाल सेना तैयार कर ली। दो हजार मुसलमान धनुषधारियों ने साठ हजार हिन्दू सैनिकों को धनुष सिखलाया। ऐसी सेना के तैयार हो जाने पर देवराय ने सन् १४४३ ई० में रायचूर द्वाव पर आक्रमण किया। इसने प्रसिद्ध किले मुद्गल, रायचूर और वकापुर को जीत लिया। विजयनगर की सेना ने कृष्णा नदी तक अधिकार कर लिया और बीजापुर तथा सागर तक की भूमि को रौंद डाला। उस सेना में दस हजार मुसलमान धनुषधारी, साठ हजार हिन्दू घुडसवार (धनुष चलने में प्रवीण) तथा तीन लाख पैदल सिपाही सम्मिलित थे। विजयनगर की जीत के पश्चात् मुसलमानी सेना ने अधिक जोर दिखलाया। शत्रु की बलशाली सेना को देखकर देवराय ने बहमनी नवाब अलाऊद्दीन अहमद से सन्धि करली। इस युद्ध मे विजयनगर की बहुत बड़ी हानि हुई तथा कई राजकुमारों की मृत्यु हो गई।

देवराय द्वितीय के शासन काल मे दो विदेशी यात्रियों ने विजयनगर राज्य मे भ्रमण किया। इटली का निवासी निकोलो तथा ईरानी दूत अब्दुल रज्जाक ये दोनों यात्री विजयनगर में रहे। इन लोगों ने देवराय के शासन काल और विजयनगर शहर का सजीव वर्णन किया है।

इटली निवासी सुप्रसिद्ध यात्री निकोलो सन् १४२१ ई० में देवराय के शासन काल में विजयनगर राजधानी में वर्तमान था। उसने लिखा है

निकोलो का वर्णन

कि शहर साठ मील में फैला हुआ था। उस समय नगर में किले, मन्दिर तथा सुन्दर महल बने हुये थे। राजमहल के चारों ओर सात प्राचीरें बनी थीं। साम्राज्य में बहु विवाह की

१ कैम्ब्रिज हिस्ट्री भा० ३ पृ० ४६१

प्रथा प्रचलित थी तथा सती की प्रथा से लोग परिचित थे । भारत के समस्त राजाओं मे देवराय शक्तिशाली नरेश था। राजा की हजारों रानिया थी। वर्ष मे तीन बार बडे समारोह के साथ त्योहार मनाया जाता था— पहिला होली, दूसरा दीपावली तथा तीसरा विजयादशमी का त्योहार प्रसिद्ध था। इन अवसरों पर लोग विभिन्न प्रकार के सुन्दर वस्त्र धारण करते तथा आमोद-प्रमोद में जीवन बिताया करते थे।

अब्दुलरज्जाक

निकोलो के बीस वर्ष के बाद ईरानी दूत अब्दुलरज्जाक विजयनगर मे आया। सन १४४२ ई० में उसने नगर को देखा। उसने राजा, नगर तथा सामाजिक अवस्था का सुन्दर शब्दों मे चित्रण किया है। जब यह राजधानी मे पहुँचा तो राजा ने उसे दरबार मे बुलाया। राजसभा मे राजा मूल्यवान वस्त्र धारण किए हुए बैठा था। अब्दुलरज्जाक ने विजयनगर शासक को घोडे तथा अन्य पदार्थ भेंट मे दिये। देवराय ने ईरान के बादशाह का पत्र लेकर दुभाषिये को पढने के लिये दिया[1]। राजा ने अपनी प्रसन्नता प्रकट की कि बादशाह ने मेरे लिए दूत भेजा है। राजा देवराय की आज्ञानुसार अब्दुलरज्जाक को पान दिया गया। उसकी भोजन सामग्री—दो भेड, चार कबूतर, शक्कर, चावल तथा मक्खन का प्रबन्ध किया गया। चलते समय राजा ने दूत को ५०० सिक्के दिए। अब्दुलरज्जाक ने लिखा है कि शहर घना आबाद था। राजा अत्यन्त शक्तिशाली था। उसका राज्य दक्षिण से गुलबर्गा तक तथा बगाल से मलाबार तक विस्तृत था। राजा की विशाल सेना थी जिसमें ११ लाख सैनिक थे। सब जातियों में ब्राह्मण का ही अधिक आदर होता था। राजा भी उन ब्राह्मणों का ही कहना मानता था। नगर मे सात प्राचीरों के अन्दर राजमहल बनाया गया था। बाजार में मोती, पन्ना, नीलम तथा हीरा बिका करते थे। नगर के समीप तालाब तथा नहर तैयार किये गए थे। इसी किले में दीवान-खाना, सभा-भवन के साथ

---

१ इलियट—हिस्ट्री आफ-इण्डिया भा० ४ पृ० १०५-२०।

दफ्तर खाना (आफिस) भी बना था। उसका कहना है कि राजा देवराय के एक भाई ने राज्य पाने के लिए शासक के जीवन को सकट मे डालने का प्रयत्न किया था पर सयोग-वश देवराय बच गया[1]।

देवराय ने अपने जीवन के अंतिम समय मे बहमनी राज्य तथा लंका पर आक्रमण किया था। देवराय के समय मे कन्नड़ भाषा के कवि तथा लेखक कुमार व्यास का भी आविर्भाव हुआ। वीर शैवो ने अपने मत को खूब फैलाया। विदेशी व्यापार की भी बहुत उन्नति हुई। राज्य मे तीन प्रकार के सिक्के प्रचलित थे जो व्यापार की अधिकता की पुष्टि करते हैं। देवराय के सिक्के पर एक ओर 'राय-गज-गड़भेरुड़' लिखा मिलता-है तथा दूसरी ओर हाथी की आकृति बनी है। इससे ज्ञात होता है कि देवराय जानवरों के शिकार का बडा प्रेमी था। उपर्युक्त बातों पर विचार करने तथा विदेशियो के वर्णन के आधार पर यह प्रकट होता है कि संगम-वश का सबसे बडा-प्रतापी नरेश देवराय द्वितीय ही था। राज्योन्नति की चरम सीमा तथा सुख व शाति की पराकाष्ठा इसी के समय मे दिखलाई पडती है। ऐसे आदर्श मार्ग पर कार्य करते हुए देवराय ने बाइस वर्ष तक शासन किया। सन् १४४६ ई० मे उसकी मृत्यु हो गई। इसके पश्चात् संगम-वश की अवनति प्रारम्भ हो गई।

देवराय द्वितीय के पश्चात् उसके पुत्र मल्लिकार्जुन को राज्य भार सँभालना पडा। विद्वानों का मत है कि सन् १४४९ ई० मे देवराय की मृत्यु हुई और मल्लिकार्जुन गद्दी पर बैठा[2]। देवराय के दोनो लड़के मल्लिकार्जुन तथा विरुपाक्ष के लेख क्रमशः १४५२ ई० तथा १४७० ई० के मिलते हैं। इससे प्रकट होता है कि देवराय की मृत्यु के पश्चात् संगम वश के अंतिम दो शासकों ने प्रायः पच्चीस वर्ष तक राज्य किया। देवराय के पश्चात् विजय-

संगम-वंश के अंतिम शासक

---

१ ऐयंगर—हिस्ट्री आफ-इण्डिया पृ० १५५।

२ ए० इ० भाग ३, पृ० ३६

नगर साम्राज्य को शक्तिहीन समझ कर चारों तरफ से शत्रुओं ने आक्रमण करना आरंभ कर दिया। बहमनी का नवाब तथा उड़ीसा के कपिलेश्वर नामक शासक विजय नगर के प्रधान शत्रु थे।

एक लेख में वर्णन मिलता है कि इम्मादी प्रतापी देवराय जब पर्वत पर निवास कर रहा था व उसको एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम देवता के नाम पर मल्लिकार्जुन रक्खा गया। यह स्पष्टतया उल्लिखित है कि कुमारावस्था में ही मल्लिकार्जुन को राज्य भार सँभालना पड़ा था—

'तयोः प्राचीनपुण्याना परिपाकविशेषत ।
स्वीयजन्मान्तरप्राप्तभाग्यभोगफलाय हि ॥
मल्लिकार्जुन देवस्य श्रीगिरौ सन्निवासिनः।
पितर्युपरते श्रीमान् धीर. परमधार्मिक. ॥
इम्मादि देवेन्द्रो राजाऽभूत् जगतीपति :।
तेजोनिधि. भूमिपते श्रीमल्लिकार्जुन इति प्रथितः कुमार' ॥

राज्यभार के साथ-साथ मल्लिकार्जुन को उड़ीसा के राजा कपिलेश्वर तथा बहमनी के मुसलमान नबाब से युद्ध करना पड़ा। घोर युद्ध हुआ और शत्रुओं को पराजित होकर लौट जाना पड़ा। इस युद्ध का वर्णन 'गगादास-प्रताप-विलास नामक नाटक के द्वितीय अङ्क में निम्न प्रकार से किया गया है।

'विजयनगरीपुरन्दरे श्रीमत्प्रतापदेवराजे महेन्द्रसभालंकारे सति तत्कुमारेण श्रीमल्लिकार्जुनेन साम्राज्यसिंहासनमधिष्ठितम् । तदाकर्ण्य दक्षिणसुरत्राणेण गजपतिना (बहमनी) नरेशेण विजयनगरमावृत्य स्थितं तावदसहमानो गजवलं मृगेन्द्रशावक इव गिरिकन्दरात् विजयनगरतः श्रीमल्लिकार्जुन राजा वहिर्निगर्त्य हयपतिगजपतिसैन्यमशेषमजयत् ।'[1]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि विजयनगर शासक ने बहमनी के तथा उड़ीसा के राजा कपिलेश्वर दोनों को परास्त किया था। फिरिश्ता का कथन

---

१ कैटलाग आफ संस्कृत मैनुसक्रिप्ट्स (इण्डिया आफिस) भा० ७.

दक्षिण भारत

विजयनगर तथा मुसलमानी रियासतें
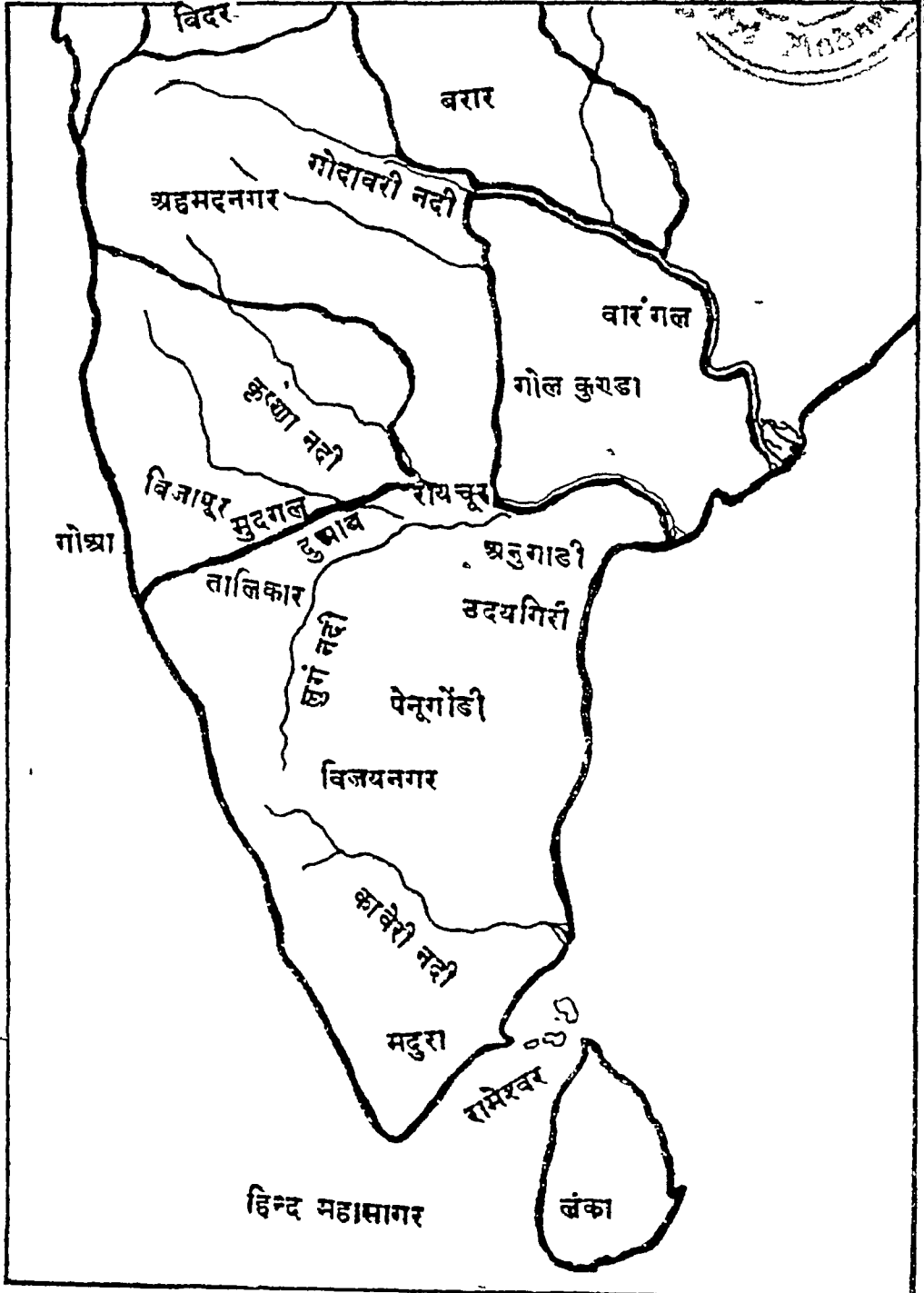
है कि यह घटना सुल्तान अलाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् (सन् १४५८ के बाद) हुई [1]। उड़ीसा का राजा इस पराजय के बाद शात न रहा। वह अवसर ढूंढ़ रहा था। राज्य की अवस्था कुछ अच्छी न थी। अतएव कपिलेश्वर ने बहमनी के सुल्तान से मिलकर तैलिगाना पर चढ़ाई कर दी। इसका वर्णन जगन्नाथ मदिर के एक लेख मे मिलता है, जिससे पता चलता है कि कपिलेश्वर ने कर्नाटक को जीतकर काञ्ची तक अपने अधिकार मे कर लिया था:—

"कृत्वा सम्प्रतिमालवेन्द्रजयिनम् सेनाधिनाथं तु यम्।
गौडेन्द्रस्य नितांतउत्कलपथा प्रस्थानरोधाः गलम्॥
श्रीखंडाद्रिपयोधरो परिकरं निर्माय कांची रहः।
सानन्दं कपिलेश्वरो विहरते कर्णान्तराजश्रिया॥[2]

इस घटना के पश्चात् विजयनगर की शक्ति का ह्रास समझकर पाड्य राजा ने सन् १४६९ में काची पर आक्रमण किया। [3] इस चढ़ाई से यह प्रकट होता है कि विजयनगर के सीमाप्रान्त केन्द्रीय सरकार से पृथक् हो गए थे। बहमनी सुल्तानों के लगातार आक्रमणों से राजधानी विजयनगर से पेनुगोडा हटा दी गई थी। मल्लिकार्जुन प्रायः सन् १४६६ ई. तक शासन करता रहा परन्तु राज्य की नष्ट शक्ति को पुनः वापस न ला सका। तैलिगाना, वारंगल, राजमहेन्द्री और खानदेश पृथक् साम्राज्य हो गये[4]। उडीसा तथा गोडवाना समीपवर्ती रियासते उत्पन्न हो गई। दक्षिण भाग के नायक नरसिंह ने अपने सहायक तिम्म को उत्तर मे भेजा। वह पेनुगोडा

---

१ कृष्णस्वामी—लिटिल नोन चैप्टर आफ विजयनगर (ऐंशेंट इंडिया भा० २ पृ० ३८)

२ ज० ए० सो० बं० भा० ११९ पृ० ९ १७३; एपि० रिपोर्ट १८०६ पृ० ६५

३ एपि० रि० १९०६—७ पृ० ५६

४ कृष्णस्वामी—ऐंशेंट इंडिया भा० २ पृ० ४६

मे राजा के साथ रहा करता था और शासन मे सहयोग दिया करता था। कपिलेश्वर के आक्रमण से बचने के लिए नरसिंह ने चन्द्रगिरि को अपना केन्द्र बनाया जिससे विजयनगर राज्य की वह रक्षा सके। इसका तात्पर्य यह है कि विजयनगर शासक शत्रुओ से राज्य को बचाने मे असमर्थ थे और प्रात के अधिपतियों से सहायता मागने लगे थे। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि समस्त नायकों ने स्वतत्र रूप से दान देना प्रारम्भ किया। तिम्म के किसी भी लेख मे मल्लिकार्जुन का नामोल्लेख नहीं पाया जाता[1] जो उपर्युक्त कथन की पुष्टि करता है।

मल्लिकार्जुन के पश्चात् विरुपाक्ष ने विजयनगर का शासन-प्रबन्ध किया। वह नाममात्र के लिए राजा था। विजयनगर के राज्य प्रबन्ध का भार नरसिह सालुव पर था। विरुपाक्ष के शासन का विरोध समस्त नायकों ने किया। कोई भी उसे नही चाहता था। सब नायकों ने महा-मण्डलेश्वर की पदवी धारण की। उनके दानपत्रो मे विरुपाक्ष का नाम तक नही मिलता[2]। विरुपाक्ष और मल्लिकार्जुन के सम्बन्ध मे विद्वानों मे मतभेद है। कोई इसे राजा का पुत्र तथा कोई भ्राता बतलाता है[3]। परन्तु यह निर्विवाद है कि विरुपाक्ष देवराय द्वितीय का पुत्र था। सन् १४६७ में मल्लिकार्जुन के पश्चात् यह राज्य का स्वामी बना[4]। एक लेख मे विरुपाक्ष के लिए "**निजप्रतापादधिगतराज्यम्**" लिखा मिलता है, जिससे प्रकट होता है कि शक्तिवान् तथा गुणवान् होने के कारण विरुपाक्ष विजयनगर का राजा बनाया गया था:—

---

१ सा० इ० इ० भा० २ नं० २३.

२ वही—नं० ११६

३ कृष्णस्वामी—ऐंशेंट इंडिया भा० २ पृ० ४४ तथा ५२, एपि० रि० १८६१ पृ० ६

४ आर्के० एनुवल १६०७–८ पृ० २२५

''निजप्रतापादधिगत्य राज्यं, समस्तभाग्यैः परिसेव्यमानः।
संग्रामतस्सर्वरिपून् विजित्य, सम्मोदते वीरविलासभूमि.॥

परन्तु सन् १४६६ से लेकर १४८१ ई० तक लगातार शत्रुओ के आक्रमण होते रहे। इन घटनाओ से यही प्रकट होता है कि कोई भी प्रभावशाली राजा इस समय विजयनगर मे न था। मुहम्मदशाह द्वितीय विजयनगर-पर आक्रमण करता रहा और सब लडाइयो में उसको सफलता मिलती रही। मुहम्मद गवान ने गोआ पर विजय प्राप्त की। सन् १४७२ मे बेलगाव विजयनरेश के हाथ से निकल गया। पश्चिमी किनारे के दो मुख्य बन्दरगाह विरुपाक्ष के हाथो से जाते रहे[1]। उसी के समय मे नरसिंह सालुव का प्रभुत्व सारे साम्राज्य मे फैल गया था। उसके उत्कीर्ण लेख सारे राज्य मे मिलते हैं। उसने अपना राज्य स्वतन्त्र रूप से पूर्वी किनारे (मछली पट्टम) से लेकर तैलिगाना तक स्थापित कर लिया[2]। सालुव के लेखो मे 'महामण्डलेश्वर' तथा 'महाराजा' की उपाधि नरसिंह के लिए प्रयुक्त की गई है[3]। सन् १४२६ के लेख से ज्ञात है कि नरसिह ने 'राजाधिराज' की पदवी धारण की[4]। इससे ज्ञात होता है कि विरुपाक्ष का राज्य काल उस समय तक समाप्त हो गया था। इस कथन की पुष्टि उसके पुत्र इम्मादी नरसिंह के एक लेख से होती है जिसकी तिथि शक १४१४ उल्लखित है। कहने का तात्पर्य यह है कि सगम वश का अन्तिम शासक विरुपाक्ष सन् १४८६ ई. तक किसी प्रकार शासन करता रहा। देवराय द्वितीय के बाद विजयनगर के अन्तिम दो राजाओं का समय कष्ट के साथ व्यतीत हुआ। इन्ही के समय मे (सन् १४४६ से १४८६ तक) सगम-वंश का अन्त हो गया और राज्य अत्यन्त अवनत अवस्था को पहुँच गया।

१ सेवेल—ए फारगाटेन इम्पायर पृ० ६६
२ वही--पृ० १०१
३ एपि० कर० भा० ६ व १०
४ वही--भाग १२

विजयनगर का प्रथम राज-वंश

: ३ :
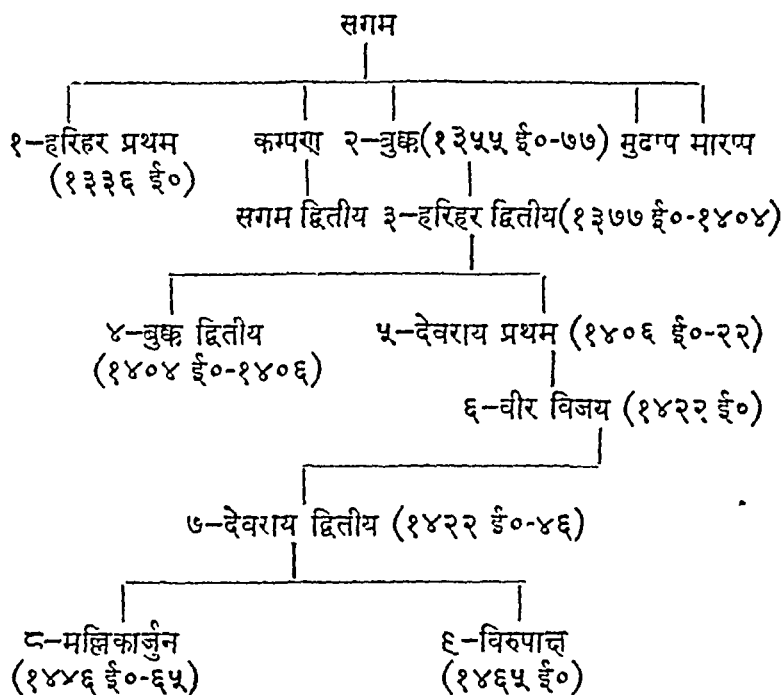
सालुव-वंश

विजयनगर के संगम-वंश का राज्य समाप्त होने पर सालुव-वंश का राज्य प्रारम्भ होता है। सालुव-वश का सर्वप्रथम शासक नरसिंह था। सगम-वश के अतिम शासक—मल्लिकार्जुन तथा विरुपाक्ष के समय मे ही नरसिंह सालुव की बढती शक्ति का परिचय सबको प्राप्त होगया था। नरसिंह चन्द्रगिरि के अधिनायक के पद पर था तथा सगम-वश की ओर से दक्षिण का शासन-प्रबन्ध करता था। सगम-वश के अवनत काल मे उडीसा के राजा तथा बहमनी के सुल्तान विजयनगर पर आक्रमण करने लगे थे। मल्लिकार्जुन तथा विरुपाक्ष मे इतनी शक्ति न थी कि वे शत्रुओ की बढती हुई शक्ति को रोक सके। अतएव गवर्नरो मे सर्व प्रधान नरसिंह सालुव ने राज्य-प्रबन्ध अपने हाथों मे ले लिया। विद्वानो का मत है कि सन् १४८६ के बाद ही सालुव-वश का राज्य आरम्भ हुआ।

नरसिह का सगम-वश से क्या सबध था, यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। परन्तु लेखो के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि दक्षिण भारत मे अनेक सालुव युवक गवर्नर के पद से शासन कर रहे थे। नरसिंह के पितृव्य तिप्प सालुव का विवाह देवराय द्वितीय की बहन से हुआ था। राजनाथ दण्डिन् ने 'साल्वाभ्युदयम्' नामक एक पुस्तक लिखी है। उसमे नरसिंह के युद्धो का वर्णन मिलता है। इस ग्रन्थ के अनुसार यह ज्ञात होता है कि सालुव राजा यदुवशी थे। वाराहपुराण मे भी यादव-वश का उल्लेख मिलता है। इस पुराण मे गुण्ड नामक व्यक्ति का नाम आता है। इसकी ऐतिहासिकता अन्य प्रमाणों से भी सिद्ध की गई है। नरसिह के पुत्र के 'देवलमल्लाई ताम्रपत्र'

वंश

मे गुण्ड नामक व्यक्ति का नाम पाया जाता है[१]। इसीमे नरसिंह का निम्न-लिखित वंश-वृक्ष मिलता है।
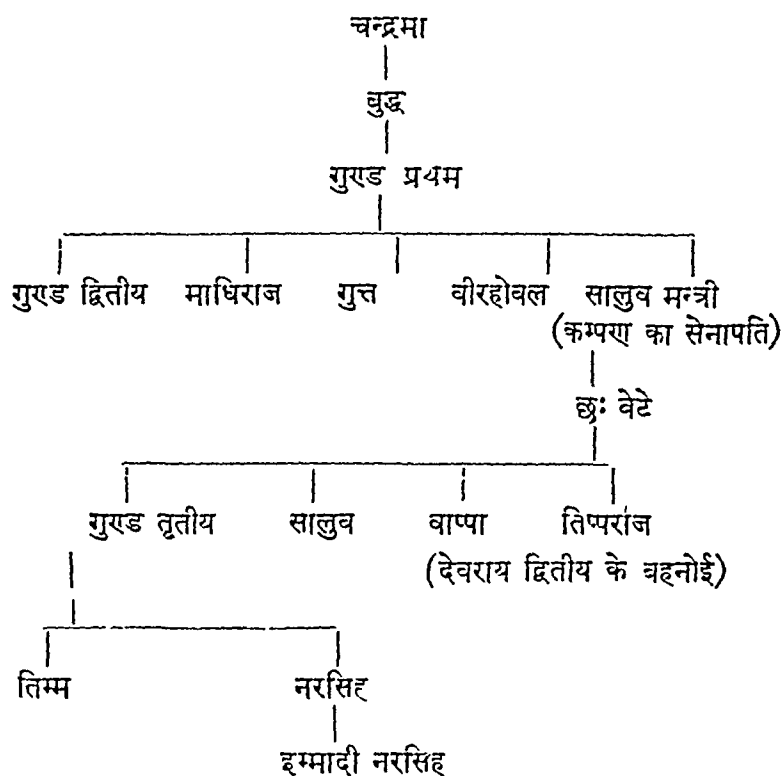
नरसिंह के पूर्व इस वंश के अन्य व्यक्ति भी विजयनगर राज्य (संगम-काल) मे ऊँचे-ऊँचे पदों पर नियुक्त थे। दक्षिणी भारत मे इस वंश की प्रधानता थी। नरसिंह चन्द्रगिरि का गवर्नर (प्रांतीय नायक) था। इस वंश के नामकरण (सालुव) के विषय मे विद्वानो में मतभेद है। कृष्ण-स्वामी का मत है कि नरसिंह ने संगम-वंश से राज्य छीन लिया अतएव इस वंश का नाम सालुव पड़ा[२]। जैमिनी पुराण मे वर्णन मिलता है कि

१ एपि० इंडि० भा० पृ० ७४।

२ आ० स० रि० १९०८-९ पृ० १७६।

मज्जु ने मदुरा के मुसलमान राजा को परास्त किया। उसी समय से इस वंश को सालुव कहा गया। 'सालुव' तेलेगु भाषा का शब्द है जिसका अर्थ बाज (चिड़िया) होता है। देवलमल्लाई-ताम्रपत्र मे ऐसा वर्णन मिलता है कि बाज की तरह नरसिंह ने राज्य को छीन लिया। यही कारण है कि विजयनगर के दूसरे वश का नाम 'सालुव' पडा।

इम्मादी नरसिह के ताम्रपत्र मे ऐसा वर्णन मिलता है कि प्रारम्भ में नरसिंह चन्द्रगिरि का नायक था। वह सदा मुसलमानों से युद्ध करता

प्रारम्भिक कार्य

रहा और मल्लिकार्जुन तथा विरुपाक्ष के समय मे इसने विजयनगर को नष्ट होने से बचाया [1]। देवराय द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् उडीसा के शासक ने तैलिगाना पर अधिकार कर लिया। सन् १४७० ई० मे उड़ीसा के राजा गजपति के मरने पर पुरुषोत्तम ने दक्षिणी भारत पर आक्रमण किया परन्तु सफल न हो सका। इसी समय बहमनी के मुसलमान शासक ने भी चढ़ाई की। नरसिंह ने राजमहेन्द्री मे स्थित होकर बहमनी सुल्तान के बढ़ाव को रोक दिया। उस समय विजयनगर की केन्द्रीय सरकार का विश्वास प्रातीय शासकों पर न रहा। यही कारण था कि नरसिह ने समस्त नायकों की सम्मति से एक योग्य शासक को सिंहासन पर बैठाने के लिए निश्चित किया। नरसिह ने सब नायकों को द्रव्य देकर शात किया और स्वय उसने विजयनगर पर चढाई कर दी। [2] सालुव तिम्म ने भी नरसिह की सहायता की। उसके प्रधान सेनापति ईश्वर ने राजा की बडी सहायता की। इसने कई एक किले जीत लिये। वाराह-पुराण मे भी नरसिह के द्वारा विजित उदयगिरि और पेनुगोंडा आदि दुर्गों का नाम मिलता है। इसने उत्तरी भाग मे तैलिंगाना की प्रधान नगरी राजमहेन्द्री को अपनी राजधानी बनाया। सालुव नरसिंह ने विजयनगर के कुछ प्रातो को अपने आधीन रक्खा पर शेष प्रात स्वतन्त्र हो गए। दक्षिणी महाराष्ट्र सगम वालों के हाथ

---

१ ए० इ० भा० ७ पृ० ७४

२ कृष्णस्वामी—ऐन्शेएट इण्डिया भाग २ पृ० ६७

से निकल गया। ऐसी अवस्था में भी विरुपाक्ष को सिंहासन से हटाना उचित न समझ वह समय व्यतीत करता रहा। सन् १४८६ ई के लेखों में सालुव नरसिंह के लिए 'राजाधिराज परमेश्वर' की उपाधि मिलती है। इसके पहले के लेखों में 'महामण्डलेश्वर' या 'महाराज' की पदविया उल्लखित हैं। अतः इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि सालुव नरसिंह सन् १४८६ ई में स्वतंत्र रूप से विजयनगर राज्य का शासक बन गया।

सालुव-वश का राज्य सन् १४८६ ई से प्रारम्भ होकर सन् १५०६ मे समाप्त हो गया। इस वश में केवल दो शासक हुए। प्रथम सालुव नरसिंह तथा द्वितीय उसका पुत्र इम्मादी नरसिंह। विद्वानों का कथन है कि नरसिंह सात वर्ष तक राज्य करता रहा। न्यूनिज के वर्णन से ज्ञात होता है कि नरसिंह ४४ वर्ष तक शासन करता रहा। सम्भवत· न्यूनिज ने इस चौवालिस साल में नरसिंह के नायक रहने (प्रान्त के गवर्नर) की अवधि को भी सम्मिलित कर लिया है। सगम के वशज मल्लिकार्जुन तथा अंतिम राजा विरुपाक्ष के समय से ही नरसिंह चन्द्रगिरि का अधिपति था। इस सारे समय को मिलाकर नरसिंह का शासनकाल चौवालिस वर्ष का माना जा सकता है।

नरसिंह को बहमनी के सुल्तान मुहम्मद द्वितीय से राजमहेन्द्री नामक स्थान पर युद्ध करना पडा। यद्यपि विजयनगर राजा के पास सात लाख पैदल सिपाही तथा पाच सौ हाथी थे, फिर भी नरसिंह परास्त होकर भाग गया। अत मे बहमनी के सुल्तान से उसने सन्धि कर ली। फल स्वरूप नरसिंह ने वार्षिक कर देना स्वीकार किया तथा असख्य धन भेट मे देना पडा। सुल्तान ने आगे चलकर काची पर चढाई की तथा शहर को नष्ट कर दिया। उसके लौट जाने के पश्चात् सालुव नरसिंह ने अनेक स्थानों पर विजय प्राप्त की। वाराह-पुराण मे ऐसा वर्णन मिलता है कि नरसिंह ने अपने सेनापति ईश्वर की सहायता से बारह दुर्ग जीता और मुसलमानों को परास्त किया। 'जैमिनी-भारत' मे भी सालुव नरसिंह की विजय का वर्णन पाया जाता है। उसने अग, वग और कालिग को जीता। इस तरह

उसका राज्य उत्तरी आरकाट, दक्षिणी आरकाट, चिंगलपुट, नेलोर, कृष्णा जिला तथा मैसूर प्रांत तक विस्तृत हो गया। वाराह-पुराण (श्लोक ३०) में नरसिंह को 'शास्त्रज्ञ' तथा 'कर्नाट प्रतिपालक' कहा गया है। इससे यही कहा जा सकता है कि नरसिंह युद्ध-कुशल था और कर्नाटक तक के देश उसके आधीन थे। इस प्रकार सालुव नरसिंह सन् १४९३ तक शासन करता रहा।

इम्मादी नरसिंह

नरसिंह के पुत्र इम्मादी नरसिंह सालुव वंश का दूसरा राजा था। कहा जाता है कि नरसिंह को अपने सेनापति नरेश नायक (नरसिंह के सेनापति ईश्वर का पुत्र) पर अत्यधिक विश्वास था। मरते समय उसने नरेश से कहा कि मेरे दो पुत्रों मे से योग्य व्यक्ति को राज्य का भार सौंपना। सेनापति नरेश ने प्रथम पुत्र को राज्य न देकर इम्मादी नरसिंह को ही उत्तराधिकारी बनाया। इम्मादी के लेख सारे राज्य मे पाये जाते हैं। सन् १४९३ के एक लेख में इम्मादी नरसिंह के लिए "श्रीमन् महामण्डलेश्वर पश्चिमसमुद्राधिपति सालुवइम्मादीनरसिंहराय" की पदवी प्रयुक्त की गई है। सन्१४९३ ई० मे नरसिंह का शासनकाल समाप्त होने पर इम्मादी शासन करने लगा। नरेश नायक संरक्षक की तरह इम्मादी के राज्य की देखभाल करता रहा। उसके शिलालेखों के प्राप्त स्थान-चूडापा, अनन्तपुर, दक्षिणी कनारा, त्रिचनापल्ली, मदुरा तथा मैसूर प्रांत से प्रकट होता है कि पिता के सदृश उसका भी राज्य विस्तृत था। उसके लेख की अंतिम तिथि १५०२ ई० मिलती है[1], जिसे इम्मादी नरसिंह के शासन काल का अंतिम वर्ष कह सकते हैं। इम्मादी के एक लेख मे दान देने के कारण नरेश नायक को दानी बतलाया गया है। उसमे राज्य का स्वामी नरेश नायक कहा गया है[2]। इससे यह सिद्ध होता है कि सन्

---

१ एपि. रिपोर्ट १९०५ पृ. ८५

२ वही नं. ४४५ आफ १९१३.

१५०२ ई० मे इम्मादी का शासन समाप्त हो गया था । कुछ विद्वान् इम्मादी नरसिंह का राज्य १५०० ई० के बाद समाप्त होना बतलाते हैं। उसके एक लेख में यह बतलाया गया है कि 'महामण्डलेश्वर सालुव इम्मादी नरसिंह महाराज' सन् १४९९ ई० में विजयनगर मे शासन कर रहे थे[1] । इसका शासन सन् १४९३ ई० से १५०१ तक अवश्य प्रसिद्ध रहा । उसी लेख में नरेश नायक सालुव विजयनगर शासक का सेनापति कहा गया है । सन् १५०१ के एक लेख में नरसिंह या वीर नरसिंह शासक कहा गया है[2] । उस लेख मे नरसिंह के लिए 'महाराजाधिराज परमेश्वरवीरप्रतापीवीरनरसिंह' की उपाधि मिलती है । वह शासक विजयनगर मे शासन कर रहा था । यह तिथि बतलाती है कि यह नरसिंह सालुव-वंश का संस्थापक नरसिंह नही हो सकता । इसकी समता नरेश नायक के पुत्र वीर नरसिंह से की जा सकती है । सालुव वंश के दूसरे राजा के लिए इम्मादी शब्द का प्रयोग मिलता है । अत. यह लेख वीर नरसिंह का है ।

---

१ एपि० रिपोर्ट पृ० १६६ आफ १९०१.

२ वही नं १५२ आफ १९०१.

: ४ :

तुलुव-वंश

सालुव नरसिंह ने सेनापति नरेश नायक को अपने बाद विजयनगर का संरक्षक बनाया था, इसी कारण से उसके पुत्रों में से इम्मादी को गद्दी पर बैठाया गया। जब तक वह शासन करता रहा (सन् १५०२ ई० तक) नरेश नायक की ही प्रधानता रही। इम्मादी नाम मात्र का शासक रहा। नरेश के लेखों मे सम्राट् की महान् पदवियाँ उल्लिखित हैं, जिससे प्रमाणित होता है कि नरेश नायक शक्तिशाली हो गया था। इम्मादी के शासन से जनता असंतुष्ट थी, अतएव अधिक विरोध होने के कारण नरेश ने स्वयं राज्य-प्रबंध अपने हाथ मे ले लिया। नरेश नायक ही तुलुव-वंश का प्रथम शासक था।

प्रारम्भिक अवस्था मे नरेश अपने पिता के समान ही विजयनगर के सालुव नरसिंह का सेनापति था। उसने अनेक स्थानों पर विजय प्राप्त की। नन्दी ने 'जैमिनि-भारतम्' तथा 'वाराहपुराण' को नरसिंह तथा उसके सेनापति नरेश को समर्पित किया था। उसमें इसके कार्यों का वर्णन पाया जाता है। नरेश युद्ध-विद्या में बड़ा दक्ष था। सालुव नरसिंह की मृत्यु के पश्चात् १४९३ ई० से १५०५ ई० तक शासन का भार नरेश पर ही रहा[१]। उसकी शक्ति को देख कर ही नरसिंह ने नरेश को राज्य का संरक्षक बनाया था।

नरेश ने अपने बाहुबल से कावेरी के सुदूर दक्षिण के प्रांत पर भी विजय प्राप्त की। वहाँ पर इसने अपना विजयस्तम्भ स्थापित किया[२]। इसका वर्णन निम्न प्रकार से मिलता है।

---

१ कृष्णस्वामी—ऐंशेंट इण्डिया भा० २ पृ० ६१।

२ एपि० कर० भा० ४ पार्ट २।

"कृत्वा श्रीरंगपुरं तदपि निजवले पट्टनं यो वभासे।
कृतिं स्तम्भं निकामत्रिभुवन भवन स्तूयमानापदान. ॥"

नरेश ने गजपतिराय तथा मुसलमान सुल्तान को परास्त किया। इसी कारण इसके लेखों मे 'दुष्टरिपुमृगशार्दूल' की पदवी उल्लिखित है। इसने मदुरा के शासक मानभूप को हराया, पाड्य तथा चोल और केरल शासकों से कर ग्रहण किया[1]।

जित्वा गजपतिं रायविरुदं प्राप साहसात्।
× × × ×
प्रतापोद्दाम तुरुष्केन्द्रं युद्धे जित्वा पराक्रमात।
दुष्टरिपुमृगशार्दूल: इति राजा विरुद अगात्॥
मधुरावल्लभं मानभूपं निर्जित्य संयुगे।
करदी कृत्वा तथा पाड्यचोलकेरलभूपतीन् ॥

इस प्रकार राज्य-विस्तार करके नरेश १५०७ ई० तक शासन करता रहा। विद्वानों का मत है कि शक १४२४ मे इसका पुत्र वीर नरसिंह उत्तराधिकारी हुआ[2]। न्यूनिज का यह कथन है कि इम्मादी को मार डाला गया, नितात भ्रममूलक तथा प्रमाण-रहित है। सन् १५०५ ई० के एक लेख से मालूम होता है कि नरेश विजयनगर में शासन कर रहा था। अतएव इससे प्रकट होता है कि प्राय: १५०६ ई० के समीप वीर नरसिंह को राज्य मिला।

वीर नरसिंह

तुलुव-वश का दूसरा शासक वीर नरसिंह था। यह नरेश नायक का पुत्र था और प्राय: १५०५ ई० के बाद राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। १५०६ ई० के एक लेख मे इसके लिए 'श्रीमान् महाराजाधिराजपरमेश्वरभुजबलप्रतापनरसिंहमहाराज' की पदवी प्रयुक्त है, जिससे प्रकट होता है कि वीर नरसिंह स्वतत्र रूप से

१ वही भा० १०।
२ आ० स० रि० १९०७-८ पृ० १७१।

विजयनगर का शासन करता था। १५०८ ई० के एक लेख में गोविन्द के दान का वर्णन मिलता है, पर यह दान वीर नरसिंह की गुण-वृद्धि के लिए दिया गया था। महा-प्रधान सालुव तिम्म उसका योग्य मन्त्री था। उसने वीर नरसिंह के राज्य-काल मे अत्यन्त नीति पूर्वक कार्य किया। तिम्म के भाई और अन्य सम्बन्धी विजयनगर राज्य मे ऊचे ऊचे पद पर नियुक्त किए गये थे। न्यूनिज का कथन है कि वीर नरसिंह ६ वर्ष तक राज्य करता रहा। उड़ीसा के राजा तथा बीजापुर के सुल्तान अवसर देखकर विजयनगर पर आक्रमण करने लगे। गजपति ने कई एक प्रधान दुर्गों पर अधिकार कर लिया। ऐसे सकटमय काल मे उसके भ्राता कृष्ण-देवराय ने राज्य को आपत्ति से बचा लिया[1]। उसके पराक्रम से तथा युद्ध कुशलता से विजयनगर राज्य एक विशाल साम्राज्य के रूप में पुनः परिवर्तित हो गया। सन् १५०६ मे वीर नरसिंह के उत्तराधिकारी कृष्णदेव राय ने शासन अपने हाथ ले लिया।

कृष्णदेवराय

तुलुव-वंश का तीसरा शासक कृष्णदेवराय था। जैसा कहा गया है वीर नरसिंह के पश्चात् सन् १५०६ मे यह राज्य-प्रबध करने लगा।

व्यक्तित्व

हिन्दू तथा मुसलमान बादशाहों में किसी से इसकी तुलना नही की जा सकती। विदेशियों ने कृष्णदेव की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। पेई का कहना है कि कृष्णदेव राय का शरीर अत्यन्त सुन्दर था। राजा वैष्णव धर्म का अनुयायी था, परन्तु धार्मिक सहिष्णुता के कारण शैवों के लिए भी इसने दान दिये। यह सस्कृत तथा तेलुगु का विद्वान् तथा कवि था। इसके दरबार मे अनेक कवि रहते थे जिनको "अष्ट दिग्गज" कहा गया है। प्रताप में इसकी विक्रमादित्य से समता की जाती है। कृष्णदेव सर्वप्रिय, न्यायकर्ता तथा व्यवहार-कुशल शासक था।

---

१ कृष्णस्वामी—ऐंशेंट इंडिया पृ० ६५

कुछ विद्वानो की राय है कि सन् १५१० में कृष्णदेव राय का अभिषेक किया गया[1]। तेलुगु काव्य-ग्रन्थों में इसे राजा भोज कहा गया है। 'कृष्णराज-विजय' नामक महाकाव्य मे यह उल्लेख मिलता है कि नरेश नायक ने ही कृष्णदेव को अपना उत्तराधिकारी चुन लिया था। वह २१ वर्ष की आयु मे सिंहासन पर बैठा। शासन प्रारम्भ करते ही उसका ध्यान सेना तथा शासन की व्यवस्था की ओर आकर्षित हुआ। कृष्णदेव ने सर्व प्रथम आर्थिक सुधार किया। तत्पश्चात् सेना को बलवान् तथा युद्ध-कुशल बनाने के लिए इसने इसका संगठन किया। सालुव तिम्म ने इसकी बडी सहायता की। इसने घुड़सवारों की सख्या बढ़ाकर चौबीस हजार कर दी। प्रत्येक हजार घोड़ो पर यह एक लाख पगोदा (सिक्का) व्यय करता था। इसने दस हजार हाथियों तथा एक लाख पैदल सेना तैयार की।

सर्व प्रथम कृष्णदेव राय ने शासन की बागडोर हाथ में लेते ही अपने प्रात के सारे नायकों को दबाया। इक्केरी, मदुरा आदि के नायक इसके आधीन हो गए और कर देना स्वीकार कर लिया। कहने का तात्पर्य यह है कि अपनी शक्ति को स्थिर कर लेने पर इसने राज्य के केन्द्रीय प्रात मैसूर आदि देशो पर आक्रमण किया। गोविन्द सालुव को प्रांत का नायक बना कर वह राजधानी को लौट आया। सिंहासन पर बैठते ही दो वर्ष के अन्दर विजयनगर राज्य मे शाति स्थापित हो गई और सब नायकों ने कृष्णदेव राय को अपना सम्राट मान लिया।

सन् १५१३ ई० के प्रारम्भ मे ही कृष्णदेव राय ने उडीसा के शासक गजपति प्रताप पर आक्रमण किया। एक लेख मे वर्णन पाया जाता है

दूसरी युद्ध-यात्रा

कि उडीसा के शासक प्रताप का पुत्र वीरभद्र कृष्णदेव राय के आधीन होकर शासन कर रहा था[2]। उसने राजा को कर देना स्वीकार कर लिया। कहा जाता है कि इससे

१ जे० आर० ए० एस० १९१५ पृ० ३९४

२ एपि० कर० भा० ६ पृ० १०७

पूर्व कृष्णदेव ने तैलिगाना को जीतकर १५१५ ई० मे उडीसा की रानी को कैद कर लिया था। गजपति ने सन्धि की और राजकुमारी का विवाह कृष्णदेव राय से कर दिया। इस युद्ध मे उड़ीसा के अधिनायको ने भी सहायता की थी। विजयनगर की सेना ने सारे राज्य तथा पूर्वी किनारे को रौद डाला। उदयगिरि और राजमहेन्द्री पर अधिकार कर लिया। कृष्णदेव को असख्य धन तथा अनेक मूल्यवान् पदार्थ जीत मे मिले। गोविन्द सालुव उस प्रात का नायक नियुक्त किया गया।[1]

इसके पश्चात् उत्तरी भाग मे स्थित मुसलमान सुल्तानो से लडाई हुई। उस समय ब्रहमनी राज्य पाच भागो मे विभक्त हो गया था। अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुण्डा, बीदर तथा बरार-ये पाचों रियासते अपने प्रभुत्व बढ़ाने के लिए एक दूसरे से द्वेष करती थी। विजयनगर से भी सहायता लेती रही। सन् १५२० ई० मे कृष्णदेव राय ने एक लाख सेना लेकर बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह पर आक्रमण किया। इसने अपने गुप्तचरो से मुसलमान सेना के मार्ग को समझ लिया। इस युद्ध मे पैदल, घुडसवार, धनुषधारी सिपाही तथा तोपखाना भी सम्मिलित था। राजा की सेना ग्यारह भागो मे विभक्त थी। हिन्दू सेना ने रायचूर, मुद्गल तथा आदोनी के दुर्गों को जीत लिया। रायचूर का भाग (कृष्णा-तुगभद्रा का द्वाब) सदा से विजेताओं के लिए लोभ का विषय था। विजयनगर की सेना ने इसे सत्रह वर्ष तक अधिकार में रक्खा। इस प्रकार कृष्णदेव राय के जीवन काल मे मुसलमान सुल्तानों ने आक्रमण करने का साहस नही किया। फिरिस्ता के कथनानुसार उसकी मृत्यु, के बाद रायचूर को मुसलमानो ने छीन लिया[2]। रायचूर का युद्ध दक्षिण भारत के इतिहास मे बहुत प्रसिद्ध है। इसमे मुसलमानो का प्रसिद्ध प्रधान सेनापति सलावत खा पकडा गया। ४००० घोडे, १००० हाथियां ४००, तोपे तथा अन्य

---

१ आ० स० रि० १९०८-९-पृ० १७६

२ ब्रिग-भा० ३ पृ० ६६

सामान जीत मे मिले। परन्तु आश्चर्य तो यह है कि कृष्णदेव राय ने अपनी पुस्तक 'आमुक्त-माल्यम्' में रायचूर के प्रसिद्ध युद्ध का उल्लेख तक नहीं किया है।

कृष्णदेव राय की तीसरी विजय-यात्रा दक्षिण मे हुई। अमगवती के एक लेख से ज्ञात होता है[1] कि विजयनगर शासक ने शिवसमुद्रम् को जीत लिया था तथा नेलोर और त्रिचनापल्ली को जीतता हुआ सुदूर दक्षिण रामेश्वरम् तक पहुँच गया था। वहा जाकर इसने विजयोत्सव मनाया तथा अनेक धार्मिक कार्य किए। सन् १५१६—१५२० ई० तक कृष्णदेव राय ने दक्षिण मे निवास किया। वहाँ पर इसका समय दान देने तथा नष्ट मदिरो के जीर्णोद्धार करने मे व्यतीत हुआ। धनुषकोटि पहुँच कर इसने तुलादान किया। यज्ञ तथा होम किए। वहाँ पर समस्त सेनापतियों तथा ब्राह्मणों को दान दिया। अपने सभासदो की एक सभा की। अनेक कवियों ने इस विजय-यात्रा को काव्य में लिखा है। तेलुगु भाषा का 'कृष्णदेवराजविजयम्' इसी समय तैयार किया गया था[2]।

इस प्रकार तीर्थस्थान मे उत्सव मनाकर कृष्णदेव राजधानी को लौटा और १५३० ई० तक शासन करता रहा। इसका राज्य रामेश्वरम् से लेकर उत्तर मे कृष्णा तक तथा पश्चिमी समुद्र से लेकर पूरब में उडीसा तक विस्तृत था।

इतने बडे विशाल राज्य पर कृष्णदेव राय ने १५०६ ई० से १५३० ई० तक राज्य किया। उसी समय पुर्तगाली लोग पश्चिमी किनारे पर बस रहे थे। इनके गवर्नर अलबुकर्क ने विजयनगर राजा के पास एक दूत भेजा तथा बहुत सा सामान भेट में दिया। उसकी यह प्रार्थना थी कि पश्चिमी किनारे पर पुर्तगाली लोगों को एक किला बनाने की आज्ञा दी जाय। कृष्णदेव ने इसे स्वीकार कर लिया और इससे विजयनगर का व्यापार बहुत बढ़ गया।

---

१ एपि० इण्डि० भा० ७ पृ० १८।

२ कृष्णस्वामी—सोर्सेज़ आफ विजयनगर पृ० ११७।

कृष्णदेवराय का राज्य विस्तार
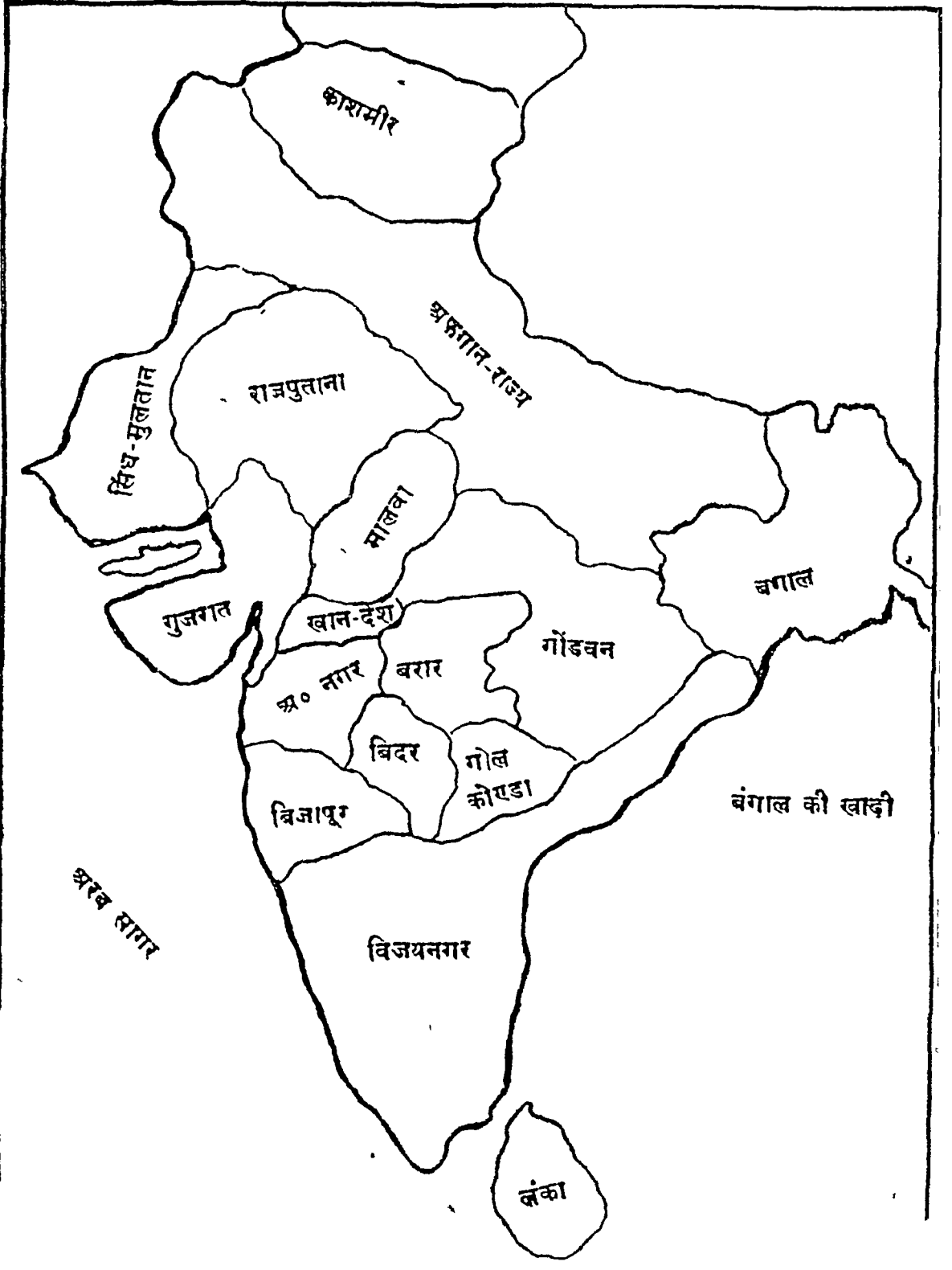
कृष्णदेवराय का शासनकाल विजयनगर के इतिहास में एक महत्वपूर्ण काल था। राजा ने समस्त स्वतंत्र राज्यों को जीत कर साम्राज्य की पहली सीमा के बराबर कर दिया। इसका शासन आदर्श रूप था। कृष्णदेव स्वयं कवि था। इसने 'आमुक्तमाल्यम्' नामक एक पुस्तक राजनीति पर लिखी है। उसके दरबार में 'अष्ट-दिग्गज (महान् पंडित) रहा करते थे'[1]। राजा ने स्वयं वैष्णव होते हुए भी शैव मंदिरों का जीर्णोद्धार कराया। इस प्रकार यह धार्मिक सहिष्णुता के भाव से पूर्ण था। इसने अपनी राजधानी को सुन्दर बनाया। स्वयं बड़ी विशाल अट्टालिकाएँ तैयार करायीं तथा नायकों के लिए भी निवासस्थान बनवाये। इसने एक विशाल वैष्णव मंदिर राजधानी में तैयार कराया। दक्षिण भारत के प्रायः सभी मन्दिरों में 'गोपुरम्' बनवाया। इसने कृषि के लिए तालाब तथा नहरें खुदवाई। इस प्रकार इसने राज्य को अपने समय में उन्नति के शिखर पर पहुंचाया। उसका मंत्री तिम्म भी एक योग्य सचिव तथा सेनापति था। अप्पाजी भी विद्वान् मन्त्री तथा सच्चा सहायक था। राजा की सहायता उसने सदा की। पुर्तगालियों से सम्बन्ध करने से विजय-नगर में व्यापार की खूब तरक्की हुई। तेलुगु तथा संस्कृत साहित्य की पर्याप्त अभिवृद्धि हुई। अतएव कहा जा सकता है कि कृष्णदेव राय एक महान् शक्तिशाली, नीति कुशल, न्यायप्रिय तथा विद्वान् शासक था। इसके राज्यकाल में विजयनगर की सर्वाङ्गीण उन्नति हुई।

चरित्र

कृष्णदेव राय की मृत्यु के पश्चात् विजयनगर की अवनति प्रारम्भ हो गई। मुसलमानों ने आक्रमण करना प्रारम्भ किया। इसी संकट की अवस्था में कृष्णदेव के भाई अच्युत को राज्य का कार्य-भार संभालना पड़ा[2]। अच्युत अत्यन्त निर्बल शासक था। सिंहासन पर बैठते ही राज्य के उत्तरी भाग पर आक्रमण

अच्युत

---

१ मैसूर तथा कूर्ग लेख पृ० ११६।

२ कृष्णस्वामी—सोर्सेज़ आफ विजयनगर हिस्ट्री पृ० १५८

प्रारम्भ हो गए। बीजापुर के सुल्तान ने रायचूर तथा मुद्गल के प्रांत को जीत लिया। अच्युत उसका सामना न कर सका। हिन्दू सेना हार गई और राजा को नीचा देखना पड़ा। सुल्तान के बाध्य करने पर अच्युत को मुसलमानों को वार्षिक कर देना पड़ा।

अच्युत के समय मे उसके बहनोई तिरुमल मत्री के हाथ में शक्ति थी। राजा उसी के कहने के अनुसार कार्य करता था। सन् १५३० ई० के बाद अच्युत की कमजोरी के कारण प्रायः सभी प्रांतों के नायक स्वतंत्र हो गए। सब ने विद्रोह कर दिया। वीर नरसिंह जो एक विश्वासपात्र शासक था, राज्य के मध्य-भाग में शासन करता था। वह विद्रोहियों के साथ ट्रावनकोर की ओर भाग गया। मदुरा के शासक ने कर देने से इन्कार कर दिया। अन्त मे नरसिंह के पुत्र विश्वनाथ को शासन प्रबन्ध दिया गया। परन्तु विश्वनाथ भी राज्य का प्रबन्ध सुचारु रूप से करने मे असफल रहा। अच्युत ने सामंतो को दबाने के लिए दक्षिणी भाग पर आक्रमण किया तथा श्रीरंगम् पर चढाई की। उसका बहनोई तिरुमल ही सेना का प्रधान था। पाड्य देश (कांची) तक विजयनगर की सेना पहुँच गई। पाड्य देश के राजा ने अपनी पुत्री का विवाह अच्युत से कर दिया। फलस्वरूप शांति स्थापित हो गई। इस युद्ध-यात्रा में अच्युत की सहायता उसके पुत्र वेंकट ने की। मद्रास के एक लेख में इसका वर्णन पाया जाता है[1]।

जैसा ऊपर कहा गया है बीजापुर के सुल्तान ने रायचूर द्वाब पर अधिकार कर लिया था। अच्युत ने अपनी बड़ी सेना लेकर उसी भाग पर आक्रमण किया परन्तु हिन्दू सेना तथा राजा भोग विलास मे फँस गए। युद्ध क्षेत्र मे ही नाच और गाना होने लगा। मुसलमान सेनापति ने सुअवसर पाकर धावा बोल दिया और राजा को गहरी हार खानी पड़ी।

शासन का समस्त प्रबन्ध अच्युत के बहनोई तिम्म के हाथ में

---

१ मद्रास इपि० रि० सन् १६०० ई०

था। राजा के भाइयों को यह बात बुरी मालूम हुई। राज्य मे सब प्रकार से तिम्म की ही प्रधानता थी। परन्तु कृष्णदेव की विधवा रानी अपने जामाता रामराय को चाहती थी। अतः राजा के भाइयं ने सेना तैयार करके राजधानी पर चढाई कर दी। तिम्म ने सबको परास्त किया। अच्युत १५४२ ई० मे मर गया। यह परम वैष्णव शासक था। इसने अनेक दान किए। इसकी सभा के राजकवि राजनाथ ने 'अच्युत राया-भ्युदयम्' नामक पुस्तक की रचना की है। इससे इसके जीवन की वार्ता मालूम होती है। अच्युत की मृत्यु के पश्चात् तिम्म चाहता था कि अच्युत के वश को समाप्त कर दे। एक लेख मे ऐसा वर्णन मिलता है कि कृष्ण-देवराय ने अच्युत के पुत्र वेकट को उत्तराधिकारी चुन लिया था[1]। परन्तु उसकी अवस्था कम होने तिम्म राज-वंश को नष्ट करना चाहता था। वेकट एक विद्वान् व्यक्ति था[2]। वह तिम्म के अधिकार मे था। अतः अच्युत की विदुषी स्त्री वरददेवी ने बीजापुर के सुल्तान आदिल-शाह को वेकट को बचाने के लिए लिखा। अच्युत के उत्तराधिकारी सदा-शिव के एक लेख से इस बात की पुष्टि होती है कि तिम्म राज-वश को समाप्त करने पर कमर कस के बैठा था। परन्तु आदिलशाह ने रानी की प्रार्थना स्वीकार कर ली और तिम्म के ऊपर चढ़ाई कर दी। तिम्म इस बात को सुन कर बहुत क्रोधित हुआ। प्रजा तथा सभी सरदार आदिलशाह की ओर थे। तिम्म ने क्रोध के कारण अनेक सरदारों की आँखे निकलवा-ली, घोड़ो के पैरों की नसे कटवा दी, हाथियों को अन्धा कर दिया और सारे कोप को नष्ट कर दिया[3]। फिरिस्ता का कहना है कि तिम्म ने आदिल-शाह को पचास लाख रुपये तथा सैकडों सुन्दर हाथियो को घूस मे दिया। सुल्तान विजयनगर मे प्रवेश कर के भी घूस के कारण वापस चला गया।

---

१ एपि० कर० भा० ६

२ एपि० इण्डिका, भा० ६। सेवेल- पृ० १२

३ एपि० इं० भा० ४

तिम्म ने आक्रमण के भय से मुक्त होकर अच्युत के पुत्र वेंकट की हत्या करवा दी[१]। इस प्रकार तिम्म का प्रभाव पुनः स्थापित हो गया। प्रजा को पुनः अत्यन्त कष्ट होने लगा। तिम्म चाहता था कि तुलुव-वंश में कोई जीवित न रहे। परन्तु रामराय ने तिम्म के अत्याचार को नष्ट कर तथा उसे गद्दी से हटा कर सदाशिव (अच्युत के भतीजे) को राज्य दिया।

सदाशिव को सिंहासन पर बैठाने का विवरण तामिल-साहित्य में विशद रूप मे मिलता है[२]। तिम्म के अत्याचार से प्रजा त्रस्त थी। वेंकट की हत्या से और सुल्तान के आक्रमण का भय टल जाने से तिम्म का अत्याचार बढने लगा। अतएव कृष्णदेव राय के जामाता रामराय ने राजधानी पर चढाई कर दी और दुष्ट तिम्म का दमन कर विजयनगर में शांति स्थापित की। तामिल-साहित्य मे किये गये वर्णन की पुष्टि रामराय के एक लेख से होती है। उसमें रामराय को कर्नाटक (विजयनगर) का संरक्षक बतलाया गया है[३]।

रामराय ने विजयनगर को जीतकर तुलुव-वंश के अंतिम शासक सदाशिव को सिंहासन पर बैठाया। एक कवि ने लिखा है कि राज्य के

सदाशिव

मिलते समय सदाशिव की अवस्था तेरह वर्ष की थी, अतएव वह शक्ति-रहित था[४]। सदाशिव तिरुपति नगर में युवराज बनाया गया और विजयनगर मे वह सिंहासन पर बैठा[५]। सदाशिव के एक लेख मे यह उल्लेख मिलता है कि रामराय तथा अन्य मन्त्रियों ने मिलकर सदाशिव को गद्दी पर बैठाया था[६]। सदाशिव के

---

१ आ० स० रि० १६००-१।

२ कृष्णस्वामी—सोरसेज पृ० २२४

३ एपि० कर० भा० ५

४ सोरसेज पृ० १६०

५ वही पृ० १५८

६ एपि० इण्डिका भा० १४

अभिषेक का वर्णन 'वसुचरितम्' नामक काव्य में मिलता है[1]। उसमे उसकी उपाधि 'वीरप्रतापवीरसदाशिवरायदेव' लिखी मिलती है। इससे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि रामराय ने बड़े समारोह के साथ सदाशिव का अभिषेक किया। सदाशिव कृष्णदेव राय की तृतीय पत्नी से उत्पन्न हुआ था। उसी के जामाता रामराय ने विजयनगर मे शाति स्थापित करने तथा अपना प्रभुत्व स्थिर करने के लिए सदाशिव को राज्य-शासन दिया।

'रामराय-चरितम्' नामक ग्रन्थ मे वर्णन मिलता है कि उसने अनेक किले जीते। लेखो मे वह सदा सदाशिव का बहनोई कहा गया है[2]। न्यूनिज का कथन है कि रामराय अच्युत के समय से ही शासन प्रबंध मे अपनी सम्मति देता था परन्तु सदाशिव को सिंहासन पर बैठा कर स्वयं साम्राज्य का शासन करने लगा[3]। चिक्कराय वशावली में भी यही वर्णन मिलता है कि वास्तविक शक्ति रामराय के हाथों मे थी[4]। समस्त मुसलमान ऐतिहासिकों ने इसी बात की पुष्टि की है। सन् १५४७ ई० के एक लेख मे उपर्युक्त बातें इस प्रकार लिखी गई हैं कि 'महा मण्डलेश्वर रामराय की सरक्षता मे सदाशिव विजयनगर का राजा था[5]।"

विदेशी यात्रियों ने वर्णन किया है कि १५५२ ई० मे रामराय ने सदाशिव को कैद कर लिया। वर्ष में केवल एक बार वह प्रजा को दिखलाया जाता था। परन्तु किसी भी लेख से 'इसकी पुष्टि नहीं होती। अतएव इससे यही तात्पर्य निकाला जा सकता है कि सदाशिव रामराय के हाथो में कठ-पुतली के समान था। कई लेखो मे सदाशिव तथा रामराय के दान देने का वर्णन मिलता है[6]। कुछ लेख ऐसे भी प्राप्त हैं जिनमें

१ सोरमेज पृ० २१६

२ एपि० इ० भा० ४ पृ० ३

३ सेवेल—ए फारगाटेन इम्पायर पृ० ३६७

४ सोरमेज पृ० ३०२

५ बटरवर्थ—नेलोर इन्सक्रुप्शन भा० ३

६ एपि० कर० भा० ४

रामराय तथा सदाशिव दोनों की वंशावली का उल्लेख पाया जाता है[1]। इन प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि रामराय ही वास्तविक रूप मे शासक था। परन्तु आरम्भ में सदाशिव को हटाकर स्वय राजा बनने की बात उसने न सोची और पर्याप्त समय तक संरक्षक के रूप मे सभी राज्य-प्रबंध करता रहा। इस प्रकार १५७० ई० तक सदाशिव नाममात्र का शासक रहा। यद्यपि रामराय के लेखों में १५६३ ई० से उसके लिये सम्राट की पदवी प्रयुक्त मिलती है और विजयनगर के शासक सदाशिव का नामोल्लेख भी नही मिलता, तो भी यह कहा जा सकता है कि सदाशिव तथा रामराय के जीवन मे इतना घनिष्ट सम्बन्ध था कि एक का जीवन-चरित दूसरे की जीवन कथा से पृथक नही किया जा सकता। अतएव सदाशिव के जीवन का इतिहास यहा न देकर रामराय के साथ लिखा जायेगा।

सालुव-वंश-वृक्ष

नरसिंह
|
इम्मादी नरसिंह

—०—

तुलुव-वंश-वृक्ष

नरेश नायक
|
वीर नरसिंह
|
कृष्णदेव राय
|
अच्युत
|
सदाशिव

---

१ एपि० इं० भाग १४

: ५ :

आरविदु-वंश

तुलुव-वंश के पश्चात् विजयनगर के शासन का भार आरविदु-वंश पर पड़ा। तुलुव-वंश का अंतिम राजा सदाशिव सिंहासन पर बैठा था परन्तु वास्तव मे रामराय ही उसका सारा राज्य-प्रबंध करता था। यह लिखा जा चुका है कि सदाशिव तथा रामराय का जीवन काल प्रायः साथ ही समाप्त हो गया। सदाशिव के राज्य काल मे रामराय ने अपना जीवन व्यतीत किया। यद्यपि वह गद्दी पर नहीं बैठा परन्तु साम्राज्य का वास्तविक शासक वही था। अतः सच देखा जाय तो आरविदु-वंश का प्रारम्भ सदाशिव के अभिषेक से ही प्रारम्भ होता है। रामराय इस वंश का प्रथम ऐतिहासिक शासक था।

रामराय

रामराय के लेखों से ज्ञात होता है कि वह कृष्णदेव राय के मंत्री श्रीरग का पुत्र था। उसके लेखों मे 'महामण्डलेश्वररामरायपुत्रश्रीरंग-देव महाराज' मिलता है। फिरिस्ता का कथन है कि सर्व प्रथम रामराय गोलकुण्डा के सुल्तान कुतुब-शाह के एक जिले का शासक था। बीजापुर के आदिलशाह ने इसे बुरी तरह से वहाँ से निकलवा दिया, अतः ,प्रतिष्ठा-रहित होकर दुःखपूर्वक रामराय विजयनगर को लौटा। कृष्णदेव राय ने इसे योग्य तथा कार्य कुशल देखकर अपनी पुत्री ब्याह दी और इसे तामिल देश का नायक नियुक्त किया। उसी समय से रामराय योग्यता पूर्वक विजयनगर राज्य के अन्तर्गत शासन करने लगा। अच्युत की मृत्यु के पश्चात् वेंकट के समय में विजयनगर का मंत्री तिम्म उस वंश को नष्ट करना चाहता था। प्रजा संकट मे थी और अत्याचार से पीडित थी। अतएव रामराय ने विजय-नगर पर चढ़ाई की, दुष्ट राजा का दमन किया और तुलुव-वंश के अंतिम

राजा सदाशिव को सिंहासन पर बैठाया (जिसका वर्णन पिछले पृष्ठों मे किया जा चुका है)। रामराय चाहता तो विजयनगर के समस्त राज्य का स्वामी बन जाता, परन्तु प्रजा को शात करने के लिए तथा आरविदु-वश की प्रतिष्ठा को स्थापित करने के लिए रामराय ने सदाशिव को ही राजा बनाया। यद्यपि लेखों मे तुलुव-वश के साथ, रामराय का भी वश उल्लिखित मिलता है और वह सदा सदाशिव का बहनोई लिखा गया है,[१] परन्तु इसका यह अर्थ नही है कि वह स्वयं राजा बन गया। 'नरपति-विजयम्' नामक काव्य मे भी यही लिखा मिलता है कि रामराय से कृष्ण-देवराय की पुत्री तिरुमलम्बिका ब्याही गई थी[२]। रामराय के पाच पुत्र—वेकट, श्रीरग आदि—तथा दो कन्याए पैदा हुई थीं। रामराय के दो भ्राता थे। तिरुमल नायक भ्राता से कृष्णदेवराय की चिन्नदेवी से उत्पन्न पुत्री ब्याही थी। उसके भी चार पुत्र थे। दूसरे भ्राता का नाम वेकट था। उसने अपने जीवन मे दो ब्याह किए। उसके दो पुत्र थे[३]। मगल दान पत्र मे वेकट की समता लक्ष्मण से बतलाई गई है[४]। और रामराय की उपमा रामचन्द्र से दी गई है।

साहित्यिक प्रमाणों तथा लेखों के आधार पर हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि प्रारम्भ मे सदाशिव के लिए, सरक्षक के रूप मे, रामराय विजयनगर साम्राज्य का सारा कार्य सम्पादन करता था[५]। यही कारण है कि एक लेख मे सदाशिव और रामराय की पुण्य-वृद्धि के लिए किये गये दान का वर्णन मिलता है[६] तो दूसरे लेख मे इन दोनों के वश-वृत्त का उल्लेख पाया जाता है[६]। कुछ लोगों का मत है कि रामराय ने तेरह वर्ष

१ एपि० इ० भा ४ पृ० ३। २ कृष्णस्वामी—सोरसेज पृ० १७८

३ सोरसेज आफ विजयनगर पृ० २२२।

४ रंगाचार्य—भा० १ पृ० ५।

५ चिक्कराय-वशावली, वटरवर्थ—नेलोर की प्रशस्ति।

६ एपि० कर० भा० ४।

तक सदाशिव को कारावास मे रक्खा। तत्पश्चात् स्वयं राजा बन गया। परन्तु यह कथन प्रमाण-रहित है। यदि रामराय का स्वयं राजा बनाने का विचार होता तो वह प्रारम्भ मे ही सदाशिव को हटा कर शासक बन जाता।

कुछ काल के पश्चात् रामराय ने राजकीय पदविया धारण कीं[1]। वेंकट के मगल-दानपत्र में यह उल्लेख मिलता है कि वेंकट रामराय का अधिनायक था। राजा सदाशिव का उसमें उल्लेख नहीं पाया जाता[2]। इसका तात्पर्य यह है कि रामराय राज्य के लाभ के लिए सदाशिव को हटाकर स्वय राजा बन बैठा। रामराय कृष्णदेवराय का जामाता था और आरम्भ से ही वास्तव में वही राजा था, इसलिए किसी ने उसका विरोध नहीं किया। देवराय के एक ताम्रपत्र से पता चलता है कि सन् १५६२ ई० मे रामराय विजयनगर का सम्राट था[3]। इसके बाद के अन्य लेखों मे रामराय के लिए "राजाधिराजः, राजपरमेश्वरवीरप्रतापमहाराजः, रामदेवरायः" की पदवी मिलती है[4]। अतः १५६२ से सदाशिव नाममात्र का भी शासक न रहा। वास्तव मे यही समय तुलुव-वश का अतिम काल और आरविदु-वंश का प्रारम्भिक समय था।

फिरिस्ता का कहना है कि रामराय ने सम्राट् होते हुए ही अपने समस्त शत्रुओ को परास्त किया[5]। इसके लेखों से ज्ञात है कि रामराय ने सब शत्रुओं को मार डाला[6]। 'शिव-तत्त्वरत्नाकर' नामक पुस्तक से इसकी पुष्टि होती है कि राजा ने पर्वतीय नरेशो को परास्त किया[7] और उनसे कर ग्रहण किया। उसका राज्य

विदेशी-नीति

---

१ एपि. इं० भा० १४।   २ वही।
३ रगाचार्य—भाग २ पृ० १६८।   ४ एपि० कर० भाग १२
५ वही भाग ४, ७।   ६ ब्रिग-भाग ३ पृ० ३८१
७ एपि० कर० भा० १४, एपि० इडिएका भाग ३

समस्त दक्षिणी भाग मे विस्तृत हो गया। लका के राजा ने भी रामराय की आधीनता स्वीकार की। पुर्तगालियों के साथ विजयनगर का पर्याप्त व्यापारिक सम्बन्ध था। बीजापुर के युसुफअली शाह ने गोवा पर अधिकार कर लिया था। परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् रामराय ने पुर्तगालियों को गोवा को वापिस लेने में बहुत सहायता दी। गोवा के गवर्नर अलबुकर्क ने एक दूत भेजा[1]। विजयनगर से भी एक दूत भेजा गया। पुर्तगाली रामराय के मित्र बन गये।

इसके पश्चात् रामराय के समय में पुर्तगाली लोगो ने जल सेना द्वारा तिरुपति के वैष्णव मंदिर पर आक्रमण किया। वहा सोना तथा असख्य धन था। विजयनगर की जलसेना का प्रधान तिमोजा था। इसी के कारण पुर्तगाली जलसेना की लडाई में सफल न हो सके। अन्त मे दोनो मे सन्धि हो गई। विजयनगर के दूत का गोवा में शाही स्वागत किया गया और निम्न लिखित शर्तों पर सन्धि-पत्र लिखा गयाः—

(१) विजयनगर तथा पुर्तगाली लोग आपस मे मित्र हैं तथा एक दूसरे की सहायता करते रहेंगे।

(२) विजयनगर का शासक गोवा में सारे अरबी घोडों को खरीदेगा।

(३) दोनो राज्यों मे निर्विघ्न व्यापार होता रहेगा।

(४) एक शासक दूसरे का माल खरीदेगा।

(५) पुर्तगाली लोग लोहा तथा अन्य धातुओं को विजयनगर के बन्दरगाह पर ले आवेंगे और पुर्तगाली उसे अवश्य खरीदेंगे।

(६) विजयनगर के कपडे पुर्तगाली खरीदेंगे तथा इसके बदले में वे लोग ताँबा, मूगा, पारा तथा चीन देश का रेशम देंगे।

(७) विजयनगर का राजा किसी भी मुसलमानी जहाज को बन्दरगाह पर ठहरने न देगा। यदि उनके जहाज आवे तो पकड़ कर पुर्तगालियों को दे देगा।

---

१ दानवेर—पोर्चुगीज भा० १ पृ० १६३

(८) आदिलशाह दोनों का शत्रु समझा जायेगा।

यह सन्धि-पत्र सन् १५४७ ई० मे लिखा गया। पुर्तगाली गवर्नर ने घोडे, कपडे तथा अन्य कीमती सामान भेट रूप मे विजयनगर को भेजा। परन्तु इस सन्धि-पत्र का बहुत दिनो तक पालन नहीं किया गया। फलस्वरूप रामराय ने पुर्तगालियों के नये शहर पर आक्रमण कर दिया। सेना उसका सामना न कर सकी। पुर्तगाली लोग भाग गये और सदाशिव की सेना ने शहर पर अधिकार कर लिया।

मुसलमानो से युद्ध

सदाशिव के शासन काल के प्रारम्भ में ही रामराय ने राज्य की शक्ति को अपने हाथ मे रखना चाहा। अतः कभी एक मुसलमानी राज्य की सहायता करता था तो कभी दूसरे की सहायता कर तीसरे को परास्त करता था। वह शक्ति का संलतुन (balance of power) सदा बनाये रखना चाहता था। सर्व प्रथम वेकट ने बीजापुर के सुल्तान पर चढाई की। उसने रायचूर के दुर्ग को ले लिया और भीमा के किनारे शत्रु को परास्त किया[१]। दूसरे दिन ही मुसलमानी सेना ने हिन्दू कैम्प पर धावा कर दिया। वेकट युद्ध-क्षेत्र से भाग गया। विजयनगर का सारा धन मुसलमानो के हाथ लगा। आक्रमणकारी सुल्तान के सेनापति आसद खॉ को घूस देकर लौटा दिया गया। इस बीच मे मुसलमान राजा आपस मे लड़ते रहे। रामराय भी समय समय पर पाचो बहमनी रियासतों की सहायता करता रहा। सन् १५५२ ई० मे सदाशिव ने इब्राहिम नामक व्यक्ति को शरण दी। रामराय ने राजा को सलाह से (सदाशिव के शासन-काल मे) गोलकुण्डा के नवाब कुतुबशाह तथा बीजापुर के आदिलशाह को अहमदनगर पर चढ़ाई करने के लिए सहायता की। तीन ओर से आक्रमण किया गया। सुल्तान निजामशाह पकड़ लिया गया और उसकी राजधानी को हिन्दू सेना ने नष्ट कर दिया। फिरिश्ता का कहना है कि विजयनगर की सेना ने मसजिदे गिरा

---

१ सोर्सेज़ पृ० २२४।

दी और उसमे मूर्तिया स्थापित की। सारे महल को जला दिया गया। बाल, स्त्री, वृद्धो को मारा गया। इस प्रकार अहमदनगर बिल्कुल नष्ट कर दिया गया[1]। इस अत्याचार से मुसलमान प्रजा त्रस्त हो गई। समस्त मुसलमान रियासतो में धर्म पर अत्याचार व कुठाराघात होने से क्षोभ पैदा हो गया। सब ने हिन्दू सेना के व्यवहार को बुरा माना। इसके पश्चात् गोलकुण्डा के सुल्तान तथा रामराय में मित्रता न रही। बीजापुर पर भी रामराय के सेनापतियो ने चढाई की और वहा बहुत हानि पहुँचाई। और रायचूर का किला जीत लिया।

तालिकोट का युद्ध

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि अहमदनगर मे मुसलमान धर्म पर कुठाराघात होने से समस्त बहमनी रियासते एक हो गई। बीजापुर के सेनापति मुस्तफा खा ने मुसलमानी राज्यों का एक सघ तैयार करने का विचार किया। अतः उसने बीजापुर तथा अहमदनगर मे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कराया। सदाशिव ने गोलकुण्डा से लगभग सारा राज्य मागा था। परन्तु मुसलमानों के सगठित हो जाने से यह माग पूरी न हो सकी। बीजापुर ने रायचूर तथा मुद्गल दुर्गों को वापस लेलिया। यह सूचना पाकर रामराय ने समस्त नायकों की सेना एकत्रित की। रामराय के भ्राताओं, तिरुमल तथा वेंकट ने एक विशाल सेना लेकर कृष्णा नदी के किनारे डेरा डाला। विजयनगर की सेना मे ३ लाख पैदल, ३४००० घोडे, १५०० हाथियॉ तथा हल्की तोपे थी। इसके अतिरिक्त दस मील की दूरी पर प्राय: इससे तीन गुनी फौज सुरक्षित रक्खी गई थी। हिन्दू सेना में तिरुमल, वेंकट, सदाशिव तथा रामराय प्रधान थे। मुसलमानो की भी फौज लाखों की सख्या मे थी। उनके पास युद्धक्षेत्र मे प्रलय मचाने वाली भयकर तोपे भी थीं। हुसेनशाह, अली-आदिल, इब्राहीम तथा वहिदखा मुसलमानी सेना के सचालक थे। कृष्णा के किनारे दोनों सेनाए डेरा डाले पडी थी। मुसलमानी सेना ने रात को

---

१ ब्रिग—भा० ३ पृ० १२०–१२६।

कृष्णा को पार कर लिया और सदाशिव के कैंम्प की ओर चली। दोनो सेनाओ मे मुठभेड हो गई। सत्तासी वर्ष की आयु मे भी रामराय ने अपनी सेना को प्रोत्साहित करने के लिए एक व्याख्यान दिया। वेकट ने बायी ओर से बीजापुर की सेना पर धावा किया। रामराय केन्द्र मे था। तिरुमल शत्रुओं पर विजयी हुआ। रामराय ने निजाम की सेना को पीछे हटाया और सदाशिव ने जीत की घोषणा कर दी। विजय के उपलक्ष में सेनापतियों को इनाम देने का वादा किया यया परन्तु विजयनगर-शासक इस जीत को अधिक समय तक स्थिर रख न सके और युद्ध का रुख बदल गया। निजाम के सेनापति रुम्मी खा के पास ताबे के बहुत पैसे थे। युद्ध के ममय उन्ही को भर कर उसने तोपे छोड़ी। इस कारण विजयनगर की सेना मे व्यग्रता छा गयी। सेना में घबराहट पैदा हो गयी। विजयनगर के दो मुसलमान सेनापतियों ने राजा को धोखा दिगा। प्रत्येक सेनापति सत्तर २ हजार सेना के साथ अपने धर्मावलम्वी बहमनी सुल्तान की सेना से मिल गये। इसलिए विजयनगर की सेना मे भगदड मच गई। रामराय इस बुरी स्थिति को सभालना चाहता था, लेकिन वह घायल हो गया और पकड़ लिया गया। निजामशाह ने रामराय को मार डाला। यह युद्ध सन् १५६५ ई० मे हुआ था। इस युद्ध के स्थान के निश्चय करने में विद्वानो मे मतभेद था। परन्तु अब यह स्थिर हो गया कि वह स्थान तालिकोट ही है[1]। १५६८ ई० के एक लेख मे यह उल्लेख मिलता है कि तालिकोट के युद्ध मे रामराय मार डाला गाया[2]। सदाशिव भी भागता हुआ पकडा गया। एक महावत ने राजा को हुसेनशाह के सन्मुख उपस्थित किया। सुल्तान ने राजा को शीघ्र मार डाला। मृत राजा के सिर को भाले पर रखकर सब को दिखलाया गया। वेकट १५० मील की दूरी पर पेनुगोंडा भग गया और तिरुमल

---

१ भा० इति० संशोधक मण्डल पत्रिका भाग ४ पृ० ७२

२ एपि० कर० भाग ११

अनेगोड़ी मे बीजापुर के आधीनस्थ होकर कार्य करने लगा । विजयी शत्रुओं ने द्वाब पर अधिकार कर लिया । इस युद्ध से विजयनगर की शक्ति नष्ट हो गई।

हार के कारण

विजयनगर की सेना के परास्त होने के कई कारण थे । प्रथम तो मुसलमानी घुडसवार योग्य सैनिक थे। (२) पैदल सिपाही सेना के काम मे दक्ष थे। (३) तोपखाना उनके पास विजयनगर से बढ कर था और (४) मुसलमान सेनापतियों ने विजयनगर राजा को धोखा दिया तथा विश्वाघासत किया।

अत्याचार और लूट

सेवेल का कथन है कि मुसलमानी सेना ने विजयनगर राज्य मे प्रवेश करके राजधानी को नष्ट कर दिया। ५५० हाथियो पर लाद कर विजयनगर से अतुल धन मुसलमान लूट कर ले गये [1]। उन्होंने नागरिकों को कत्ल किया और मदिरों तथा राजमहलों को नष्ट कर दिया। ससार के इतिहास में ऐसी अत्याचार पूर्ण घटना सुनी नहीं गई है। जीत के फलस्वरूप मुसलमानो को लड़ाई का सामान, जवाहिरात तथा असख्य धन मिला। फिरिस्ता ने लिखा है कि प्रत्येक सिपाही लूट के धन से धनवान् हो गया । राजधानी के सुन्दर भवन, विशाल अट्टालिकाएँ तथा भव्य मन्दिर नष्ट कर दिये गए। मुसलमानों की सेना छः मास तक नगर मे पड़ी रही और सिपाही लूट-मार करते रहे। नगर में विट्ठल स्वामी, कृष्णदेव, अच्युत आदि के मन्दिर ध्वस किये गए । मुसलमानों के लौट जाने के पश्चात् तिरुमल अपनी राजधानी को लौटा [2] और स्वतन्त्र रूप से शासन आरम्भ किया।

रामराय एक न्यायपरायण, साहसी तथा शक्तिशाली राजा था।

---

१ ए फारगाटेन इम्पायर पृ० २०८

२ हेरास—आरविडु डा० पृ० २२८।

उसने आदर्श रीति से शासन किया। वह दयावान् होते हुए भी शत्रुओ के लिए कठोर था। उसके गुण उसके लेखों में उल्लिखित हैं[1]। साहित्य की पुस्तकों मे वर्णन मिलता है कि रामराय ने 'रत्नकुटी' नामक एक मदिर तैयार कराया था। वह सदा ध्यान मे लगा रहता था; वह दान देता तथा साहित्य चर्चा में जीवन व्यतीत किया करता था[2]। वह सगीत से भी प्रेम रखता था तथा स्वयं वीणा बजाया करता था। उसने अपने समय मे साहित्यिक तथा कला की उन्नति की। इस प्रकार शस्त्र तथा शास्त्र की चिन्ता मे जीवन बिताते हुए नव्वे वर्ष की आयु मे रामराय ने ससार से प्रयाण किया।

चरित्र

तालिकोट के युद्ध का प्रभाव दक्षिण भारत पर अत्यधिक पड़ा। जैसा अत्याचार मुसलमानी सेना ने विजयनगर साम्राज्य तथा राजधानी में की वैसा भयकर विनाश, लूट और अत्याचार की बाते ससार के किसी युद्ध मे सुनने को नही मिलती। इस भयकर पराजय के पश्चात् कोई भी हिन्दू शासक पुनः विशाल साम्राज्य के निर्माण का स्पना तक न देख पाया। यद्यपि कुछ समय के पश्चात् महाराष्ट्र मे शिवाजी ने हिन्दू राज्य स्थापित किया परन्तु विजयनगर की महत्ता के सामने इसकी कोई गणना न थी। हिन्दू साम्राज्य के पतन से हिन्दू सस्कृति नष्ट होने लगी। राजाओ के निर्मित कलापूर्ण विशाल मन्दिर व महल अब देखने को न रहे। कला की दृष्टि से दक्षिण भारतीय मन्दिरो को महत्त्व पूर्ण स्थान दिया गया था परन्तु अब वे बाते न रहीं। विजयनगर ने पुर्तगाली लोगो से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किया था। पुर्तगाली लोगों के निश्चित बाजार थे, परन्तु सब व्यापार नष्ट कर दिया गया और विदेशियों का व्यापार समाप्त हो गया। विदेशियों को भी इस अशातिमय वातावरण से लाभ हुआ और वे विभिन्न स्थानों पर अपना राज्य स्थिर करने लगे। विजयनगर साम्राज्य के नष्ट होने से भारतीय सस्कृति की बडी क्षति हुई।

युद्ध का प्रभाव

---

1 एपि० कर० भा० ५। 2 सोर्सेज़ पृ० १६०।

ऊपर कहा गया है कि तालिकोट के युद्ध के बाद विजयनगार के शासकों की स्थिति डावाडोल हो गई। उनका जीवन स्थिर न रहा। राजधानी की महत्ता, वैभव तथा प्रधानता नष्ट हो गई।

तिरुमल

यवन सेना महीनों के लूटमार के बाद विजयनगर को छोड कर वापस चली गई। जितना हो सका राज्य को उन्होंने लूटा और नष्ट किया। इस महान् युद्ध के एक वर्ष के बाद अर्थात् सन् १५६६ ई० मे तिरुमल ने मौका देख कर विजयनगर लौटने का विचार किया। उसी समय बीजापुर तथा अहमद-नगर के राज्यों में झगडा शुरू हो गया। अतएव सुअवसर पाकर तिरुमल ने अपनी स्थिति सभाली और राज्य को पुनः शक्तिशाली बना लिया। अहमदनगर के सुल्तान ने बीजापुर के विरुद्ध विजयनगर के राजा तिरुमल से सहायता मागी और कुतुबशाह तथा निजाम शाह ने बीजापुर के विरुद्ध तिरुमल से सहायता को प्रार्थना की। फिरस्ता ने लिखा है कि तिरुमल ने राज्य को स्थिर करने के बाद सुल्तानों को यथाशक्ति सहायता दी[1]। कहने का तात्पर्य यह है कि तिरुमल ने आरविदु-वश के राज्य को पुन: स्थिर तथा दृढ बनाया। उसका कोई भी सहायक न था। उसने स्वयं कार्यभार को सभाला और शासन प्रारम्भ किया। हेरास का कथन है कि तिरुमल ने युद्ध मे सदाशिव को मार डाला और स्वतत्र रूप से शासन करने लगा। उसका भाई वेकट, जो पहले चन्द्रगिरि-प्रात का नायक था, उसका मत्री हो गया सदाशिव के समय मे भी वेकट प्रात का गवर्नर था[2]। सन् १५६७ ई० से तिरुमल विजयनगर राज्य का शासन करने लगा। एक लेखक ने लिखा है कि मुसलमानों के आक्रमण के भय से उसने पेनुगोंडा को अपनी राज-धानी बनाई[3]। पुर्तगाली लेखक फ्रेडरिक ने भी यही लिखा है कि तिरुमल ने

---

१ ब्रिग—भा० ३ पृ० ४१८।

२ आ० स० रि० १९११–१२

सोर्सेज़ आफ विजयनगर पृ० ३०२।

'अपनी नई राजधानी बनाई जो पुराने नगर से आठ दिन के रास्ते पर थी। प्रायः १५० मील की दूरी पर यह नगर स्थित था। बीजापुर के सुल्तान अली आदिलशाह का डर सदा बना रहता था परन्तु राजधानी बदलने से यह भय जाता रहा। विजयनगर के समस्त किले नष्ट कर दिये गये थे। राजधानी के हट जाने से यह एक छोटा ग्राम हो गया। एक लेख में उल्लेख मिलता है कि राजधानी के परिवर्तन से विजयनगर में भग्नावेश रह गए थे[1]।

इस उथल-पुथल के समय मे विजयनगर का राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। बीजापुर ने उत्तरी भाग पर सन् १५६८ में अधिकार कर लिया[2]। गोलकुण्डा ने पूर्वी भाग (उडीसा की ओर) का थोड़ा हिस्सा जीता लिया। शेष राज्य तिरुमल के अधिकार में ही रहा। लेखों मे इस बात का प्रमाण मिलता है कि तिरुमल का राज्य भाईयों मे विभक्त न हुआ। वे उसके सहायक के रूप मे शासन करते रहे तथा तिरुमल को आदर की दृष्टि से देखते रहे।[3] राजा के पास पैदल, घोडे तथा हाथियों की एक सेना भी थी। कुछ प्रात के गवर्नरों ने स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। उसी समय तिरुमल राज्य में यात्रा के लिए निकला। कुछ विद्वाना के कथनानुसार उस समय तक सदाशिव भी जीवित था और यात्रा मे राजा के सग रहा[4]। उस विजय-यात्रा में कुछ प्रात के गवर्नर भी सम्मिलित थे।

सन् १५६६ मे पेनुगोंडा मे राजा का राज्याभिषेक किया गया। यह स्थान राज्य के केन्द्र मे था। रामराय वहाँ का नायक रह चुका था। उसके राजकवि भट्टमूर्ति ने उसके अभिषेक का वर्णन करते हुए लिखा है कि तिरुमल अपनी पत्नी के साथ सिंहासन पर बैठा था। सन् १५७१

---

१ ब्रिग-फिरिस्ता भा० ३ पृ० १३४

२ ए० इं० भा० १६ पृ० २५७.

३ एपि० इं० भा० ६ पृ० २४१। ४ एपि० कर० भा० १२

के एक लेख मे तिरुमल की पदवी 'महाराजाधिराज' उल्लिखित है[१]। दूसरे लेख मे वर्णन मिलता है कि तिरुमल पेनुगोंडा पर शासन करता था जो पूर्व काल से ही विजयनगर के अधिकार में था[२]। ये सब उल्लेख सिद्ध करते हैं कि आरविदु-वश मे सर्व प्रथम तिरुमल का ही राज्याभिषेक हुआ और इस प्रकार वास्तव मे वही आरविदु-वश का प्रथम शासक कहा जा सकता है। सिंहासन पर बैठने के बाद तिरुमल ने उडीसा तथा वारगल का बहुत सा भाग जीत लिया[३]। फ्रेडरिक का कहना है कि उसने अपने राज्य मे सभी विद्रोहियो को दबाया, शत्रुओं को परास्त किया तथा राज्य मे शाति स्थापित की।

तिरुमल के चार पुत्र—रघुनाथ, श्रीरग, राम तथा वेंकट थे। रघुनाथ बाल्यावस्था मे ही मर गया। अतएव तिरुमल ने समस्त राज्य को तीन भागों मे विभक्त किया और प्रत्येक पुत्र को उसका अधिपति बनाया[४]। लेखों मे उल्लिखित बातो की पुष्टि 'वसु-चरित' नामक ग्रन्थ से होती है। उसके लेखक का कहना है कि राजा ने श्रीरग को अपना युवराज घोषित किया। श्रीरग ने पिता की बहुत सहायता की और कई एक नये दुर्गों को जीता[५]। श्रीरग ने राज्य के योग्य मत्री नायह्ल के साथ बीजापुर, अहमदनगर तथा बरार की सेना को परास्त किया।

इस प्रकार शासन करते हुए तिरुमल सन् १५७२ ई० मे ससार से चल बसा। उसका जीवन सदा कष्टमय रहा। उसे सुल्तानों की चढाई का सदा भय बना रहा। अपने को शक्तिहीन समझकर ही तिरुमल ने पहले ही से अपनी राजधानी बदल दी थी। यह राजा बडा दानवीर था। और ब्राह्मणों तथा विद्वानो को इसने बहुत दान दिया[६]। तालिकोट के युद्ध के बाद तिरुमल पूर्ण रूप से साम्राज्य को सम्हाल न सका। उत्तरी

---

१ ए० कर० भा० ८। २ वही—भा० १२

३ एपि० कर० भाग १०। ४ सेवेल—वही भा० २ पृ० १८८

५ एपि० इंडि० भा० १६ पृ० ३१। ६ ए० कर० भा० ५ पृ० २७

भाग उसके हाथो से निकल गया। उसके आधीन केवल तीन ही प्रांतों के नायक थे। कहने का तात्पर्य यह है कि तिरुमल राज्य के प्राचीन वैभव को लाने मे असमर्थ रहा।

श्रीरंग प्रथम

श्रीरग अपने पिता तिरुमल के जीवन काल मे युवराज घोषित किया जा चुका था। पिता की मृत्यु के पश्चात् सन् १५७२ ई० मे श्रीरग सिहासन पर बैठा। कई लेखो मे इसके लिए 'श्रीमद् राजाधिराज राज-परमेश्वर श्रीवीरप्रतापश्रीरगरायदेवमहाराज,' की महान् पदवी का उल्लेख पाया जाता है। श्रीरग के शासन-प्रबन्ध हाथ मे लेते ही राज्य मे विद्रोह फैल गया। विद्रोही समझते थे कि श्रीरग मे शक्ति नही है। पश्चिमी तथा दक्षिणी भाग मे विद्रोहियों की सख्या बढ गई। श्रीरग ने उनको परास्त किया और उनके अतुल धन पर अधिकार कर लिया। शत्रुओं के धन का उपभोग स्वय न कर, राजा ने प्राप्त सम्पत्ति को गरीबो मे विभक्त कर देना ही समुचित समझा और वैसा ही किया।

मुसलमानी रियासतों ने श्रीरग को बहुत कष्ट पहुँचाया। बीजापुर के अली आदिलशाह ने कनारा के शासक शंकरनायक पर आक्रमण किया। भय के कारण उस प्रातके सभी नायकों ने सुल्तान की अधीनता स्वीकार कर ली और वार्षिक कर देने लगे। परन्तु इससे आदिलशाह को सन्तोष न हुआ। उसने मुस्तफा खा नामक सेनापति के साथ विजयनगर की राजधानी पेनुगोंडा पर धावा कर दिया[1]। श्रीरग स्वयं मुकाबिला न कर सका। अतएव उसने गोलकुण्डा के सुल्तान कुतुबशाह से सहायता के लिए प्रार्थना की। कुतुबशाह ने विजयनगर की सहायता के लिए अपनी सेना भेजी। आदिलशाह हार कर बीजापुर लौट गया। सन् १५७६ ई० मे बीजापुर के सुल्तान ने दुबारा पेनुगोंडा पर आक्रमण किया। इस बार युद्ध मे श्रीरग पराजित किया गया और मुसलमानी सेना ने उसे कैद कर

---

१ ब्रिग—फिरिस्ता भाग ३ पृ० १४१।

लिया। बीजापुर की रियासत में पेनुगोडा का उत्तरी भाग मिला लिया गया। यह भाग उस समय से मुसलमानो के हाथ मे ही रहा। विजयनगर शासक उसको वापस न ले सके। विजयनगर से असंख्य धन लेने के बाद सुल्तान ने श्रीरग को मुक्त कर दिया। गोलकुण्डा ने भी उसका साथ छोड दिया। अतः श्रीरग अत्यन्त शक्ति-हीन तथा सहायक-रहित हो गया। नायक लोगों ने भी विद्रोह खडा कर दिया। कुछ समय के बाद श्रीरग ने अपनी स्थिति सॅभाली। उसने विद्रोही नायकों तथा गोलकुण्डा की सम्मिलित सेना को परास्त किया। तेलुगु काव्य-ग्रन्थ 'लक्ष्मी-विलास' नरपति-विजयम्' मे उपर्युक्त युद्ध का वर्णन मिलता है। हेरास का मत है कि गोलकुण्डा की सेना ने कृष्णा नदी को पार कर उदयगिरि पर चढाई की। उस प्रान्त के सारे भाग पर सुल्तान का अधिकार हो गया। हिन्दू सेना ने वीरता के साथ मुसलमानो का सामना किया परन्तु असफल रहे। तेलुगु प्रान्त सदा के लिए विजयनगर राज्य से निकल गया। सन् १४५० मे आदिलशाह के मरने पर, अहमदनगर में चादबीबी की सरक्षता मे इब्राहिम राज्य करने लगा। चॉदबीबी ने अपने सेनापति को विजयनगर के शकर नायक पर चढाई करने के लिए भेजा। मुसलमानी सेना ने विजय प्राप्त की। शकर उसके अधीन हो गया। इस प्रकार श्रीरग के जीवन काल मे ही मुसलमानों ने चारों तरफ से आक्रमण कर, विजयनगर राज्य के विभिन्न भागो को जीत लिया और सदा के लिए अपने राज्य मे मिला लिया।

श्रीरग अपनी शक्ति भर प्रयत्न करता रहा परन्तु मुसलमानों का सामना न कर सका। उनके बढाव को रोकने की शक्ति विजयनगर शासक मे न रही। उस समय तक कर्नूल जिले के समीपवर्त्ती देश में ही श्रीरग का राज्य सीमित रहा। यह राजा परम वैष्णव था। इसने विष्णु मन्दिरो के लिए बहुत दान किये। इसकी मृत्यु १५८५ ई० मे हुई। श्रीरग को कोई पुत्र न था, अतः राज्य का भार इसके भ्राता वेकट को सौपा गया।

श्रीवेंकटपतिदेव

श्रीरंग की मृत्यु पश्चात् राज्य का प्रबंध श्रीवेंकटपतिदेवराय के हाथ में आया। श्रीरंग के कोई पुत्र न होने के कारण समस्त मंत्रियों ने उसके भ्राता वेंकट को ही विजयनगर राज्य का शासक बनाया। लेखों में इसके लिए 'श्रीमन् महाराजाधिराज परमेश्वर श्री वीर प्रताप वेंकटपतिदेव महाराज' की उपाधि मिलती है[१]। परिवार में कोई भी व्यक्ति उसके समान योग्य न था। लेखों में उसे सम्राट्, मुसलमानों को भय देनेवाला तथा न्यायप्रिय राजा कहा गया है। फिरिश्ता ने लिखा है कि श्री वेंकट एक प्रतापी राजा था और चन्द्रगिरि नामक स्थान से विजयनगर राज्य का शासन करता था[२]। परन्तु सन् १५८७ के लेख से ज्ञात होता है कि वेंकट की राजधानी प्राचीन पेनुगोंडा ही थी[३]। दूसरे लेख से भी उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है[४]। परन्तु सेवेल का मत है कि वेंकट पेनुगोंडा को छोड़ कर चन्द्रगिरि चला आया था और उसी नगर को उसने अपनी राजधानी बनाई थी[५]।

विजयनगर के नायकों की यह धारणा थी कि "श्री वेंकट ने ही सदाशिव को मार डाला है। अतएव क्षोभ के कारण उन्होंने वेंकट का विरोध किया और वार्षिक कर देना बंद कर दिया। सर्व प्रथम मदुरा तथा जिञ्जी के नायकों ने ऐसा विरोध किया। शासक होते ही वेंकट ने नायक शासकों को दबाया और राज्य में शान्ति स्थापित की[६]। इस बात की पुष्टि अन्य लेखों तथा साहित्यिक

---

१ बटरवर्थ--नेलोर लेख भाग १ पृ० १६४

२ ब्रिग—भाग ३ पृ० ४४६

३ एपि० कर० भाग ७

४ वही--भाग १२

५ सेवेल—ए फारगाटेन इम्पायर पृ० १५०

६ मंगल दानपत्रः बटरवर्थ-भा० १ पृ० ४६

प्रमाणों से होती है। एक लेख मे वर्णन मिलता है कि श्री वेकट ने अपने मत्री अनन्त के साथ नायकों को परास्त किया और मार डाला। उसने उडीसा पर आक्रमण करके कटक के दुर्ग को ध्वस कर दिया[1]। 'चारु-चन्द्रोदयम्' मे भी अनन्त मत्री के साथ राजा के युद्ध मे विजय का वर्णन मिलता है[2]। इस प्रकार प्रायः समस्त विरोधी लोगों का नाश हो गया। सारे नायकों ने श्री वेकट पतिदेव की अधीनता स्वीकार कर ली और कर देने लगे। तजोर के नायक रघुनाथ ने वेंकट की बहुत सहायता की। राजा ने भी उसकी सहायता को स्वीकार करते हुए जनता मे उसकी बडी प्रशसा की[3]। कई वर्षों तक यह विद्रोह अथवा गृह-युद्ध चलता रहा, परन्तु अत में सब शात हो गए। होनवर की रानी ने ज्यों ही विरोध किया त्यो हीं श्री वेकट ने जलसेना भेजकर उसके किलों को नष्ट कर दिया।

नायकों को दबाकर श्रीवेकट को अब मुसलमानों से युद्ध करना पडा। सर्वप्रथम श्रीवेंकट ने पेनुगांडा से हटाकर उदयगिरि को राजधानी बनाया। यह स्थान अत्यन्त सुन्दर था। सालुव नरसिंह ने यहा एक विशाल दुर्ग तैयार कराया था। कृष्णदेवराय तथा अच्युतराय को भी यह स्थान प्रिय था और वे यहा आकर रहा करते थे। अतएव श्री वेंकट ने हितकर समझकर राजधानी को बदल दिया। इसने अपनी रानी के साथ बड़े समारोह के साथ नये नगर में प्रवेश किया। उस जलूस मे हाथियों, घोडों तथा मनुष्यों का अपूर्व जमघट था। राजा वहा स्वर्ण-भवन मे रहने लगा। सब सामन्त तथा नायक वहा आते थे और सब सम्राट् को भेट देते थे।

श्री वेकट ने बहमनी रियासत—गोलकुण्डा—पर चढाई करदी। इसका

---

१ मद्रास इपि० रिपो० १८१५-१६

२ कृष्णास्वामी—सोरसेज पृ० २४१

३ वहीं—— पृ० २८५

कारण यह था कि कुतुबशाह ने राजा के पेनुगोंडा छोड़ने के बाद नगर पर आक्रमण कर दिया था। चन्द्रगिरि मे स्थिर होने के बाद ही विजयनगर-शासक ने चढ़ाई की[1]। इस युद्ध मे वेंकट के मत्री गोबिन्दराज तथा सेनापति जगदेवराय ने भाग लिया था। राजकुमार रघुनाथ ने भी राजा की यथाशक्ति सहायता की। वर्षा ऋतु के कारण गोलकुण्डा का शासक हार गया[2]। बरसात के कारण कृष्णा मे बाढ आ गई अतः मुसलमानों को रण-कौशल दिखाने का कोई मौका न मिल सका। श्री वेंकट के कई लेखों में इस विजय का उल्लेख पाया जाता है[3]। इस विजय के कारण उदयगिरि मे श्री वेंकट का शासन दृढ रूप से हो गया। बीजापुर के सुल्तान ने पुनः कर्नाट (उत्तरी भाग) प्रात पर आक्रमण किया। वेंकट ने पुर्तगाली सेनापति की अधीनता में एक जनसेना बीजापुर के सुल्तान पर चढाई के लिए भेजी। मुसलमान परास्त होकर भाग गए और उनका सारा सामान पकड लिया गया। उस प्रात (पश्चिमी कनारा) के सभी नायको ने वेंकट की अधीनता स्वीकार करली। उधर स्थलपर चढाई करने वाली सेना के अधिकारी (सेनापति) को वेंकट ने घूस देकर वापस लौटा दिया। इस प्रकार १७ वी शताब्दी के प्रारम्भ से ही श्री वेंकट मुसलमानी आक्रमण से मुक्त हो गया। इसका एक मुख्य कारण यह भी था कि मुगल सम्राट अकबर के और अहमद नगर की चाद बीबी के बीच युद्ध होरहा था, अतएव बहमनी की सब रियासतें अकबर के डर से त्रस्त थी। अकबर ने विजय-नगर शासक के पास एक राजदूत भेजकर शुभकामना प्रकट की। श्री वेंकट ने उस राजदूत का स्वागत किया। सम्राट को बहुत सा धन भेट रूप मे दिया और उसका मार्ग-व्यय देकर वापस लौटा दिया। ऐसी परिस्थिति

---

१ एपि० कर० भाग १२। फिरिस्ता भाग ३ पृ० ४५४

२ सोर्सेज़ पृ० २८५

३ एपि० इं० भा० १६ पृ० २९७। एपि० कर० भा० ७.

मे बहमनी के सुल्तानो का, विजयनगर के राजा से युद्ध करने का, साहस जाता रहा।

श्री वेंकटपति देवराय का राज्य सुदूर दक्षिण से लेकर उडीसा अर्थात् कारोमण्डल के किनारे तक फैला हुआ था। सुशासन के लिए राज्य को कई भागों मे विभक्त किया गया था। दक्षिण मे चोल और पाड्य को मिलाकर एक प्रात बनाया गया था। तामिल देश का अधिपति कृष्णप्पा नायक था। वह एक योग्य, गुणवान् तथा शिवभक्त व्यक्ति था। वेंकट की आज्ञानुसार त्रिचनापल्ली तथा काची के विद्रोह को दबाया था। उसने विष्णु तथा शिव के विशाल मन्दिर बनवाए [1]। उसके पुत्र वीरप्पा ने भी अत्यन्त सुन्दर एक विशाल मन्दिर तैयार कराया जिसकी समता नहीं की जा सकती। उसके बनवाए हुए महल भी कला के एक उत्कृष्ट उदाहरण हैं। वेंकट का भाई राम उत्तरी-पश्चिमी भाग का नायक नियुक्त किया गया था। उसकी मृत्यु से बाद वेंकटैय्या नामक व्यक्ति कनारी प्रात का शासक बनाया गया।

श्रीवेंकटपतिदेव के पास अनेक योग्य मन्त्री थे जिनका वर्णन 'चन्द्रभान-चरित' तथा 'चारु-चन्द्रोदयम्' मे मिलता है [2]। उपराज एक योग्य प्रधान सेनापति था [3]। वह परम वैष्णव था। वैष्णव साधु ताताचार्य का प्रभाव उस पर बहुत पडा। उसने वैष्णव भक्तों के लिए अनेक ग्राम दान मे दिए। नई राजधानी उदयगिरि मे वेंकटेश्वर का सुन्दर मन्दिर बनवाया। प्रत्येक वर्ष वह दुर्गा पूजा के समय उत्सव मनाया करता था। और भगवान् की रथयात्रा निकाला करता था। राजा सन् १६१४ ई० तक शासक करता रहा। उसकी मृत्यु हो जाने पर वह सुगन्धित द्रव्यो (घृत, चन्दन आदि) के साथ जलाया गया। उसी समय उसकी रानियाँ

---

१ ए० ई० भा० ६ पृ० ३४१।

२ सोर्सेज़ पृ० २४१, २२७।

३ आ० स० रि० १६११-१२ पृ० १८५।

भी समस्त मूल्यवान् आभूषण वथा वस्त्र पहन कर ऊची वेदी पर से चिता मे कूद गई और आग मे जल कर सती हो गई[1]।

श्री वेंकटपति देवराय का सम्बन्ध पुर्तगालिकों से विशेष रूप से था। इतना गहरा सम्बन्ध इससे अन्य किसी विजयनगर-शासका का न था।

विदेशियो से सम्बन्ध

सन् १६०० ई० के पश्चात् पुर्तगाली विजयनगर की राजधानी चन्द्रगिरि मे रहने लगे। वे सदा राजा को कर दिया करते थे और माल पर चुगी भी देने में कभी आनाकानी नही करते थे पुर्तगालियों के अधिकारी भी चन्द्रगिरि मे निवास करने लगे। विदेशियो से मित्रता बढ़ाने के लिए गोवा मे वेंकट ने एक राजदूत भेजा। पुर्तगाली विजयनगर दरबार से सम्बन्ध बढाना चाहते थे। क्योंकि उनको मुगल सम्राट् अकबर से भय बना रहता था। श्री वेंकट के दरबार मे दुभाषिये भी थे जो पुर्तगालियो के पत्र-व्यवहार को राजा को समझाया करते थे। कुछ समय के बाद धार्मिक मतभेद के कारण हिन्दुओं और पुर्तगालियो मे झगडा हो गया। राजधानी मे युद्ध प्रारम्भ हो गया। हिन्दुओं ने पुर्तगाली सेनापति को मार डाला। अतएव पुर्तगालियो ने नगर मे आग लगा दी। वेंकट बहुत अप्रसन्न हो गया। पुर्तगालियों ने क्षमा प्रार्थना की और भेंट देकर राजा को शात किया। पुर्तगाल के बादशाह ने भी विजयनगर शासक से प्रार्थना की कि वह गोवा के गवर्नर की सहायता करे तथा पुर्तगालियों पर दया रक्खे। सन् १६१३ ई. मे कर न देने के कारण विजयनगर तथा पुर्तगालियों मे पुनः घोर सग्राम आरम्भ हो गया। परास्त होने पर पुर्तगाली सन्धि की प्रार्थना करने लगे। राजा की आज्ञा की वजह से सभी विदेशी कैद कर लिए गये। वेंकट की मृत्यु के पश्चात् ही पुर्तगालियों से सन्धि हो गई। उस संधि में यह शर्त (नियम) रक्खा गया कि पुर्तगाली धर्म का प्रचार नगर में न करेंगे। इस प्रकार पुर्तगालियों से झगडा समाप्त हुआ।

---

१ हेरास आ० डा० पृ० ५०८।

राजा मे धार्मिक सहिष्णुता थी। पादरी लोग (जेसुइट्) लोग इसके दरबार मे रहा करते थे। राजधानी मे एक मिशन स्थापित करने के लिए उन्होंने आज्ञा मागी। उदार हृदय राजा वेंकट ने चन्द्रगिरि मे चर्च तैयार करने का व्यय देना स्वीकार कर लिया। उसने वादा किया कि जितने ईसाई पादरी राजधानी मे रहेगे उसका भोजन खर्च भी राजकीय कोष से मिला करेगा। राजा ने गिरजाघर बनाने के लिए दो गाव दिये। वेंकट जेसुइट्स लोगों का मित्र बन गया। राजधानी मे पादरियों के व्याख्यान 'ईश्वर की एकता' पर हुआ करता था। महल के समीप के एक भवन मे ईसाई रहा करते थे। परन्तु सहिष्णुता का यह व्यवहार बहुत समय तक न रह सका। राजा का ईसाई मत की ओर विशेष प्रेम देख कर हिन्दू जलने लगे। उन्होंने प्रयत्न किया कि राजा अपने वैष्णव धर्म के प्रभाव में रहे। ईसाई लोग भी अपने मत का प्रचार जोरों से कर रहे थे इस बात की शिकायत राजा के कानों तक पहुँचने लगी। आखिरकार वेंकट पर अपने धर्मावलम्बियों का प्रभाव पडना स्वाभाविक था। एक ब्राह्मण के कथनानुसार वेंकट ने ईसाईयों से प्रेम करना कम कर दिया। थोडे समय मे धार्मिक वादाविवाद के बाद झगडे होने लगे। इस झगडो को मिटाने के लिए राजा ने पादरी लोगों को राजधानी से हटाना उचित समझा। अत• पादरी लोगों को चन्द्रगिरि छोडना पडा।

धार्मिक सहिष्णुता

श्री वेंकट पतिदेव को चित्रकला से बहुत प्रेम था। उसका विश्वास था कि भारतीय चित्रकला यूरोप की चित्रकला से अधिक सुन्दर तथा महत्त्व-पूर्ण है। अत• चन्द्रगिरि मे यूरोप के चित्रकार बुलाये गये थे। वे राजधानी मे रहा करते थे और राजा को चित्र बनाकर दिखलाया करते थे। राजा ने भी चित्र तैयार कराने के लिए बहुत रुपयों का रग खरीदा था। वेंकट का अंतिम जीवन सुख-पूर्वक व्यतीत न हुआ। उसकी कई पत्नियाँ थी जिनकी आज्ञा प्रधान मानी जाती थी राजा की आज्ञा महत्त्व हीन थी। राजाको कोई पुत्र न

चरित्र

था अतएव उसकी रानी ब्राह्मण के एक नवजात शिशु को अपना पुत्र घोषित करना चाहती थी। परन्तु तिरुमल तथा श्रीरग गद्दी का मालिक अपने को समझते थे।

श्रीरग सुन्दर तथा योग्य होने के कारण युवराज नियुक्त किया गया[1]। सन् १६१४ मे वेकट की मृत्यु के पश्चात् रग द्वितीय नियमतः विजयनगर का शासक बनाया गया और उसको राजसी वस्त्र और आभूषण पहनाये गए।

श्रीवेकट एक शक्तिशाली तथा ईश्वर-भक्त शासक था[2]। उसकी कीर्ति चारो ओर व्याप्त थी। वह न्याय के साथ २६ वर्ष तक शासन करता रहा[3]। उसके राज्य में प्रजा सुखी थी। उसकी विदेशी नीति से राज्य को बहुत लाभ हुआ। पुर्तगाली और डच लोगो के व्यापारिक सम्बन्ध से राज्य मे सम्पत्ति की वृद्धि हुई। राजा विद्वान् तथा दानी था। कुछ लोगों ने उसके ऊपर सदाशिव के मारने का दोष अवश्य लगाया है परन्तु इसमे सत्यता कम मालूम पडती है। इसके अतिरिक्त श्रीवेकट एक आदर्श शासक था।

श्रीरग द्वितीय के शासक बनने के कारण सारी प्रजा उससे अप्रसन्न थी। इस कारण राज्य मे अशाति तथा गृहयुद्ध प्रारम्भ हो गया।

श्रीरंग द्वितीय

बहमनी रियासतो ने राज्य के उत्तरी भाग पर अधिकार कर लिया। दक्षिण मे नायकों ने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया। अतः विजयनगर राज्य छिन्न-भिन्न हो गया और आरविदु-वश के अत के साथ ही साथ विजयनगर साम्राज्य का भी सदा के लिए लोप हो गया। इस प्रकार इस साम्राज्य की ऐतिहासिक वार्ता यही समाप्त हो जाती है।

मैसूर-प्रात के जेगुवी के नायक जग्ग ने राजा के समस्त परिवार को

---

१ सोर्सेज़ पृ० २१३। २ एपि० इं० भा० ३ पृ० २५२
३ एपि० इं० भा० १६ पृ० ३१६

मार डाला। रघुनाथ नायक ने राजा की सहायता की और श्रीरग को किसी प्रकार बचा लिया। श्रीरग द्वितीय थोडे समय तक चन्द्रगिरि पर शासन करता रहा। बीजापुर की तरफ से आक्रमण कर शाह जी (छत्रपति शिवाजी के पिता) ने जिञ्जी के दुर्ग को जीत लिया। गोलकुण्डा की ओर से मीर जुमला ने पूर्वी भाग पर आक्रमण कर दिया। इस प्रकार कृष्णा तथा पलार नदी के मध्य भाग मे युद्ध होने लगा। मीरजुमला उस भाग पर स्वय शासन करने लगा। अतः राजमहेन्द्री के दक्षिण तथा मगलोर तक का प्रात मुसलमानों के हाथ में चला गया। श्रीरग ने कोशिश कि सब नायको को मिलाकर यवनों को परास्त किया जाय, परन्तु किसी ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया और इस प्रकार उसका प्रयास निष्फल रहा। गोलकुण्डा तथा बीजापुर की सेना ने वेलोर मे श्रीरग को घेर लिया। अपनी जान बचाने के लिए श्रीरग मैसूर प्रात के इकेरी के शासक शिवप्पा नायक के यहाँ भाग गया[1]। राज्य के अधिक भाग पर तेजी के साथ शाहजी का अधिकार हो गया। उस समय इकेरी तथा मदुरा में दो प्रधान नायक थे। दुर्भाग्यवश शक्ति बढाने की इच्छा से दोनों आपस में लड़ते रहे। उनमें स्वार्थ तथा ईर्ष्या की मात्रा अधिक बढ गई थी। वे समझते थे कि एक दूसरे को दबा कर, पुन शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित कर सकता है। शत्रुओं के आक्रमण का ध्यान उन्हें न था। विजयनगर की दुर्दशा पर उन्हें तनिक भी दया न आई। विजयनगर के पराजित शासक की सहायता की भावना उनमे न थी। परन्तु उनकी सम्राट् बनने की इच्छा जाती रही और विजयनगर के साथ ही उनका भी नाम ससार से मिट गया।

विजयनगर-साम्राज्य का अन्त

यदि इन सब बातों पर ध्यान दिया जाय तो यह ज्ञात होता है कि

---

१ इंगलिश फैक्टरी इन इंडिया पृ० २४.

विजयनगर राज्य के नष्ट होने का मुख्य कारण शासकों की निर्बलता ही थी।

नाश के कारण विजयनगर के अतिम नरेशों मे राज्य-कार्य को चलाने की निपुणता न थी। नायक स्वतत्र होने लगे थे। मैसूर प्रात का नायक स्वतत्र हो गया। मदुरा तथा तजोर के सर्व-प्रथम नायकों ने भी उसी मार्ग का अनुसरण किया। इस प्रकार नायकों का महत्त्व बढ़ गया और विजयनगर राज्य के केन्द्रीय शासक का प्रभाव मिटने लगा। मुसलमानों का आक्रमण बढ़ता ही गया। शाहजी तथा मीर जुमला ने अन्त मे राजधानी को भी अपने अधिकार में कर लिया। शिवाजी की बढती हुई शक्ति के सामने सबको झुकना पड़ा। इस प्रकार विजयनगर राज्य का अंत हो गया और उस के स्थान पर मराठा-राज्य की स्थापना हुई।

आरविदु–वश–वृक्ष

रामराय
|
तिरुमल
|
श्रीरग प्रथम
|
श्रीवेंकटपतिदेव
|
श्रीरंग द्वितीय

: ६ :

विजयनगर की शासन-प्रणाली

विजयनगर-सम्राज्य की शासन-प्रणाली आदर्श थी। प्राचीन भारत मे प्रचलित राजकीय सिद्धान्तों को लेकर विजयनगर के राजाओं ने शासन किया। उस समय प्रजातन्त्र प्रणाली का नाम भी न था। अतएव समयानुकूल हरिहर तथा बुक्क ने अपना साम्राज्य स्थापित कर भारतीय आदर्श को ध्यान में रख कर विजयनगर में शासन प्रारम्भ किया। राजा ही समय का बनाने वाला होता है[1] अतएव विजयनगर में भी शासक के अनुकुल शासन-प्रणाली प्रचलित थी। शास्त्रकारों ने इसी बात को विभिन्न शब्दो में सब के सामने उपस्थित किया है। राजा ही समाज की प्रगति को बदलने वाला होता है। उसी की आज्ञानुसार रीति-रिवाज प्रचलित किये जाते हैं। वह युगका प्रवर्तक होता है, अतएव वह पाप तथा पुण्य का भागी होता है। महाभारत में वर्णित—

> राजा माता पिता चैव, राजा कुलवतां कुलम्।
> राजा सत्यं च धर्मं च राजा हितकरो नृणाम्॥ (शा० पर्व अ० ६६)

राजा के गुण विजयनगर राजाओ के शासन-युग मे सब को सत्य प्रतीत हुए। पराशर-सहिता की टीका मे माधवाचार्य ने आचारखण्ड में इसी मत की पुष्टि की है। सगम-वश का शासन इसी नीति को लेकर प्रारम्भ किया गया और साम्राज्य की स्थापना हुई। राजनाथ ने सालुव नरसिंह के विषय में लिखा है कि—

> "वर्णाश्रमाणां अवनक्रमेण, धर्मे स्थिरीकृत्य पदैश्चतुर्भि।
> कलिं पुनर्यैः कृतमद्भिः उर्व्यां, कालस्य कर्ता नृप इत्यदर्शि"॥

---

1 राजा कालस्य कारणम्।

कृष्णदेवराय का शासन धर्म की रक्षा के लिए प्रसिद्ध था। प्रजा तथा वर्णाश्रम-धर्म की रक्षा तथा धर्म का पालन करना उसके राज्य की विशेषता थी[1]। कहने का तात्पर्य यह है कि विजयनगर की शासन-प्रणाली प्राचीन भारतीय-प्रणाली का अनुसरण कर कार्यान्वित की गई थी।

शुक्राचार्य का कहना है कि शासक प्रजा के सेवक के रूप में पैदा किये गए थे। शासन के व्यय के लिए कर ग्रहण करना और प्रजा का पालन उनका मुख्य कार्य था[2]। राजा मे प्रजा की भक्ति इस कारण उत्पन्न होती है कि वह शक्तिशाली तथा धर्म-पालक होता है। राजा के वश में उत्पत्ति ही के कारण वह प्रजा का हृदय सम्राट् नही हो सकता। भारत मे यूरोप की भाति 'ईश्वर-प्रदत्त-शासनाधिकार' की महत्ता कभी न थी। शुक्र के अनुसार राजा और प्रजा का सबध पारस्परिक धर्म-पालन का था। शुक्र के समान ही पराशर-स्मृति की टीका मे माधवाचार्य ने अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं।

क्षत्रियो हि प्रजां रक्षन् शस्त्रपाणिः प्रदण्डवान्।
निर्जित्य परसैन्यानि क्षितिं धर्मेण पालयेत् ॥
पुष्प पुष्पं विचिनुयान्मूलच्छेदं न कारयेत ।
मालाकार इवारमे न यथाऽङ्गारकारकः ॥

(आचारखण्ड अ० १ पृ० ६०)

इसी विचार को लेकर माधवाचार्य ने विजयनगर-साम्राज्य की स्थापना मे सहायता की। कृष्णदेवराय ने स्वय अपनी पुस्तक आमुक्तमाल्यम् (श्लोक २८५) मे इसी बात को दुहराया है कि प्रजापति ने राजा को अनेक कार्यों के पालन करने के लिए ससार मे उत्पन्न किया है। प्रजा के कष्टो का निवारण तथा शत्रुओं से उसकी रक्षा का कार्य

---

१ ज० इ० हिस्ट्री भा० ४ पृ० ७४

२ **स्वभागभृत्या दास्यत्वे, प्रजानां च नृपः कृतः। शुक्रनीतिः १।१८७**
प्रजानां पालनं कार्यं, नीतिपूर्वं नृपेण हि। वही १।३१३

प्रधान बतलाया गया है। शास्त्रों में शासक (१) प्रजा का रक्षक (२) दण्ड-नीति को धारण करने वाला (३) नीति का पालक (४) न्यायपूर्ण दण्ड विधान करने वाला (५) शत्रु नाशक और (६) कर का ग्रहण कर्त्ता बतलाया गया है [१]। इसके अतिरिक्त उसे स्वधर्म का भी पालन करना चाहिए। कृष्णदेवराय के मतानुसार यदि राजा को उपर्युक्त बातों के पालन करने में कठिनाई हो तो वह भगवान् विष्णु की शरण मे जाकर धर्म के अनुकूल उसका निवारण करे। राजा को स्वेच्छाचारी न बनना चाहिए। प्राचीन काल मे इन समस्त नियमों के अनुसार शासन का भार राजा तथा उसके सहायक मन्त्रियो में विभाजित किया गया था। शुक्र ने शासक के सात अगों वर्णन किया हैं, जिनके सहयोग से ही आदर्श रीति से शासन किया जा सकता है। इन अंगों के नाम निम्नलिखित है-[२]
(१) राजा (२) मत्री (३) मित्र (४) कोष (५) राज्य-विस्तार (६) दुर्ग तथा (७) सेना।

विजयनगर के सम्राटों ने प्राचीन प्रणाली के अनुसार अपना शासन प्रबध प्रारम्भ किया। मध्ययुग मे मुसलमानों के आक्रमण को रोककर और यदा-कदा स्वतत्र होने की घोषणा करने वाले नायकों को परास्त करते हुए, इन राजाओं ने प्रजा को प्राचीन-भारतीय-सभ्यता का पाठ पढाया। विजयनगर के शासकों ने राज्य-प्रबध को केन्द्रीभूत रखना समुचित समझा अतएव साम्राज्य के प्रबध को निम्न प्रकार चार भागों में विभक्त किया—

(१) केन्द्रीय शासन
(२) प्रातीय शासन
(३) अधीनस्थ-राज्य-शासन
(४) ग्राम-प्रबध

---

१ गौतम—११।२०, शुक्र-नीति १।२।५५१

२ स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशराष्ट्रदुर्गबलानि च।
सप्तांगमुच्यते राज्यं, तत्र मूर्धा नृपः स्मृतः। शुक्र नीति १।६१

केन्द्रीय-शासन को कार्य की अधिकता से अनेक योग्य व्यक्तियों की आवश्यकता थी। अतएव मन्त्रीगण तथा महाप्रधान और अन्यकर्मचारी केन्द्र का कार्य करते थे। प्रातो की विशालता के कारण उनको राज्य का नाम दिया गया था । साम्राज्य के अन्तर्गत राज्य का अर्थ प्रातो से ही था। आधीनस्थ राजा गृह कार्यों मे स्वतन्त्र थे, परन्तु बाह्य-नीति साम्राज्य से सम्बद्ध होती थी । प्रात से छोटा 'मण्डल' होता था। इससे छोटा भाग 'नाडू' अथवा ग्राम के नाम से उल्लिखित है। ग्राम का प्रबध प्राचीन समय की तरह स्वतन्त्र रूप से चलता था । विजयनगर-राजाओ ने इसमे हस्तक्षेप नही किया। परन्तु उन्होने ग्रामों के शासन मे सुधार किये जिससे ग्रामों की स्थिति पहले से अच्छी हो गई।

केन्द्रीय-शासन

विजयनगर की शासन-प्रणाली का पता राजाओं के लेख तथा विदेशियों के द्वारा उल्लिखित विवरणों से लगता है। न्यूनिज का कथन है कि राजा के पास 'मत्री-मण्डल' था जिसकी सहायता से वह शासन करता था। सेवेल ने उसके सभाभवन तथा मंत्रीगण का उल्लेख किया है[1]। फिरिश्ता के कथनानुसार राजा अपने प्रतिष्ठित राजकर्मचारियो की सहायता से शासन-प्रबध करता था[2]। शास्त्रो मे वर्णित परिपाटी के अनुसार ही मत्रियो की नियुक्ति की जाती थी। बिना मंत्री के शासन सुचारु रूप से नही चल सकता था। अच्छे मत्री का प्रभाव शासक पर पर्याप्त मात्रा में पडता है। शुक्र का कथन है कार्य-कुशलता, आचरण तथा गुण ही मत्रियों की नियुक्ति मे विचारणीय प्रश्न होते हैं। वश-परम्परा पर विशेष ध्यान न देना चाहिए।[3] कृष्णदेवराय ने भी 'आमुक्त-

१ ए फारगाटेन इम्पायर पृ० १२० ।

२ ब्रिग—दि राइज् आफ मुसलिमस भा० २ पृ० ४३० ।

३ मन्त्री तु नीतिकुशल., पंडितो धर्मतत्ववित् ।
लोकशास्त्रनयज्ञस्तु, प्राड्विवाकः स्मृतः सदा ॥
शुक्रनीति २ । ८४ ।

माल्यम्' मे वर्णन किया है कि असत्य भाषण करने वाला, धर्म से न डरने वाला तथा प्रजा को कष्ट देने वाला व्यक्ति मत्री न बनाया जाय। इस प्रकार मत्रियों की सहायता से विजयनगर राजाओं ने शासन किया।

मन्त्री किसी विशेष जाति का व्यक्ति नही होता था। ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य-वश का व्यक्ति मन्त्री-पद पर नियुक्त किया जाता था। प्रधान-मन्त्री से मन्त्रणा करके राजा अन्य अधिकारियों की नियुक्ति करता था। जो व्यक्ति सुचारु रूप से शासन करता था उसके परिवार के अन्य व्यक्तियों को भी राज्य के किसी पद पर नियुक्त किया जाता था। एक लेख में वशपरम्परागतमन्त्रीपद का वर्णन मिलता है। मन्त्री के मासिक वेतन ग्रहण करने का उल्लेख नहीं पाया जाता। उनको अधिकतर भूमि दी जाती थी। सन् १४१६ मे रामचन्द्र को वेतन के बदले ग्राम दिया गया था। शासक के कितने मन्त्री थे, यह कहना कठिन है। इनकी सख्या निश्चित न थी। हरिहर के कई एक मन्त्री थे। वे योग्य व्यक्ति तथा कार्य कुशल थे। इनमे सायण, इरुगप्प, दण्डनाथ तथा मुदप्प मुख्य थे। इन सब में सायणाचार्य तथा उनके भ्राता माधवाचार्य विजयनगर साम्राज्य के सबसे प्रसिद्ध मन्त्री हुए हैं। न्यूनिज का कथन है कि देवराय द्वितीय के अनेक योग्य मन्त्री थे। कृष्णदेवराय के अप्पाजी, कोण्डमारु तथा व्यासराय नामक प्रसिद्ध मन्त्री थे। इन मन्त्रियो मे से प्रधान को महाप्रधान या प्रधान-मन्त्री कहा जाता था। सायणाचार्य ने 'सुभाषित-सुधानिधि' की पुष्पिका मे कम्पण के महाप्रधान होने का उल्लेख किया है। इसी प्रकार 'माध-वीया धातुवृत्ति' की पुष्पिका मे सायण को महामन्त्री कहा गया है। यह निश्चय-पूर्वक नही कहा जा सकता कि प्रधान-मन्त्री, महाप्रधान अथवा महामन्त्री के कौन कौन से विशिष्ट कार्य थे। परन्तु यह सत्य है कि मन्त्रियों मे प्रधान का विशेष स्थान अवश्य था। बुक्काराय के राज्यकाल मे कई महाप्रधानों के नाम मिलते हैं जिनके पदग्रहण की अवधि प्रायः निश्चित थी और यह पाच वर्ष की प्रतीत होती है। लेखों में बुक्क के महाप्रधानों के नाम निम्नलिखित हैं—

(१) महाप्रधान — धन्नायक श० सं० १२८२ से १२८७ तक[1]
(२) ,, वसेय ,, ,, १२८५ ,, १२६० ,,[2]
(३) ,, गोयरस ,, ,, १२८८ ,, १२६३ ,,[3]

आरविदु-वंश के कुमार तिरुमलराय सदाशिव के महाप्रधान थे। उस समय महाप्रधान को एक सहायक (Personal Assistant) भी मिलता था जो उभय-प्रधान के नाम से विख्यात था[4]। उस काल में केन्द्रीय शासन मे कार्य की अधिकता के कारण मत्रियो की सख्या भी अधिक रहती थी। साम्राज्य के प्रत्येक विभाग केन्द्रीभूत थे। विजयनगर-सम्राटो ने शासन के सुप्रबध के लिए, प्रजा-हित के लिए, तत्कालीन मुसलमान राजाओ के आक्रमण को रोकने के लिए और आन्तरिक विभिन्न झगडों तथा कठिनाइयो को दूर करने के लिए शासन को केन्द्रीभूत रखना उचित समझा। प्रथम तो स्वय सगम के वशज महामण्डलेश्वर कहे जाते थे परन्तु कुछ समय के बाद उन्होने 'महाराजाधिराज' की पदवी धारण की। ये शासक मन्त्रियों तथा अन्य राजकर्मचारियो की सहायता से राज्य-प्रबध करते रहे। केन्द्र के अन्य मत्रियों का विशिष्ट कार्य ज्ञात नहीं है, परन्तु अन्य कर्मचारी पृथक् पृथक् कार्य करते रहे।

मन्त्रिमण्डल

इस प्रकार राज्य–प्रबंध के लिए एक राज-सभा थी, जिसका प्रधान स्वयं राजा हुआ करता था और उसकी सहायता के लिए (१) प्रधान-मत्री (२) प्रातीय सूबेदार (३) सेनापति (४) राजगुरु तथा (५) कविगण नियुक्त किये जाते थे। प्रत्येक व्यक्ति की सहायता के लिए पृथक्-पृथक् छोटे कर्मचारी नियुक्त थे। इस राज-सभा के सदस्यो का चुनाव शासक पर ही निर्भर रहता था।

---

१ इपि० कलेक्शन १६०१ नं० १३२
२ इपि० करना० भा० ४ पृ० ११३
३ एपि० कले० १६०१ नं० १२६,
४ आर्क० सर्वे० रि० १६०८–६ पृ० १८४

इनके चुनाव मे प्रजा का कोई हाथ न था। स्थानीय नगर अथवा राजधानी के प्रबंध के लिए पुलिस का एक उच्च अधिकारी होता था जो राजसभा का सदस्य माना जाता था[१]। प्रधान-मन्त्री का कार्य सबसे महत्त्वपूर्ण था। उसके कार्यालय को 'रायस' कहा जाता था। कार्यालय का मन्त्री एक विद्वान् पुरुष होता था। लेखों मे वेकट को प्रसिद्ध विद्वान्, यजुर्वेद का ज्ञाता तथा आपस्तम्ब सूत्र का विशेषज्ञ बतलाया गया है[२]। कृष्णस्वामी के मतानुसार रायस (कार्यालय) का पत्र-व्यवहार उसी मन्त्री के ऊपर छोड़ दिया जाता था[३]। वही व्यक्ति कभी-कभी साधारण कार्यालय (General secretariat) का प्रधान अथवा 'सकलाधिपति' भी कहलाता था। उस कार्यालय मे अनेक 'कर्णिक' या लेखक भी वर्तमान थे[४]। कुछ व्यक्ति (कार्यकर्त्ता) सर्व साधारण प्रबंध व्यापार तथा कुछ राजकीय शासन को खुदवाने के कार्य मे व्यस्त रहते थे[५]। इसके अतिरिक्त कोषाध्यक्ष राजमहल के आय व्यय लिखने के लिए नियुक्त किये गए थे। उसी विभाग मे भाट, पान लाने वाला, पचागकर्त्ता, खुदाई करने वाला, लेख-निर्माता तथा शासनाचार्य भी महामन्त्री के अधीन होकर अपना कार्य सम्पादन करते रहे[६]।

राजगुरु का स्थान विजयनगर के इतिहास मे महत्वपूर्ण समझा जाता था। वैदिक काल के अनुसार राजगुरु को पुरोहित कहा जा सकता है। प्राचीन काल का पुरोहित केवल धार्मिक-कार्यों मे लगा रहता था, परन्तु विजयनगर राज्य मे राजगुरु महाप्रधान का भी कार्य करता था। क्रियाशक्ति तथा विद्यातीर्थ स्वामी का नाम महाप्रधान के रूप मे मिलता है।

---

१ डा० ईश्वरीप्रसाद—मिडिवल इंडिया पृ० ४३६

२ एपि० इंडि० भा० ३ पृ० १५१

३ सोर्सेज आफ विजयनगर हिस्ट्री पृ० २३०

४ मैसूर आर्क० रिपो० १६२० पृ० ३७

५ एपि० कर० भा० ५ पृ० ११ ६ एपि० कर० भा० ८ पृ० १२६

उनके कथनानुसार शासन का प्रबन्ध किया जाता था तथा राज्य की नीति स्थिर की जाती थी[1]। राजगुरु को दान सम्बन्धी कार्य सौंपा गया था। सगम द्वितीय के मार्गदर्शक उसके राजगुरु ही थे[2]। राजगुरु के उच्च स्थान को तत्कालीन बडे-बडे विद्वानों ने सुशोभित किया है। नरसिंहाचार्य देवराय द्वितीय के तथा रगनाथ दीक्षित कृष्णदेव राय के राजगुरु थे। रामराय के राजगुरु ताताचार्य थे जो रामानुज के वशज थे और सकल-शास्त्र के ज्ञाता थे। राज-सभा के अन्य सदस्य अपने विभाग के अधिष्ठाता थे। उनका वर्णन उनके विभाग के साथ पृथक्-पृथक् किया जायेगा।

राजशासन मे दण्ड की बडी प्रधानता होती है। ससार के अच्छे कार्य दण्ड ही के कारण चलते हैं। शास्त्रकारो का कहना है कि दण्ड ही नियम है[3]। दण्ड के द्वारा ही राज्य में सुख व शाति है। मनु ने भी लिखा है कि:—

न्याय विभाग

दण्डस्य हि भयात् सर्वे जगद्भोगाय कल्पते। (मनु ७।२२)

अतएव दण्ड निर्णायक नियुक्त करते समय विद्वान् व शास्त्रज्ञ व्यक्ति का ही चुनाव करना चाहिए। परन्तु शुक्र प्राचीन प्रणाली से भिन्न अपना मत व्यक्त करते हैं। उनके कथनानुसार सामाजिक, आर्थिक, तथा राजनैतिक विषय को जानने वाले व्यक्ति को न्यायसभा का प्रधान बनाना चाहिए[4]। मध्ययुग के नीतिकार शुक्र के कथनानुसार ही विजयनगर शासको ने न्याय का कार्य सेनापति को सौंप दिया। कृष्णदेवराय ने 'आमुक्तमाल्यम्' मे इसी विचार का समर्थन किया है। उनका कहना है कि दण्ड से ही समाज का सुधार होता है। अतएव प्रकृति, गुण व दोष तथा काल पर

---

१ गोपीनाथराव—मधुराविजयम् भूमिका पृ० १७

२ एपि० इंडि० ३ पृ० ३३

३ शु०नी० ४।२।६२; गौतम १।१।२६; अर्थ० शा० १।४।६

४ शु० नी० ४।२।८३

विचार करने वाले व्यक्ति को न्याय का कार्य करना चाहिए।[1] ईरानी यात्री अब्दुररज्जाक का कहना है कि विजयनगर में राजा ने सेनापति को दण्ड-नायक का पद दे रक्खा था। सब प्रजा को अधिकार था कि अपने मुकदमे की अपील सम्राट् तक करे। कृष्णदेवराय ने तो यहा तक निश्चय किया था कि अभियुक्त अपने मुकदमे की राजा के यहाँ तीन बार तक अपील कर सकता है।[2]

राजा स्वय प्रधान न्यायाधीश की तरह कार्य करता था। 'रामराय-चरित' में वर्णन मिलता है कि प्रत्येक व्यक्ति को राजा के पास अपील करने का अधिकार था। राजा स्वय या विद्वान् ब्राह्मणों की सहायता से न्याय किया करता था[3]। दीवानी तथा फौजदारी के लिए पृथक्-पृथक् न्यायालय वर्तमान थे। दीवानी के मुकदमे का प्राचीन शास्त्रों के अनुकूल निर्णय किया जाता था। भूमि के मामलो को राजा के द्वारा नियुक्त राजकर्मचारी स्थानीय पचायत की सहायता से तय करता था[4]। शासक जब स्वय भ्रमण मे जाते थे तो उन झगड़ों का निपटारा किया करते थे। भूमि सम्बन्धी निर्णय सदा केन्द्रीय सरकार से नियुक्त व्यक्ति के सामने किया जाता था।

फौजदारी के मामले मे दोषी को कठोर दण्ड दिया जाता था। दण्ड तीन प्रकार के होते थे। (१) जुर्माना, (२) दिव्य (Ordeal) तथा (३) मृत्यु[5]। चोरी, व्यभिचार तथा मन्दिरों के आभूषण के चुराने मे जुर्माना किया जाता था। सन् १४४३ ई० मे देवराय द्वितीय के शासन काल में फौजदारी के मामले में प्रायश्चित करने का दण्ड दिया गया था। एक लेख मे सेठीकार को जुर्माना किया गया था कि वे अमुक सख्या मे द्रव्य

---

१ जन० इडि० हिस्ट्री भा० ४ पृ० १११ श्लोक २७७

२ ,, ,, ,, ,, श्लोक २४३

३ मिडिवल इंडिया पृ० ४३४। ४ एपि० कर० भा० ८ पृ० २०६.

५ एपि० कर० भा० ४ पृ० १३।

अथवा भेड़ो को मन्दिर मे दान करें जिसकी आय से देवता की पूजा की जाय। इस सेठी का अपराध यह था कि उसने अपनी जाति के दो श्रेष्ठ व्यक्तियो को मार डाला था[1]। इतने कठोर अपराध के लिए कितना साधारण दण्ड था। परन्तु इस प्रकार के दण्ड बहुत कम मिलते हैं। विजयनगर के राज्य मे चोरी करने तथा व्यभिचार के लिए कठोर दण्ड का विधान था। चोरी करने वाले के हाथ पैर काट लिये जाते थे। मन्दिर में चोरी करने वाले पुजारी को धर्मशासन (कोर्ट) के सामने हाथी के पैर के नीचे कुचल डालने का विधान था। कभी-कभी अपराधी पुजारी को दिव्य-विधान कराया जाता था। धर्म-शासन के सामने गर्म लाल लोहा उसके हाथ में दिया जाता था अथवा गर्म घी मे हाथ रखने की आज्ञा दी जाती थी[2]। वर्तमान काल तक विजयनगर के खॅडहरों मे प्रस्तर खण्डों पर मनुष्य हाथी के पैर से कुचलते हुए दिखलाये गए हैं[3]। देश-द्रोही को फासी दी जाती थी। न्यूनिज कहना हैं कि देव-राय द्वितीय के विरोध मे जिन लोगों ने षडयन्त्र मे भाग लिया था, उनको आग में जला दिया गया और उनके परिवार को नष्ट कर दिया गया[4]। यद्यपि राजा सबसे बड़ा न्यायकर्त्ता था, परन्तु नियम का विधान ब्राह्मणो के हाथ मे रहा। शास्त्रकारों ने अनेक दिव्य सोधन (Ordeals) का उल्लेख किया है[5] जिनका प्रयोग यदा-कदा विजयनगर राज्य मे किया जाता था। कर्नाटक तथा तामिल देश मे न्याय-सभा शूद्रों को द्रव्य का दण्ड (जुर्माना) दिया करती थी। कभी-कभी विशेष मुकदमो को विशेष न्यायालय के सन्मुख उपस्थित किया जाता था

---

१ एपि० रिपो० १६२८ पृ० ६१।

२ एपि० कर० भा० ३ पृ० ४७।

३ सालातोर—विजयनगर हिस्ट्री भा० १ पृ० ३६०।

४ इलियट—हिस्ट्री आफ इण्डिया भा० ४ पृ० ११६।

५ शु० नी० ४।५।२, वृ० उप० १०।५।३१; छा० उप० ७।१।३

और राजा स्वय वहा वर्तमान रहता था । यदि सरकारी नौकर प्रजा पर अत्याचार करते तो उनको मृत्यु-दण्ड दिया जाता था[1] । राजा धार्मिक झगड़ों को भी शातिपूर्वक तय किया करता था । बुक्कराय का जैन तथा वैष्णव धर्मावलम्बियों के झगडे क निर्णय करना प्रसिद्ध ही है। इस प्रकार विजनगर राज्य में, न्याय विभाग सेनापति के आधीन होते हुए भी, किसी प्रकार का अन्याय नहीं होना था । राजा स्वयं देखरेख करता था तथा प्रत्येक प्रकार के झगड़े का समुचित रूप से तत्सम्बन्धी नियमानुकूल निर्णय करता था । प्रत्येक प्रजा को राजा तक पहुँचने मे कोई कठिनाई न थी । राज-कर्मचारी को कठोर दण्ड देने का विधान था, अतएव प्रत्येक कार्य न्याय पूर्वक होता था ।

सेना विभाग

विजयनगर के राजाओं को बहमनी के मुसलमान शासकों से सदा युद्ध करना पडता था, अतएव अपने राज्य की रक्षा के लिए शासकों ने विशाल सेना का सगठन किया था। उत्तरी तथा दक्षिणी सीमा पर सदा युद्ध होते रहते थे । यही कारण है कि विजयनगर का सैनिक बल असख्य रखा जाता था । सेना की सख्या के विषय मे विदेशी यात्रियों का वर्णन एक-सा नहीं मिलता । फिरिश्ता का कथन है कि मुहम्मदशाह से युद्ध करते समय विजयनगर के पास एक लाख पैदल, तीस हजार घुडसवार तथा कई हजार हाथी मौजूद थे[2] । अब्दुर रजाक के अनुसार विजयनगर के शासक ११ लाख पैदल, ५ लाख घुड़सवार, और १ हजार हाथी अपनी सेना में रखते थे । देवराय द्वितीय के पास बासठ हजार धनुषधारी, अस्सी हजार घुडसवार और दो लाख पैदल सिपाही थे[3] । रायचूर द्वाब के युद्ध मे विजयनगर के शासक कृष्णदेव राय के पास असख्य सेना थी । 'कृष्णदेवराय-विजयम्' के अनुसार

---

१ सालातोर वही भा० १ पृ० ३८३ ।

२ बिग—दि राइज आफ मुसलमान्स पृ० ३०६

३ इलियट—हिस्ट्री आफ इडिया ४। पृ० १०५

राजा के पास ६ लाख पैदल, ६६ हजार घुड़सवार और २ हजार हाथी वर्तमान थे[1]। विदेशी विजयनगर की अतुल सेना को देखकर आश्चर्य-चकित हो जाते थे। तालिकोट के महासमर में ६ लाख पैदल सिपाही, ४५ हजार घुड़सवार, २ हजार हाथियों, १५ हजार धनुषधारी तथा हर एक प्रकार के तोपखाना काम कर रहे थे। कहने का तात्पर्य यह है कि विजयनगर का सैनिक-बल असंख्य था।

सेना को कई भागो में बांटा गया था। (१) पैदल (२) घुडसवार (३) हाथी (४) धनुषधारी और (५) तोपखाना (जिसमे रथ भी सम्मिलित थे)। सन् १४४३ के लेख मे 'हस्ती अश्वरथपदाति वलम्' का वर्णन मिलता है[2]। पर आगे चलकर धनुषधारी सैनिकों का रखना अनिवार्य समझ कर उनको भी पैदल मे सम्मिलित किया गया[3]। रथ मे तोपखाना भी शामिल था। इतनी बड़ी सेना के सामान की तैयारी करने के लिए एक पृथक् विभाग था। उसके द्वारा सैनिकों के भोजन तथा वस्त्र का प्रबंध किया जाता था। इसकी तुलना आधुनिक 'कमसेरियट विभाग' से की जा सकती है। शुक्र का कथन है कि सेना में तोपखाना के साथ साथ बैल तथा ऊँटों की भी आवश्यकता होती थी[4]। इन सब का वर्णन हरिहर द्वितीय के एक लेख मे मिलता है। उस लेख मे ६ विभागों का उल्लेख मिलता है। (१) पैदल (२) घुड़सवार (३) हाथी (४) तोपखाना (जिसमे रथ सम्मिलित था) (५) ऊट तथा (६) बैल[5]। पैदल सेना मे तुर्क, तेलगु, पाड्य तथा होयसल जाति के लोग नियुक्त किये जाते थे। सिपाहियों को सरकारी भोजनालय

---

१ कृष्णदेवराय-चरितम् पृ० १३१

२ एपि० कर० भा० ८ पृ० १०३.

३ ब्रिग—दि राइज आफ मुसलमान्स भा० २ पृ० ४३२

४ शु० नी० भाग ४ ७ । १ । ४१

५ वहरवर्थ—नेलोर लेख भा० १ पृ० ४

से भोजन मिलता था जिसमे अन्न के साथ मास भी सम्मिलित था। वस्त्रों में मखमल या रेशमी का व्यवहार किया जाता था। जब सिपाही शत्रुओं पर आक्रमण करते थे तो 'गोविन्द' 'गोविन्द' की जोशपूर्ण आवाज करते थे। यह उनका सामारिक नारा (वार-स्लोगन) था।

घुड़सवारों के लिए भी भोजन तथा वस्त्र का प्रबंध होता था। सैनिकों के अतिरिक्त घोड़ों को भी वस्त्र से सुसज्जित किया जाता था। विजयनगर के राजा अरब से घोड़े मगाया करते थे। इस व्यापार मे पुर्तगाली बहुत लाभ उठाते थे। राजा घोड़ो के लिए प्रत्येक-वर्ष लाखों रुपया खर्च करते थे। घोड़े पर्याप्त मूल्य में खरीदे जाते और उनपर मुहर लगादी जाती थी। हाथियों का भी युद्ध मे उपयोग किया जाता था। उनको भी वस्त्र तथा गहनों से विभूषित किया जाता था।

तोपखाना तथा बिरुद का प्रयोग, मुसलमानों से भी पहले विजयनगर के शासक करते रहे।[१] शुक्र ने भी बारूद के प्रयोग का वर्णन किया है[२]। विदेशी राजदूतों का कथन है कि तालिकोट में तीन हजार तोपे तथा रायचूर की चढाई मे एक हजार तोपे प्रयुक्त की गई थीं[३]। विजयनगर के एक लेख मे भी बारूद के द्वारा एक व्यक्ति की मृत्यु का वर्णन मिलता है[४]। लड़ाई मे मुसलमान धनुषधारी बड़ी कुशलता से लड़ते थे। फिरिस्ता· ने वर्णन किया है कि युद्ध में परास्त होने पर देवराय द्वितीय ने अपनी सेना में धनुष चलाने वाले सैनिकों की कमी को पूरा करने के लिए हजारों मुसलमान धनुषधारी सैनिकों को नियुक्त किया। उन लोगों ने कुछ ही दिनो मे हिन्दू पैदल सेना को धनुष-बाण चलाना सिखलाया और इस प्रकार साठ हजार धनुषधारी हिन्दू सैनिक तैयार हो गए। देवराय ने

---

१ शु० नी–२।२।३६३

२ सेवेल–ए फारगाटेन इम्पायर पृ० ३२८

३ एपि० कर० भा० ८ पृ० १०४

४ रंगाचार्य-इ०ए०भा०६३ पृ० १६१

सैंकड़ों तुर्की घुड़सवार अपनी सेना मे भरती किये [1]। मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए नगर में उनके रहने के लिए एक विशेष स्थान निश्चित कर दिया गया। उन्होंने वहा मसजिद बनाई। उनके लिए बकरे तथा कबूतर के मास का प्रबंध किया गया। राजा अपने सिंहासन के पास कुरान शरीफ रखता था। इस प्रकार विजयनगर के पास बीस हजार मुसलमान सैनिक थे।

विजयनगर नरेशो के पास जलसेना का भी एक वेडा था जो पश्चिमी तथा पूर्वी भाग (मलाबार तथा कारोमण्डल तट) मे रहा करता था। दोनो तटों पर स्थित कुल साठ बन्दरगाह थे, जहा इनके जहाज रहा करते थे। वेंकट पतिदेव द्वितीय के समय में पुर्तगालियों से कारोमण्डल तट पर झगड़ा भी हुआ था। परन्तु उन्होंने वेंकटपतिदेव से सन्धि कर ली। इस प्रकार स्थल सेना के अतिरिक्त शक्तिशाली जलसेना भी विजयनगर के पास थी।

गुप्त चर

राजा प्रत्येक वर्ष राम-नवमी तथा विजया-दशमी के समय सेना का निरीक्षण किया करता था। सेना बाहर खड़ी की जाती थी। यदि सेना को आक्रमण करने बाहर जाना होता था तो राजा उसी समय घोषणा कर देता था। राजा कृष्णदेव राय तो मुसलमानी सेना के मार्ग का पता लगाकर अपने आक्रमण-मार्ग का निर्णय करता था। सेना में गुप्तचर भी वर्तमान थे जो शत्रुओं की चाल का पता लगाया करते थे। ब्राह्मण सदा सेना के साथ रहा करता था। यदि समय पड़ता तो सैनिकों को नाना प्रकार की वीरता की बातें सुनाकर जोश दिलाया करता था [2]। नगाडे के बजने के साथ युद्ध किया करना था तथा सेना 'गोविन्द', 'गोविन्द' के नारे लगाया करती थी। राजा सैनिकों को युद्धक्षेत्र मे जाते समय स्वय पान का बीड़ा खिलाता था।

---

१ ब्रिग्—फिरिस्ता, एपि० कर० भा० ३ भूमिका पृ० २३

२ सेवेल—वही पृ० १११

यह प्रथा केवल दक्षिण भारत मे थी और इसकी बड़ी महत्ता मानी जाती थी[1]।

सेना जहॉ जाती थी वहॉ कैम्प खड़े किये जाते तथा नगर बसाया जाता था। कैम्प चारों तरफ से घिरा रहता था। पहरेदार नियुक्त रहते थे। ब्राह्मण सेना की विजय के लिए पूजा करता था। धोबी और नाई सभी मौजूद रहते थे। नगर के अन्दर बाजार लगा रहता था। भोजन सामग्री तथा कपड़ा आदि सब सामान मिलता था। इस प्रकार एक विशाल नगर तैयार हो जाता था। वहा पर प्रत्येक सैनिक का नाम पुस्तिका में लिखा रहता था[2]। उनको प्रत्येक चौथे मास वेतन दिया जाता था[3]। उन्हें किसी प्रकार की भूमि नही दी जाती थी।

सेना का विभाग एक सेनापति के आधीन रहता था[4]। केन्द्रीय शासक के पास सभी विभाग थे तथा सेना की अधिकता के कारण प्रत्येक प्रातीय शासक को केन्द्रीय सरकार की तरह सेना रखने का अधिकार था। तोपखाने केन्द्र तथा प्रात मे भी वर्तमान थे। कोई भी ऐसा विभाग न था जो प्रातीय शासक की सेना मे न पाया जाता हो। यह समस्त सेना केन्द्रीय शासक की आज्ञानुसार काम करती थी तथा युद्ध के समय राजा की सहायता किया करती थी। रणक्षेत्र मे मार्ग तैयार करने का भी एक विभाग था[5] जिसकी वर्तमान काल के सैपर्स तथा माइनर्स से तुलना की जा सकती है। जब राजा विजय करके लौटता था तो विजय का उत्सव बडे समारोह से मनाया जाता था। शासक ब्राह्मणों तथा सेना के अधिकारियों को इनाम बाटता था। मुसलमानों पर विजय प्राप्त करने पर

---

१ राइस—मैसूर तथा कूर्ग लेख पृ० १७१

२ बारबोसा पृ० ६१

३ इलियट—हिस्ट्री भाग ४ पृ० १०६

४ एपि० कर० भा० ११ पृ० ८७

५ एपि० इं'डि० भाग १६ पृ० १३३

हिन्दू सेना मसजिदों को गिराती और शत्रुओं को मार डालती थी। फिरिस्ता का कहना है कि हिन्दुओं ने मसजिद गिराने के साथ-साथ स्त्री व बच्चों का भी वध किया। परन्तु जिस समय मुसलमान विजयी होते तो उनका वर्ताव भी कम कठोर न रहता था। मुसलमानों ने भी एक वार में सत्तर सत्तर हजार हिन्दुओं को मार डाला। विजयनगर के नरेशों में कृष्णदेवराय ही ऐसा शासक था जिसने उड़ीसा के राजा पर विजय प्राप्त करके भी दया का भाव रक्खा और प्रजा पर कठोरता का व्यवहार नहीं किया। राजनीतिक चाल के कारण विजयनगर के नरेशों ने हजारों मुसलमान सैनिकों और घुड़सवारों को सेना मे नियुक्त किया था। रामराय की सेना में एबिसिनिया के निवासी अनेक मुसलमान भी छोटे-छोटे सेनापति के पद पर नियुक्त किये गए थे। परन्तु मुसलमानी सेना ने तालिकोट के रण-क्षेत्र में अपने स्वामी विजयनगर-शासक का साथ छोड़ दिया और बहमनी राजाओं से जा मिली। उसी समय से सेना में मुसलमानों की नियुक्ति बन्द कर दी गई।

पुलिस विभाग

विजयनगर की केन्द्रीय राजसभा ने नगर के प्रबन्ध के लिए पुलिस विभाग का निर्माण किया था। पुलिस का एक बड़ा अधिकारी होता था जो नगर में शांति की स्थापना करता तथा बुरे कामों को करने से जनता को रोकता था। उसकी सहायता के लिए गुप्त रीति से काम करने वाले गुप्तचर (C. I. D.) भी होते थे जो उस अधिकारी को सूचना दिया करते थे[1]। इसके अतिरिक्त प्रांत तथा ग्रामों में भी रक्षा के निमित्त सुचारू रूप से पुलिस कार्य करती थी।

हिन्दू-शास्त्रों में राजनीति के अन्तर्गत अर्थ की बड़ी महिमा बतलायी गई है। महाभारत में तो अर्थ पर ही राष्ट्र की स्थिति

---

१ इलियट—हिस्ट्री भा० ४ पृ० १११।

अवलम्बित बतलाई गई है[1]। स्मृतिकारों ने अर्थ को ही राष्ट्र का मूल घोषित किया है[2]। तात्पर्य यह है कि धर्म की रक्षा, देश की रक्षा तथा राष्ट्र के सञ्चालन के लिए अर्थ की नितांत आवश्यकता है। अतएव कोश को पूर्ण करने तथा राज्य के सुप्रबन्ध के लिए यह आवश्यक है कि राजा प्रजा पर कर (टैक्स) लगावे। विजयनगर के शासकों ने अपने समय में प्राचीन-शास्त्रीय-प्रणाली के अनुसार कार्य किया तथा अपने पूर्वगामी शासक होयसल नरेशों के द्वारा प्रचलित शैली पर भी चलने का प्रयत्न किया। दक्षिणी भाग में चोल राजाओं के चलाए हुए नियम तथा कर्नाटक में होयसलों के नियमों का पालन किया जाता था। तत्कालीन स्मृतिकार शुक्र ने उल्लेख किया है कि अर्थ-विभाग केन्द्रीय सभा के अधीन था। उस विभाग के लिए सुमन्त (अर्थ-सचिव) तथा अमात्य नियुक्त किये गये थे जिनका प्रधान कार्य कर—ग्रहण करना था। सुमन्त समस्त कार्यों का निरीक्षण करता था तथा अमात्य केवल कर की वसूली पर ध्यान देता था[3]। विजयनगर राज्य में निम्नलिखित प्रकार से आय हुआ करती थी—

आय

(१) भूमि कर—प्रत्येक राष्ट्र को राज्य की समस्त आय का अधिकांश भाग भूमि कर के ही रूप में प्राप्त होता है। परन्तु कर-ग्रहण की मात्रा एक-सी नहीं होती थी। प्राचीन-शास्त्रों में धान्य का 'षष्ठांश' ग्रहण करने का उल्लेख पाया जाता है। माधवाचार्य ने 'पराशर-माधवीय' के आचार-खण्ड में धान्य का छठा भाग लेने का उल्लेख किया है। अत: यह बात सिद्ध होती है कि विजयनगर राज्य में धान्य का छठा भाग

---

१ शा० पर्व १२३, घोषाल—हिन्दू पोलिटिकल थ्योरी पृ० २०४।

२ अर्थ शा० २।८।६६, शु० नी० ४।२।२।
(कोशमूलो बलं स्मृतम्)

३ शु० नी० ४।२।१

ही प्रजा से कर के रूप में ग्रहण किया जाता था [1] । तामिल देश में यह कर कुछ कम था और धान्य का सातवाँ भाग ही वसूल किया जाता था [2] । भूमि के अनुसार राजा भूमि-कर निश्चित करता था । यदि भूमि वन्ध्या होती थी और किसी व्यक्ति ने उसे नए ढग से आबाद किया तो राजा उस भूमि के लिए दो वर्ष तक लगान न लेता था । इसके अतिरिक्त यदि उस भूमि की सिंचाई नदी या नहर से की जाती, तो सरकारी लगान छठे भाग से बढ़ाकर चौथाई कर दिया जाता था [3] । इस प्रकार भूमि-कर एक निश्चित कर न था । समयानुकूल भूमि-कर में परिवर्तन हुआ करता था ।

प्रत्येक वर्ष पृथ्वी का माप होता था [4] । जमीन के मापने वाले लट्ठे की लम्बाई ३४ फीट थी ।[5] समस्त भूमि को (१) वध्या (२) उर्वरा तथा (३) बाग वाली इन तीन पृथक् भागों में विभक्त किया गया था । प्रत्येक भाग की सीमा निर्धारित की जाती थी । सीमा पर वामन प्रस्तर या लोकेश्वर प्रस्तर स्थिर किया जाता था [6] । यह भूमि का माप अर्थ-विभाग के अधिकारी के पास रजिस्टर में लिख दिया जाता था ।

भूमि-माप

राज्य में जो व्यक्ति लगातार तीन वर्ष तक भूमि कर नहीं देता था उसकी भूमि राजा की हो जाती थी [7] । जो व्यक्ति बिना सूचना के

---

१ राज्ञे दत्वा षड्भागम्—
पराशर २।१७ (आचार—खण्ड १ पृ० २७०)

२ एपि० कर० भा० ४ पृ० १२३

३ शु० नी० २।२।२७

४ सालातोर—विजयनगर हिस्ट्री भा० १ पृ० १९७

५ एपि० रिपोर्ट १९१९ पृ० १४१।

६ एपि० कर० भा० ४ पृ० ४७

७ एपि० रिपोर्ट १८९९ पृ० १

भूमि-विक्रय

अपना निवासस्थान छोड देता था उसकी भूमि भी राजकीय सम्पत्ति हो जाती थी[1]। ऐसी भूमि को राजा स्थानीय ग्राम-सभा को दे देता था जो भूमि के विक्रय का प्रबंध करती थी। मध्यस्थ रखकर, समस्त लोगों के सामने उस भूमि का विक्रय किया जाता था। समय के भाव के अनुकूल जमीन बेची जाती थी। यह विक्रय का कार्य देवता के मंदिर या नदी-किनारे सम्पादन किया जाता था[2]। इसके अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर जमीन को बंधक रख सकते थे। जिस कागज पर इसकी रजिष्ट्री की जाती थी उस पत्र को 'भोग्य-पत्र' कहा जाता था[3]। परन्तु राजा से पुरस्कार में प्राप्त भूमि को न तो कोई बंधक रख सकता था और न बेच सकना था[4]। इस राजकीय नियम के पालन न करने पर उस व्यक्ति को दण्ड दिया जाता था और वह भूमि मंदिर के व्यय के लिए दे दी जाती थी।

विजयनगर के शासकों ने खेती मे सुधार करने के निमित्त अनेक उपाय किये। जमीन की सिंचाई के लिए प्रायः सभी राजाओं, प्रांतीय गवर्नरों तथा स्थानीय संस्थाओं ने कुआ, तालाब तथा नहरों को बनवाया व सिंचाई का प्रबंध किया[5]। कावेरी नदी की बाढ से खेतों की सीमा नष्ट होजाने के बाद, राजा ने पुनः सीमा निर्धारित की। उसी की आज्ञा से नहरों मे भरी हुई मिट्टी निकाली गई[6]। लेखों में वर्णन मिलता है कि वेंकट द्वितीय तथा उसके मंत्री ने नहरों के प्रयोग के लिए प्रजा को

---

१ एपि० रि० १९१० पृ० ९२

२ एपि० कर० भा० ६ पृ० ६६

३ एपि० कर० भा० ३ पृ० ३३

४ एपि० रिपोर्ट १९१६ पृ० १४०

५ सेवेल-ए फारगाटेन इम्पायर पृ० ३६५

६ नं० ४२२ आफ १९१२

उत्साहित किया[१]। विजयनगर के आधीनस्थ नायकों ने भी तालाब तथा कुए खुदवाए जिससे दक्षिणी आरकाट मे खेती की उन्नति होने लगी[२]। गगदेवी ने 'मदुराविजयम्' मे वर्णन किया है कि उसके पति कम्पणराय ने कावेरी नदी में बाध बँधवाये। इससे अनाज की उत्पत्ति कई गुनी बढ गई। कृष्णदेव ने एक ऐसी नहर तैयार कराई थी जिसमें कई एक फाटक थे तथा एक हजार व्यक्ति उसकी रक्षा के लिए नियुक्त किये गए थे। विजयनगर के राजा इस कार्य को लोकोपकार समझते थे[३]। इतना ही नही विजयनगर के शासकों ने भूमि की उन्नति के लिए लोगों को रुपया दिया, जिससे प्रजा जानवर खरीदती थीं और नहर तथा तालाब तैयार करती थी। शासक विदेश से मनुष्यों को किसी विशेष स्थान (भूमि) पर निवास करने के लिए आमन्त्रित करता था। खेती के लिए रुपया अथवा बीज पेशगी (अग्रिम) रूप में दिये जाते थे[४]। इसके अतिरिक्त स्थानीय संस्थाये भूमि की सुचारू रूप से जुताई के लिए जनता को रुपया कर्ज दिया करती थी[५]।

भूमि-कर की वसूली के लिए एक निश्चित मार्ग था। एक रजिस्टर तैयार किया जाता था जिसमें भूमि का नाम तथा लगान (कर) लिखा रहता था। लगान सिक्के तथा सामग्री (धान्य) के भी रूप मे लिया जाता था[६]। विजयनगर राज्य मे कर के लिए प्रजा सोना या हीरा सरकारी कोष मे जमा करती थी। पुर्तगाली पेई का कथन है कि कोषाध्यक्ष उस सोने तथा

---

१ ए० इ० भा० ३८, पृ० ९७

२ नं० ३८८ आफ १९१२

३ राइस—मैसूर लेख भूमिका पृ० १३२। एपि० कर० भा० ११ पृ० ३८.

४ राइस—मैसर गजेटियर भा० १ पृ० ५८०

५ एपि० कर० भा० ४ पृ० ४३

६ सा० इ० इ० भा० १ पृ० ८०

हीरा को सुरक्षित रखता था[१]। शासक के तोशखाने का निजी कोषाध्यक्ष होता था। भूमि-कर राजकीय कोषाध्यक्ष के पास एकत्रित किया जाता था[२]। कभी-कभी शासक सारे झंझटों से पृथक् रहने के लिए जमीन को ठेके पर दिया करते थे[३]। ठेके को 'गुत्तर' कहते थे। राज को उस व्यक्ति से निश्चित कर मिलता था। उस ठेके मे केवल भूमि-कर ही सम्मिलित रहता था। इसके अतिरिक्त जगलों से भी आय होती थी[४]। भूमि-कर के अतिरिक्त विजयनगर के राजा अन्य कर भी ग्रहण करते थे जो होयसल राज्य मे प्रचलित थे। लेखो में भी इन करों का वर्णन मिलता है। इन करों का निम्न-लिखित श्रेणी मे विभाग किया जा सकता है।

(२) दूसरा कर चुङ्गी से मिलता था जो नगर के फाटक पर वसूल किया जाता था। उस समय पूर्वी अफ्रीका, अरब तथा योरप आदि देशो से व्यापार प्रचुर मात्रा मे होता था। पुर्तगाली तथा अरब वाले घोडों का व्यापार सदा करते थे जिनकी यहा अत्यन्त आवश्यकता भी थी[५]। उन्हीं लोगा से बन्दरगाह पर चुङ्गी (Import duty) वसूल की जाती थी। बाहर जाने वाले सामान पर भी कर (Export duty) लिया जाता था। राज्य के बाजारों में बिकने वाली सामग्री पर और प्रत्येक दूकानदार या व्यापारी से एक दूसरे प्रकार का भी कर वसूल किया जाता था[६]। उस अधिकारी-

---

१ सेवेल-ए फारगाटेन इम्पायर पृ० २८२

२ एपि० कर० भा० ८ पृ० १०३

३ सालातोर-हिस्ट्री भा० १ पृ० २०७

४ एपि० रिपोर्ट १६१५ पृ० १०७, १६१३ पृ० १२२

५ एपि० कर० भा० ४ पृ० ११८।

६ ,, ,, भा० ३ पृ० १६७।

मुकड-अधिकारी (Custom officer)[१] को राजा की ओर से रसीद देने का अधिकार दिया गया था[२]।

(३) तीसरे प्रकार का कर पशुओं पर लगाया गया था। बाजार में पशु बेचने वाले को कर देना पड़ता था[३]। प्रत्येक व्यक्ति को राजकीय चरागाह में पशु भेजने के कारण टैक्स देना पड़ता था[४]। उसमें अधिकतर भेड, बैल तथा अन्य जानवर चरा करते थे।

(४) राज्यभर में जितने जगल या वृक्ष होते थे उन पर एक प्रकार का कर लगाया जाता था। सम्भवतः वह कर वृक्षों के फल के प्रयोग करने वाले को देना पडता था[५]।

(५) विजयनगर राज्य में शराब की बिक्री से भी आबकारी का कर वसूल किया जाता था।

(६) राज्य भर में जितने कपडे, तेल या शक्कर के कारखाने वर्तमान थे, उन पर अत्यधिक टैक्स (कर) लगाया गया था[६]। जो सामान तैयार होता वही व्यापारी के हाथ बेचा जाता था।

(७) राज्य में काम करने वाले कुछ ऐसे कारीगर थे जिनकी आय का लेखा देखकर कर लगाया जाता था। उनमें नाई, धोबी, कसाई, अंडा बेचने वाले, पान वाले, कुम्हार, सुनार, बढई, वेश्या आदि पर कर लगाया

---

१ एपि० कर० भा० ६ पृ० १६।

२ वटरवर्थ—नेलोर लेख भा० २ पृ० ६४२
एपि० कर० भा० ५ पृ० ६६६।

३ एपि० इंडि० भा० १७ पृ० ११२।

४ ,, ,, ,, १८ पृ० १३६।

५ एपि. इण्डि भा. १८ पृ० १३६।

६ एपि. कर. भा. ४ पृ० १०३, एपि. कर. भा. ३ पृ. १६७; वही भा. १० पृ. २६२।

गया था[1]। विजयनगर में विवाह के समय भी प्रजा को राजा के लिए उपहार देना पड़ता था, जो अनिवार्य था। इसलिए लेखों में उसका विवाह-कर के नाम से उल्लेख पाया जाता है[2]। आश्चर्य की बात तो यह है कि विजयनगर राज्य मे कोई भी व्यक्ति भिक्षा नही माग सकता था। यदि भिक्षा मागते वह देखा जाता तो जुर्माने के रूप में उस व्यक्ति से रुपया वसूल किया जाता था।[3]

(८) कुछ अन्य प्रकार के भी कर थे जो अनिवार्य रूप से वसूल नही किये जाते थे, जैसे मछली मारना अथवा समुद्र से मोती निकलना[4]। राजा इन दोनों कामों का ठेका दे दिया करता था और सारा रुपया पेशगी ही वसूल कर लिया जाता था[5]। समुद्र के किनारे नमक बनाने वालों से भी कर वसूल किया जाता था।

विजयनगर के शासको को इन करो के अतिरिक्त उनके अधीनस्थ शासक (नायकों) से भी प्रत्येक वर्ष कुछ रुपया कर रूप में मिला करता था। इसके अतिरिक्त प्रातीय अधिकारी प्रत्येक वर्ष केन्द्रीय सरकार को एक निश्चित रूप मे भेंट दिया करते थे[6]। यद्यपि अन्य मामलों मे वे स्वतत्र थे परन्तु कर के मामले मे परतत्र थे। इसके अतिरिक्त दण्ड से जो द्रव्य मिलता था, वह भी राजकीय आय-वृद्धि करने का एक मार्ग था। इन समस्त मार्गों से असख्य द्रव्य कर के रूप मे ग्रहण किया जाता था।

इस विशाल साम्राज्य का व्यय भी इसकी आय के अनुकूल ही था।

---

१ इलियट हिस्ट्री भा ४ पृ १११।

२ एपि, कर भा. ४ पृ ११८ : वही भा. ७ पृ ७४।

३ न १ देखिये।

४ एपि० इ० भा० १७ पृ० ११२

५ एपि० कर० भा० ६ पृ० ६८

६ मौरलैंड—ए ग्रेरियन सिस्टम ग्राफ मुसलिम इंडिया पृ० १०
सेवेल-ए फारगाहेन इम्पायर पृ० २८०

विजयनगर की महत्ता को देख कर समस्त विदेशी दातों तले अगुली दबाते थे। राजा तथा महल की शान शौकत की कही समानता नही दिखलाई पडती थी। मकानो, सभा-

व्यय

भवनों तथा मदिरों की सजावट अवर्णनीय थी[1]। आय का प्रायः तीसरा भाग राजकीय महलों तथा आराम की सामग्रियो मे व्यय किया जाता था। सब से अधिक व्यय सेना मे होता था। असख्य सिपाहियों के वेतन, भोजन, वस्त्र तथा इनाम आदि को मिला कर आय का आधा भाग व्यय हो जाता था। उस काल मे मुसलमानो से युद्ध करने के लिए यह आवश्यक भी था। केन्द्र के अतिरिक्त प्रातीय स्थानो मे सेना रखने का व्यय केन्द्रीय सरकार को ही देना पडता था। इस प्रकार सेना मे ही सब से अधिक व्यय होता था। विजयनगर राज्य मे कभी कभी किसानों की अवस्था बुरी हो जाने पर लगान माफ कर दिया जाता था। किसी स्थान पर कर की अधिकता के कारण जनता उस स्थान को छोडने लगती थी[2]। लेखों मे उल्लेख मिलता है कि राजा इस बात बात को सुनकर स्वय वहा जाता था और टैक्स माफ कर देता था[3]। तिरुमल का नाम इस सम्बन्ध मे लिया जा सकता है। लडाई मे हर्जाना देने के लिए जनता से रुपया वसूल करने का कभी विचार किया जाता था, परन्तु जनता के विरोध करने से राजा उस नीति को काम में नही लाता था। अच्युत के ऐसे प्रशसनीय कार्य करने का उल्लेख पाया जाता है। विदेशियो का कहना है कि दक्षिण मे नायको के राज्य मे ऐसी बाते अधिक हुआ करती थी[4]। परन्तु विजयनगर के शासक उसे दूर करने में सदा उद्यत रहते थे। सारी बातों को सोचकर, कुछ दिनो के बाद ऐसी आज्ञा

---

१ ईश्वरीप्रसाद—मिडिवल इंडिया-पृ० ४४५

२ एपि० कर० भा० ११ पृ० ७१

३ सन् १९२६ नं० ३४०

४ नेलसन—मदुरा भा० ३ पृ० १४९-५१

जारी की गई कि केन्द्रीय सरकार से बिना पूछे कोई नायक किसी प्रकार नया कर नहीं लगा सकता। इन शासकों को कई बातों का ध्यान रखना पड़ता था। प्रथम तो विजयनगर नरेश धार्मिक वातावरण को देखकर उस स्थान विशेष को कर से मुक्त कर देते थे धार्मिक जनता पर कर लगाना अनुचित समझा जाता था। राजनैतिक अवस्था के अनुसार भी ऐसा करना पड़ता था। जो देश नये जीते जाते थे उन पर कर का लगाना समुचित न समझ उन्हें कर से मुक्त कर दिया जाता था। आर्थिक स्थिति को देखते हुए कर न वसूल करने की आज्ञा निकाल दी जाती थी, अथवा कभी न कभी सामाजिक विचारों को ध्यान में रखकर ऐसी आज्ञा देनी पड़ती थी। जनता को राजा अप्रसन्न नहीं करना चाहता था। वह प्रजा पर सदा दया का भाव रखता था। कभी-कभी जीत से लौटने पर राजा खुशी मे कर माफ कर दिया करता था। विजयनगर के शासक साधारणतया प्रसन्न होकर भी कर माफ कर दिया करते थे जिसके अनेक उदाहरण भरे पडे हैं। कृष्णदेवराय ने अपने समय में विवाह कर को माफ कर दिया था तभी से यह कर सदा के लिए बंद हो गया[1]। राम राय ने मगल नामक नाई से प्रसन्न होकर, उस के आग्रह से, नाई जाति को कर से मुक्तकर दिया था[2]। देवराय द्वितीय ने भी ऐसे करों को हटा दिया था। यहाँ तक कि सदाशिव ने सारे राज्य में यह घोषणा कर दी कि नाई तथा वैद्य लोगो से किसी प्रकार का कर न लिया जाय[3]। मदारियों तथा नट लोगों को कर नही देना पड़ता था[4]। जो ब्राह्मण विद्वान् होता था उसे

---

१ मद्रास इपि० रिपोर्ट १९०९ पृ० १०२

२ एपि० कर० भा० ६। बटरवर्थ—भा० २ पृ० ६६४ एपि० रि० १९१८ पृ० १६३

३ रंगा चार्य—भा० १ पृ० ६३८। आ० स० रि० १९०८-९ पृ० १९८

४ एपि० कर० भा० ११

अन्य कर न देना पडता था परन्तु भूमि-कर उसे अवश्य देना पडता जो मदिर के कार्य के लिए दे दिया जाता था [1]।

विजयनगर राज्य मे दान की बहुत बडी महत्ता समझी जाती थी। विशाल मदिरों का निर्माण कर उनका दैनिक सभी व्यय राज-कोश से दिया जाता था। परन्तु यह व्यय प्रत्येक मास मे नही देना पड़ता था। उस व्यय को स्थानीय सस्थाओं के अग्रहार-दान तथा भूमि-कर से दिया जाता था। कृष्णदेवराय विजय से लौटकर विजित स्थान से प्राप्त भूमि-कर को मदिर के व्यय के लिए दे दिया करता था। पूर्वी किनारे की अधिक भूमि का कर शिव तथा विष्णु मदिर मे व्यय किया जाता था [2]। मदिरों में दीप जलाने के लिए घृत की आवश्यकता थी, अतएव गायो की दशा सुधारने तथा भेडों की उन्नति के लिए भेडिहारों तथा ग्वालो को कर से मुक्त कर दिया गया था [3]। इन सब के अतिरिक्त विजयनगर के खजाने से कभी-कभी बहमनी के मुसलमान शासको को युद्ध का हर्जाना देना पड़ता था। जब कभी हिन्दू-शासक परास्त हो जाते तो उनको सधि मे असख्य द्रव्य देना पडता था [4]। सन् १३६८ ई० में जब रायचूर के द्वाब मे युद्ध हुआ तो हरिहर द्वितीय ने सेनापति फीरुज खा को चालीस लाख रुपया घूस देकर वापस लौटा दिया और इस प्रकार लडाई शांत हो गई [5]। इस प्रकार विजयनगर का असख्य धन नाना प्रकार से व्यय होता था। समय-समय पर व्यय की अधिकता से अनियमित कर भी लगाया जाता था।

---

१ एपि० इंडिका भा० ७ पृ० १७-२२; मैसूर आर्कि० रिपो० १९१८ पृ० ४१

२ आ० स० रि० १९०८-९ पृ० १८१

३ एपि कर० भा० १० पृ० १५२। एपि० इंडि० भा० ६ पृ० ३३१

४ कैम्ब्रिज हिस्ट्री भा० ३ पृ० ३९२

५ वही-पृ० ३८९

विजयनगर के शासक केवल राजधानी में बैठकर ही सतुष्ट न हो जाते थे, पर जाडे के दिनों वे राज्य में यात्रा किया करते थे। स्थानीय सस्थाओं के द्वारा वे जनता के सदा सम्पर्क मे रहते थे। किसी व्यक्ति को राजा तक पहुचने में कठिनाई न होती थी। इस दौडे मे शासक प्रजा पर कर्मचारियो द्वारा किये गए अत्याचार पर विचार करता था। सदाशिव राय जब दौरे मे निकलता तो न्याय के कार्य को भी देखा करता था[१]। यदि किसी कर्मचारी ने अन्याय किया तो उसे प्राण-दण्ड मिलता था[२]। जब कभी किसी स्थान मे जनता मे विद्रोह फैलता तो शासक स्वय वहा जाकर प्रजा की कठिनाई पर विचार करता तथा सारे कर माफ कर दिया करता था[३]। धार्मिक विचार को ध्यान में रखकर विजयनगर शासक सदा यात्रा किया करते थे। दान-पत्रो से इस बात की पुष्टि होती है। राजा अनेक बार राज्य मे भ्रमण किया करता था ताकि प्रजा में शांति बनी रहे।

राजकीय-निरीक्षण

विजयनगर राज्य अपनी विशिष्ठ वाह्य-नीति के लिए इतिहास में प्रसिद्ध है। विजयनगर राज्य में सिंहासन के लिए भी झगडे होते रहे। एक शासक को मृत्यु के पश्चात् दूसरे व्यक्ति को अधिकार मिल जाता था। बस, 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की कहावत चरितार्थ होती थी। बुक्क द्वितीय के बाद झगडे का आरम्भ हुआ। सदाशिव के समय में भी वही बात हुई। मदुरा के नायक, तिनवेली के पाड्य लोगों ने तथा पुर्तगाली लोगों ने गृह युद्ध की आग बढाई थी परन्तु रामराय ने उसे शान्त कर दिया[४]। इन सब बातों को ध्यान मे रख कर, विजयनगर के शासकगण अपने-अपने राज्यकाल मे राजकुमार

वाह्य-नीति

---

१ नं० २ आफ १६२३

२ सालातोर—हिस्ट्री भा० १ पृ० ३८३

३ नं० ३४० आफ १२६, नं० २११ आफ १६१२,

४ एस के ऐयगर—नायक पृ० १६ भूमिका

को प्रात का अधिपति नियुक्त करते थे [1] । दूसरी बात यह थी कि शासकगण मिलकर शासन करते थे । सगम के पाचों पुत्रों ने मिलकर राजकार्य सँभाला । देवराय द्वितीय ने विजय के साथ मिलकर शासन का कार्य किया । कृष्णदेवराय ने भी कुछ समय के लिए अपने पुत्र तिरुमल को राज्य-प्रबंध में सम्मिलित किया था । प्राचीन-भारतीय-पद्धति का पालन करते हुए, वृद्धावस्था में, विजयनगर के शासक राज्य सिंहासन अपने उत्तराधिकारी के लिए छोड़ दिया करते थे । तिरुमल का नाम 'गीत-गोविन्द' में उल्लिखित है । इस राजा ने वानप्रस्थ, अवस्था में सिंहासन छोड़ दिया था[2] । तजोर के अच्युत नायक ने भी अपने पुत्र रघुनाथ नायक के लिए ऐसा ही किया[3] । अपने सम्बन्धियों को प्रसन्न करने के लिए विजयनगर शासकों ने पर्याप्त प्रयत्न किया और राज्य मे ऊँचे पद देकर उन्हे सन्तुष्ट किया । जैसा ऊपर बतलाया गया है कि राजा का राज्य में भ्रमण का भी प्रभाव होता था । प्रजा की बात स्वय सुनने से शासक की शुभ-चिन्ता का प्रमाण मिलता था और प्रजा सतुष्ट हो जाती थी । यही कारण है कि होयसल नरेशों के हट जाने तथा सगम के द्वारा राज्य-प्राप्ति के समय किसी प्रकार का विद्रोह नहीं हुआ । शाति-पूर्वक राज्य-परिवर्तन हो गया, क्योंकि प्रजा को विश्वास था कि इस परिवर्तन से लाभ ही होगा ।

हिन्दू-मुस्लिम मेल

राजनैतिक चाल के कारण ही विजयनगर शासकों ने स्वयं वैष्णव होते हुए भी मुसलमानों से सदा प्रेम का बर्ताव रक्खा । ईरानी दूत अब्दुर-रज्जाक ने लिखा है कि राजा की ओर से उसे भोजन (अन्न तथा मास) की सामग्री मिला करती

---

१ शु नी-२।२।२६, एपि-कर० भा० ५ पृ० २३२
कृष्णस्वामी-सोर्सेज आफ विजयनगर; वसु—चरितम् पृ० २१७

२ आ० सर्वे० रि० १६११-१२ पृ० १८१

३ हेराल–आरविडु डाइनेस्टी पृ० ३११

थी[१]। राजा प्रत्येक दूसरे दिन उसे बुलाता तथा कई एक प्रश्न पूछा करता था। देवराय द्वितीय, कृष्णदेवराय तथा रामराय के समय मे मुसलमानों के साथ बहुत अच्छा बर्ताव किया जाता था। बिदाई के समय दूतों को रेशमी वस्त्र भी मिलते थे[२]। पुर्तगाली दूत को भी जरी के काम किये हुए सामान दिये गए थे। देवराय द्वितीय के समय में भयंकर झगड़ा हो जाने से मुसलमान शासक को प्रायः तीस लाख रुपया हर्जाना मे देना पड़ा। फिरिस्ता का कहना है कि विभिन्न जातियों मे वैवाहिक-सम्बन्ध भी विजयनगर मे होते थे[३]। इसके कथनानुसार यह भी प्रकट होता है कि मुसलमान राजा विजयनगर के शासकों की शरण मे आते तथा सहायता मांगा करते थे[४]। मुसलमान धनुषधारी तथा तुर्की घुड़सवारों को हिन्दू नरेशों द्वारा अपनी सेना मे भरती किया जाना इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है कि दोनों जातियों में घनिष्ठ प्रेम था[५]। अली आदिलशाह ने भी हिन्दुओं को अपनी सेना मे रखा था। विजयनगर मे अम्बर खॉ सेनापति के पद पर कार्य करता था और उसको पुरस्कार में एक ग्राम दिया गया था[६]। यही नही रामराय ने भी अनेक मुसलमान सेनापति नियुक्त किये थे[७]। मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए विजयनगर के राजाओ ने उनकी संस्थाओं को दान दिया। नरसिंह ने एक दरगाह के लिए एक गांव दान मे दिया था[८]। राजा अपने कोश से मसजिदे बनवाने के लिए रुपया दिया

---

१ इलियट—हिस्ट्री भा ४ पृ, ११३।

२ सेवेल—वही पृ ३५२।

३ ब्रिग—दि राइज आफ मुसलमान्स भा. २ पृ ३६३।

४ ब्रिग—फिरिस्ता भा. ३ पृ १०३।

५ एपि. कर. भा ३ भूमिका पृ २३।

६ सेवेल—ए फा इम्पा. पृ १८६।

७ एपि. कर भा ८ पृ. १६२।

८ एपि रिपोर्ट १६११ पृ ८८।

करता[1]। उनको शहर मे निवास करने के लिए एक पृथक् स्थान दे दिया गया था। मुसलमानों ने वहा मसजिदे बनाई। विजयनगर के तेलुगु कवि गगाधर मन्त्री ने अपनी पुस्तक गोलकुण्डा के नवाब इब्राहिम मलिक को समपूर्ण की थी[2]। ये सारी बाते इस बात को प्रमाणित करती हैं कि विजयनगर-शासनकाल मे हिन्दू-मुसलमानों में मेल था और दोनों शाति-पूर्वक जीवन बिताया करते थे। शासक-गण मेल पैदा करने के लिए अनेक उपायो को काम मे लाते थे।

प्रांतीय शासन

विजयनगर साम्राज्य को प्रबध की सुगमता के लिए कई प्रातों में विभक्त किया गया था। विदेशी यात्रियों ने विजयनगर के विस्तार का वर्णन भिन्न-भिन्न प्रकार से किया है। अब्दुर रज्जाक का कथन है कि विजयनगर-राज्य लका से गुलबर्गा तक फैला हुआ था[3]। कृष्णदेव राय समस्त दक्षिणी-भारत पर शासन करता था[4]। अच्युत राय पश्चिमी तथा पूर्वी समुद्र तक शासन करता था[5]। मनुची का कहना है कि विजयनगर राज्य नर्मदा नदी के दक्षिण मे विस्तृत था। राज्य का वास्तविक विस्तार जो कुछ भी हो परन्तु यह निर्विवाद है कि विजयनगर साम्राज्य प्रारम्भ ही से प्रान्तों मे विभक्त था। कृष्णदेव राय के समय मे प्रान्तों की विशालता के कारण उन्हें राज्य का नाम दिया गया था[6]। न्यूनिज ने बतलाया है कि समस्त राज्य दो सौ भागों में विभक्त था[7]। परन्तु इस बात पर विश्वास नही किया जा सकता। प्रान्तों की संख्या न्यून थी। उनके अन्तर्गत 'नाडू' की सख्या

---

१ न. ५३८ आफ १६१७। २ आ स. रि. १६०८-६ पृ. १६८।

३ इलियट—हिस्ट्री भा० ४ पृ० १०५

४ सेवेल—ए फार० इम्पा० पृ० १७८

५ वही पृ० ३८४

६ एपि० कर० भा० ८ पृ० १२

७ सेवेल—वही पृ० ३८६.

अधिक हो सकती है जिसका उल्लेख न्यूनिज ने किया है। इन राज्यों में उदयगिरि राज्य, पेनुगोंडा राज्य, अरग राज्य, मूलवापी राज्य, मले राज्य, तुलु राज्य आदि के नाम लेखो मे मिलते हैं। चिक्कराय-वशावली में भी इन राज्यों का नाम मिलता है। जैसा बतलाया गया है कि इन प्रातों के अधिपति राजकुमार हुआ करते थे या राजा के सम्बन्धियों को नायक (प्रात का गवर्नर) का पद दिया जाता था। राजा कुछ अन्य व्यक्तियों को भी नायक का पद दिया करता था[1]। ये नायक अपने प्रान्तीय शासन के कार्य में परम स्वतत्र होते थे[2]। इनको प्रातों में, विजयनगर के शासक के समान ही अधिकार प्राप्त थे। केन्द्रीय-सरकार को नायक भूमि कर का तीसरा भाग दिया करते थे और दो तिहाई भाग अपने प्रात के लिए सुरक्षित रखते थे[3]। नायक के आधीन अमर-नायक या पट्ट-नायक नियुक्त किये जाते जो 'नाडू' या जिले का प्रबध करने थे। उनको भी भूमि दी जाती थी ताकि वे अपना कार्य सुचारु रूप से कर सकें[4] और अर्थोपार्जन की चिन्ता में न फसे रहें।

नायक अपने प्रात के भीतर सब कार्य सम्पन्न करते थे। केन्द्रीय-सरकार के लिए उनको एक सेना रखनी पड़ती थी जो युद्ध के समय सम्राट् की सहायता करती थी। न्याय का कार्य करने और कर वसूल करने के लिए उनके पास अन्य कई कर्मचारी होते थे। नायक स्वय दान दिया करता था, मन्दिर निर्माण कराता था तथा कृषि की उन्नति के लिए नहरे खुदवाता था। वह स्थानीय सस्थाओं के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करता था। विजयनगर के शासक वर्ष मे एक बार दरबार किया करते थे, उसी समय

---

१ आर्के० सर्वे० रिपोर्ट० १६०७-८ पृ० २३७

२ ईश्वरीप्रसाद—मिडिवल इडिया पृ० ४४२

३ वही ,, ,,

४ मैसूर आर्के० रिपोर्ट १६१३ पृ० ४८, एपि० कर० भा० १०, पृ० १६४, मैसर—लेख पृ० ३८

नायक लोगो के भूमि कर का हिसाब होता था तथा अन्य आवश्यक कार्यों पर उनकी सलाह ली जाती थी। जब राजा यात्रा करने जाता था, उस समय भी नायकों की सारी कठिनाइयों को वह सुना करता था। एक नायक की शासन-अवधि प्रायः पाच वर्ष की होती थी[१]। लेखों से ज्ञात होता है कि नायक का पद वशपरम्परागत होता था[२]। नायकों को 'मण्डलेश्वर' की भी पदवी दी जाती थी। सगम के पुत्र पहले 'मण्डलेश्वर' का कार्य करते थे। रामराय भी पहले अरग राज्य का नायक था[३]। सदाशिव केलेड़ीगल का नायक बनाया गया था। तालिकोट के युद्ध के पश्चात् नायक स्वाधीन होने लगे और वे राजा (केन्द्रीय सरकार) की पर्वाह न कर 'राजाधिराज-राजपरमेश्वरवीरप्रतापश्री देवमहाराज' की महान् पदवी धारण करने लगे[४]। इससे प्रतीत होता है कि तालिकोट के बाद नायकों ने स्वतंत्रता की घोषणा कर दी और वे प्रातों के स्वाधीन शासक-कर्ता बन गए।

ग्राम-शासन

प्रानीय नायकों को अधिकार था कि 'नाडू' तथा ग्राम के सुप्रबंध के लिए अधिकारी व्यक्ति को नियुक्त करे। नाडू के अधिकारी का कार्य केवल निरीक्षण का होता था[५]। उसका कोई विशेष कार्य न था। वह समस्त ग्रामों के कार्य का निरीक्षण किया करता था। ग्राम के प्रबन्ध के लिए एक अधिपति नियुक्त किया जाता था जिसका पद वशक्रमागत होता था[६]। प्रात का गवर्नर कार्यकर्ता को नियुक्त करता था[७]। ग्राम की व्यवस्था के लिए एक सभा होती थी जिसके सभासदों की सख्या निश्चित न थी। उस सभा की सहायता से गाव के सभी कार्य सम्पन्न किये जाते थे। जमीन के झगडे को तय करना, दण्ड देना, गाव

---

१ एपि कर. भा. ८ पृ. १२। २ वही भा. ७ पृ २७।
३ वही भा ८ पृ १८४। ४ वही भा. ८ पृ. १२६।
५ ए इंडि. भा १४ पृ ३१३। ६ एपि. कर. भा. १२ पृ. ६२।
७ वही भा ६ पृ. ४३।

के कर्मचारियों को नियुक्त करना तथा रक्षा का प्रबन्ध आदि कार्य सभा किया करती थी। जैसा पहले बतलाया गया है कि लगातार तीन वर्ष तक भूमि-कर न देने वाले आदमी की भूमि राजकीय सम्पत्ति हो जाती थी। राजा उस भूमि को ग्राम-सभा को दे देता था। सभा उसे नीलाम किया करती या बेंच देती थी। यह आय गाव के प्रबन्ध के लिए व्यय की जाती थी। जुर्माने के रूप में मिला रुपया मन्दिर के लिए दे दिया जाता था। गाव के अधिकारी कभी-कभी दूसरे व्यक्ति को भी रुपया उधार दिया करते थे जिससे गाव मे तालाब, कुआँ अथवा नहर तैयार की जाती थी। गाव कई प्रकार के होते थे। कुछ गाव तो मन्दिर की पूजा के निमित्त दे दिये जाते थे, जिनको 'देवदेय' ग्राम कहते थे। कुछ गाव ब्राह्मणों को दिया जाता था, जो 'अग्रहार' के नाम से पुकारा जाता था तथा कुछ ग्राम सेनापति को वेतन के रूप में दे दिया जाता था। इन ग्रामों का प्रबन्ध किसी व्यक्ति या समिति द्वारा किया जाता था। 'देवदेय' या 'अग्रहार' ग्राम में सब प्रकार के कर वसूल करने का अधिकार उसके स्वामी को दिया जाता था, परन्तु राजकीय भूमि-कर परोपकार के कार्य में व्यय किया जाता था। उस ग्राम में लगान बढ़ाने या 'विष्टी' लगाने का अधिकार ग्राम-सभा को न होता था[1]। उस ग्राम के निवासी पुलिस कर से भी मुक्त कर दिये जाते थे[2]।

ग्राम की जमीन की सीमा निर्धारित करने का अच्छा प्रबन्ध था। भूमि या खेतों के किनारे पर पेड़ लगा दिये जाते थे। सीमा पर वामन की मूर्त्ति रख दी जाती थी[3] या प्रस्तर पर सूर्य तथा चन्द्रमा की आकृति बना दी जाती थी[4]। कृष्णदेव राय के समय में गरुड-मूर्ति सीमा पर स्थापित की जाती थी[5]।

---

१ एपि० रि० १९१५। २ मैसूर आर्को० रि० १९२१ पृ० ७४
३ नेलोर का लेख भा० २ पृ० ९५७; भा० १ पृ० ११७
४ वही पृ० ५। ५ ज० बं० एशि० सो० भा० १२ पृ० ३९६

गॉव का प्रबन्ध करने के लिए मुख्यतः तीन कार्यकर्ता नियुक्त किये जाते थे--(१) लेखक (२) पुलिस (३) आयगर। पुलिस को 'कायस' तथा लेखक को 'सभोग' का नाम दिया गया था[1] । इनके अतिरिक्त ग्राम मे ज्योतिषी, गौड, पुरोहित, बेगार, आदि लोगो की भी सहायता ली जाती थी।

गाव की सभा का अन्य कार्यों के अतिरिक्त भूमि-रक्षा का भी महत्त्वपूर्ण काम था। शासक जमीन को दान मे दिया करता था। वह भूमि ग्राम-सभा की देख-रेख मे रहती थी। कर वसूल करके उसको उचित प्रकार से व्यय करने का कार्य ग्राम-सभा करती थी। जब भूमि दान की जाती तो उस का पूरा ब्यौरा ग्राम के रजिस्टर मे लिखा जाता था[2]। उस भूमि का पूर्व इतिहास, भूमि की प्रकृति, जोतने वाले कृषक का नाम, और भूमि का माप आदि लिखा जाता था। तत्पश्चात् शासक के प्रतिनिधि, गॉव के मुखिया तथा गवाहो के सामने वह जमीन नीलाम की जाती या बेची जाती थी। भूमि को बेचने के बाद खरीदने वाले का नाम, गवाहो के हस्ताक्षर, लगान की दर आदि बातो को लिखकर प्रात के नायक के पास स्वीकारार्थ भेज दिया जाता था[3] । यदि किसी मदिर के लिए भूमि दी जाती तो नायक के कार्यालय में उसका लेखा रहता था। ग्राम-सभा को जमीन इस शर्त पर दी जाती थी कि उसका दसवॉ भाग राजा को दिया जायेगा और शेष कर मदिर तथा तालाब के निर्माण मे व्यय किया जायेगा[4]। ग्राम-सस्था सब बातो का वार्षिक विवरण शासक के पास भेजा करती थी।

विजयनगर की शासन-प्रणाली का वर्णन सामतो के विवरण के बिना

---

१ एपि० रिपो० १६१६ पृ० १४३। वही १६१४ पृ० ८६

२ नं० ५४४ आफ १६११

३ मैसूर आर्के० रि० १६११ पृ० ६०

४ एपि० कर० भा० ५ भूमिका पृ० ३

पूरा नही कहा जा सकता। ये नायक साम्राज्य की उन्नत दशा में राजभक्त थे परन्तु विजयनगर के शक्ति हीन होते ही इन नायकों ने स्वतत्रता की घोषणा कर दी। इन में तजौर, तिनेवर्ली, मदुरा तथा इकेरी के नायक-गण प्रधान थे। सर्व प्रथम नायक शासक के द्वारा नियुक्त किये जाते थे। परन्तु समयान्तर में उनका पद वशानुगत हो गया। उनके विद्रोही होने पर शासक दण्ड दिया करता था। रामराय ने अपने पुत्र विट्ठल को भेज कर विश्वनाथ नायक की सहायता से ट्रावनकोर राजा को परास्त करने का प्रयत्न किया, परन्तु सधि हो गई। मदुरा के नायकों ने पुर्तगाली लोगों से सन्धि कर के मित्रता स्थापित कर ली। नायकों ने अपना सिक्का चलाया। तात्पर्य यह है कि गृह तथा वाह्य नीति में नायक परम स्वतत्र हो गए थे और उन्होंने विजयनगर से सम्बन्ध तोड़ दिया था।

सामंत

—o—

: ७ :

साहित्य का विकास

किसी देश के साहित्य की उन्नति उस देश के निवासियो की विचार-धारा और उनके जीवन के विकास की द्योतिका होती है। साहित्य जीवन का दर्पण है, अतः किसी देश या राष्ट्र की सस्कृति उसके साहित्य से जानी जाती है। विजयनगर-कालीन साहित्य इतना विशाल तथा विभिन्न प्रकार का है कि उसका विवेचन करना दक्षिण-भारत के सम्पूर्ण साहित्य और धार्मिक जीवन का इतिहास लिखना है। भारतवर्ष मे धर्म तथा साहित्य का इतना घनिष्ट सम्पर्क रहा है, जिसकी समता ससार के इतिहास मे नही मिल सकती। एक के इतिहास को समझने के लिए दूसरे का वृत्तात जानना आवश्यक हो जाता है। विजयनगर काल मे शैवो, वैष्णवों तथा जैनियों ने अपने अपने धर्म के प्रचार के लिए ग्रथ लिखे। इन्होंने इन ग्रन्थों मे अपने धर्म की पुष्टि की और विरोधी मत का खण्डन किया। इसके अतिरिक्त राजा, मंत्री तथा प्रजा ने भी साहित्य के भण्डार को बढाया। राजा शासक होने के अतिरिक्त लेखक भी थे। राजाओ ने विद्वानों की सहायता की और दान द्वारा उनको प्रोत्साहन दिया। ये राजा कवियों के आश्रय-दाता ही नही थे, बल्कि स्वयं कवि और लेखक थे। इस प्रकार साहित्य की उन्नति इस काल में पूर्ण रूप से हुई।

विजयनगर कालीन साहित्य को जानने के लिए तत्कालीन समस्त साहित्य—कन्नड, तेलुगु और तामिल की वृद्धि का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। उस समय दक्षिण मे कन्नड, तेलुगु तथा संस्कृत-भाषा में ग्रथ लिखे गये। इस प्रकार इन तीनो भाषाओं के साहित्य की प्रचुर वृद्धि इस समय मे हुई।

पूरा नहीं कहा जा सकता। ये नायक साम्राज्य की उन्नत दशा में राजभक्त थे परन्तु विजयनगर के शक्ति हीन होते ही इन नायकों ने स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। इन में तजौर, तिनेवली, मदुरा तथा इकेरी के नायक-गण प्रधान थे। सर्व प्रथम नायक शासक के द्वारा नियुक्त किये जाते थे। परन्तु समयान्तर में उनका पद वंशानुगत हो गया। उनके विद्रोही होने पर शासक दण्ड दिया करता था। रामराय ने अपने पुत्र विट्ठल को भेज कर विश्वनाथ नायक की सहायता से ट्रावनकोर राजा को परास्त करने का प्रयत्न किया, परन्तु संधि हो गई। मदुरा के नायकों ने पुर्तगाली लोगों से सन्धि कर के मित्रता स्थापित कर ली। नायकों ने अपना सिक्का चलाया। तात्पर्य यह है कि गृह तथा बाह्य नीति में नायक परम स्वतन्त्र हो गए थे और उन्होंने विजयनगर से सम्बन्ध तोड़ दिया था।

सामंत

———o———

: ७ :

साहित्य का विकास

किसी देश के साहित्य की उन्नति उस देश के निवासियो की विचार-धारा और उनके जीवन के विकास की द्योतिका होती है। साहित्य जीवन का दर्पण है, अतः किसी देश या राष्ट्र की सस्कृति उसके साहित्य से जानी जाती है। विजयनगर-कालीन साहित्य इतना विशाल तथा विभिन्न प्रकार का है कि उसका विवेचन करना दक्षिण-भारत के सम्पूर्ण साहित्य और धार्मिक जीवन का इतिहास लिखना है। भारतवर्ष मे धर्म तथा साहित्य का इतना घनिष्ट सम्पर्क रहा है, जिसकी समता ससार के इतिहास मे नही मिल सकती। एक के इतिहास को समझने के लिए दूसरे का वृत्तात जानना आवश्यक हो जाता है। विजयनगर काल मे शैवो, वैष्णवों तथा जैनियों ने अपने अपने धर्म के प्रचार के लिए ग्रथ लिखे। इन्होंने इन ग्रन्थों मे अपने धर्म की पुष्टि की और विरोधी मत का खण्डन किया। इसके अतिरिक्त राजा, मंत्री तथा प्रजा ने भी साहित्य के भण्डार को बढाया। राजा शासक होने के अतिरिक्त लेखक भी थे। राजाओ ने विद्वानो की सहायता की और दान द्वारा उनको प्रोत्साहन दिया। ये राजा कवियों के आश्रय-दाता ही नही थे, बल्कि स्वयं कवि और लेखक थे। इस प्रकार साहित्य की उन्नति इस काल में पूर्ण रूप से हुई।

विजयनगर कालीन साहित्य को जानने के लिए तत्कालीन समस्त साहित्य—कन्नड, तेलुगु और तामिल की वृद्धि का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। उस समय दक्षिण मे कन्नड, तेलुगु तथा संस्कृत-भाषा मे ग्रथ लिखे गये। इस प्रकार इन तीनो भाषाओं के साहित्य की प्रचुर वृद्धि इस समय मे हुई।

विजयनगर से पूर्व होयसल-वश के राजा वीर बल्लाल तृतीय के समय मे कन्नड़-साहित्य का विकास आरम्भ हो गया था। राजा ने कन्नड़ कवियों को आश्रय दिया। बल्लाल के समय में भरतस्वामी नामक विद्वान् वर्तमान थे जिन्होंने 'सामवेद-सहिता' पर भाष्य लिखा। विद्याचक्रवर्ती नामक साहित्य के मर्मज्ञ ने 'काव्य-प्रकाश' पर टीका लिखी तथा 'रुक्मिणी-कल्याण' नामक काव्य-ग्रथ की रचना की। इस राजा के राज्य में कन्नड-भाषा की विशेष उन्नति हुई। धर्म प्रचार के लिए जैन कवियों ने देशी भाषा कन्नड़ को अपनाया। इन लोगों ने सस्कृत छदों का समावेश देशी छदों के स्थान पर किया। धर्म के प्रचार की बुद्धि से जैन, शैव तथा ब्राह्मण धर्मावलम्बियों ने कन्नड भाषा को खूब अपनाया। पम्पा, बाहुबली आदि जैन कवियों को इस भाषा मे अधिक सरलता मालूम होती थी। अतएव इन्होंने धर्मनाथ (पन्द्रहवे तीर्थंकर) की जीवनी चम्पू-शैली में लिखी। नेमिनाथ का चरित प्रायः बहुतों ने लिखा। मधुर एक प्रसिद्ध जैन कवि था जो हरिहर के मत्री के दरबार मे रहता था। विजयनगर में रत्नाकर सब से बडा जैन कवि हो गया है। उसने दस हजार छद कन्नड़ भाषा में लिखे। उनमे आदिनाथ के पुत्र भरत का वर्णन किया गया है तथा ससार की अनेक बातों का वर्णन करते हुए विशेषतया योग का विवरण प्रस्तुत किया गया है। जनता मे जैन-धर्म में विश्वास पैदा करने के लिए तरह-तरह की कहानियाँ लिखी गईं। सन् १४२४ के समीप भास्कर ने 'जीवनधर-चरित्र' नामक ग्रथ लिखा। कल्याण-कीर्ति का 'ज्ञान-चन्द्राभ्युदयम्' नामक पुस्तक प्रसिद्ध है। विद्यानन्द तथा यशकीर्ति आदि जैन पडितों ने कन्नड़ भाषा मे अनेक ग्रथो पर टिप्पणी लिखी।

कन्नड़-साहित्य की उन्नति

जैनियों की तरह वीर-शैवों ने भी कन्नड को अपनाया। सन् १३३६ ई० से लेकर १५६५ ई० के लगभग दो शैव केन्द्रों मे साहित्यिक कार्य होता रहा। शिव-पुराण से कथानक लेकर कन्नड मे कहानियाँ लिखी गईं। वीर-भद्र तथा मल्लिकार्जुन के लिखे ग्रथ उल्लेखनीय हैं, जिनमें

भगवान् शिव की कृपा, स्वर्ग तथा नरक की बातों का वर्णन किया गया है। हरिहर ने 'लिङ्ग-पुराण' से शैव साधुओं का जीवन-चरित जनता के लिए देशी भाषा मे लिखा था । चामरस लिखित 'प्रभु-लिङ्ग-लीला' नामक पुस्तक वीर-शैवों का प्रसिद्ध ग्रथ माना जाता है। विजयनगर राज्य से सम्बन्धित शैवो मे देवराज, रामेन्द्र तथा चन्द्र ने देशी भाषा मे कवितायें लिखी। कई एक खण्ड-काव्य कन्नड़ भाषा मे लिखे पाए जाते है। 'रामनाथ-विलास' तथा 'राजेन्द्र-विजय' नामक कन्नड़ भाषा के काव्य-ग्रथ प्रसिद्ध हैं। धर्म के प्रचारार्थ शैवों ने अनेक रचनाओ पर टिप्पणियाँ लिखी। जहा तक उनका वश चला पुराण-विज्ञान (Mythology) को भी उन्होंने अछूता न छोड़ा और उस विषय की पुस्तके भी कन्नड मे लिखी गई । वीर-शैवों ने नया तरीका निकाला। बासव का अनुकरण जनता ने खूब किया। प्राचीन चम्पू काव्य लिखने का ढग जाता रहा। जैनियों ने वैराग्य तथा शैवो ने भक्ति का खूब प्रचार किया। भक्तो ने तथा भ्रमण करने वाले भाटो ने कन्नड़ भाषा में गाना गाया और जनता मे जागर्ति पैदा की।

वैष्णव-साधुओ का हाथ कन्नड़ साहित्य की वृद्धि में कुछ कम न था। हिन्दू-धर्म के तीनो प्रधान ग्रथ-रामायण, महाभारत तथा भागवत के विषय को लेकर कन्नड़ मे वैष्णव साधुओ ने पुस्तको की रचना की। ये ग्रन्थ भावानुवाद के रूप मे जनता के सामने रखे गये । सुकुमार भारती ने महाभारत का अनुवाद कन्नड मे किया । कुमार वाल्मीकि ने रामायण लिखी। नारायण कवि ने भागवत का भावानुवाद किया। सदानन्द योगी ने काव्य लिखा। इसके अतिरिक्त वैष्णवों ने कहानियाँ भी लिखी। भगवन्-नाम-कीर्तन के अनेक पद्य कन्नड़ मे पाये जाते हैं। श्रीपाद, पुरन्दर तथा कनकदास प्रसिद्ध कीर्तन करने वाले हो गए हैं। वर्तमान समय मे भी उनके गीत कर्नाटक मे रेडियो पर या ग्रामोफोन द्वारा गाए जाते हैं। इन लोगो ने सगीत मे एक नई शैली निकाली जो 'कर्नाटक शैली' के नाम से पुकारी जाती है।

धार्मिक-साहित्य के अतिरिक्त लौकिक-ज्ञान की भी पुस्तकें कन्नड़ मे पाई जाती हैं। उस समय अन्य व्यक्तियों ने अलकार, ज्योतिष, वैद्यक आदि विषयो पर कन्नड़ में पुस्तकें लिखीं। हरिहर के शासन-काल मे मंगराज ने अपनी पुस्तक में विष, उसका प्रभाव तथा विष-नाशक पदार्थों का वर्णन किया है। दण्डी रचित "काव्यादर्श" का अनुवाद माधव ने 'माधवालकार' नामक ग्रथ में किया है। इस प्रकार विजयनगर-काल मे कन्नड़ साहित्य की वृद्धि के लिए जैनियों, शैवों तथा वैष्णवों ने प्रधान रूप से हाथ बटाया।

यद्यपि जनता ने देशी भाषा कन्नड़ को अपनाया तथा सारे धार्मिक नेताओं ने धर्म-प्रचार इसी भाषा द्वारा किया तो भी तेलुगु-साहित्य की श्री-वृद्धि होती रही। इस साहित्य की पर्याप्त उन्नति विजयनगर काल में हुई। सर्व प्रथम सगम-वंश वालों ने कन्नड-भाषा पर अधिक जोर दिया, इसका भण्डार भरा गया परन्तु विजयनगर-शासक तेलुगु-साहित्य की ओर से उदासीन न थे। बुक्क ने तेलुगु कवियों को भूमि दान में दी। राजाश्रय पाकर इन लेखकों तथा कवियों ने खूब परिश्रम से काम किया। राजा के अधीनस्थ नायकों ने भी कवियों को आश्रय दिया और तेलुगु-साहित्य को अपनाया। आध्र-जनता इन कवियों से खूब प्रोत्साहित हुई। विजयनगर के प्रत्येक राजवंश में तेलुगु कवियों का प्रचुर सम्मान मिलता रहा। सोम नामक कवि ने 'उत्तर-हरिवंश' नामक पुस्तक लिखी। बुक्क ने प्रसन्न होकर इस कवि को एक गाव 'अग्रहार' में दिया था। इस कवि की प्रशसा निम्न-प्रकार से लेखों में पाई जाती है[1]—

तेलुगु-साहित्य

याजुषाणां वरेण्याय सक्लागमवेदिने,
अष्टादशपुराणानामविज्ञातार्थवेदिने ।
अष्टभाषाकवित्वश्रीवाणीविजित्संपदे,
सोमाय नाचना बोधे सोमायमिततेजसे ॥

---

१ एपि. कर. भा. १० ।

चौदहवी सदी का सब से बड़ा तेलुगु कवि नाचना सोम माना जाता है। इसलिए इसे सर्वज्ञ कहा गया है।

देवराय प्रथम के समय में 'विक्रमाङ्क-चरित' नामक ग्रथ तेलुगु-भाषा मे लिखा गया। हरिहर द्वितीय के शासनकाल मे भी इस साहित्य की प्रचुर वृद्धि हुई। सगम-वंश के राजाओं के मुकाबिले मे सालुव-राजाओ ने तेलुगु-साहित्य को खूब बढ़ाया और इसका साहित्य उन्नति की चरम सीमा को पहुँच गया। इस सबध में नरसिंह सालुव का कार्य प्रशंसनीय था। राजा स्वय विद्वान् था और कवियों का समादर करता था। 'जैमिनी-भारत' तेलुगु-साहित्य का प्रसिद्ध ग्रथ है, जो नरसिह को समर्पित किया गया है। इस समय से विजयनगर राज्य मे इस साहित्य की उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही। अन्य सालुव तथा आरविदु राजाओं के राज्यकाल में इसका भण्डार खूब भरा गया। रामायण, महाभारत तथा पुराणों का अनुवाद किया गया। कृष्णदेव राय ने तेलुगु साहित्य की उन्नति मे अच्छी तरह से हाथ बटाया। राज्य की वृद्धि व सैन्य-शक्ति की प्रबलता के साथ-साथ साहित्य की भी वृद्धि हुई। नयन कवि से लेकर कृष्णदेवराय के राजकवि पेदन तक सभी ने पुराण, महाभारत तथा रामायण का अनुवाद किया, जिससे तेलुगु साहित्य भरपूर हो गया। राजा पेदन कवि को बहुत चाहता था और इसे अपने साथ बाहर यात्रा मे ले जाया करता था। कहा जाता है कि कलिङ्ग-विजय के समय भी यह राजकवि युद्ध-क्षेत्र मे वर्तमान था। यह राज-दरबार के आठ कवियों—'अष्ट-दिग्गज' का मुख्य व्यक्ति था। इन कवियों के नाम इस प्रकार मिलते हैं— (१) पेदन (२) तिम्मन (३) रामभद्र कवि (४) धूर्जटि (५) मल्लन (६) सूरण (७) रामराज भूषण (८) रामकृष्ण कवि।

मार्कण्डेय पुराण के कथानक को लेकर पेदन ने 'मनु-चरित' नामक काव्य-ग्रंथ की रचना की। इस कवि ने तेलुगु-साहित्य का ढाचा ही बदल दिया। यह अपने समय का सर्व श्रेष्ठ कवि था। अतः इसी के

दिखलाये मार्ग पर पीछे के कवियों ने चलना उचित समझा। इसी कारण से पेदन को 'आन्ध्र-कविता-पितामह' की पदवी दी गई थी।

राजा कृष्णदेव राय स्वय महान् विद्वान् था। अन्य भाषाओं के अतिरिक्त तेलुगु-भाषा मे भी इसने 'आमुक्त-माल्यम्' नामक विद्वतापूर्ण ग्रथ लिखा है। इस ग्रन्थ के चौथे सर्ग मे राजा ने राजनीति-शास्त्र का विशद् विवेचन किया है। इसमें राजनीति के अतिरिक्त कई विषयों पर प्रकाश डाला गया है। व्यापार तथा दक्षिणी-भारत के वैष्णव रीति-रिवाजो का भी वर्णन इसमें पाया जाता है। इसके मन्त्री गोप ने 'कृष्ण-अर्जुन सम्वाद' नामक-ग्रथ लिखा। सन् १५७० ई० मे 'वसु-चरितम्' को रामराज ने तैयार किया। सूरण कवि न श्लेषात्मक काव्य-ग्रन्थ लिखा जिससे राम-चरित तथा कृष्ण-चरित का वर्णन साथ ही साथ किया गया है। 'प्रभावती-प्रद्युम्न' उसका दूसरा ग्रथ है जो पुराण के एक कथानक को लेकर लिखा गया है। तेलुगु मे कन्नड तथा ईरानी भाषा के शब्द मिलते हैं जो विदेशी भाषाओं के प्रभाव को बतलाते हैं। विजयनगर राज्य की अवनति तालिकोट के युद्ध के बाद आरम्भ हो गई थी परन्तु शासकों ने साहित्य और सस्कृति की वृद्धि तथा रक्षा की ओर अपना ध्यान बनाए रखा। तेलुगु-साहित्य की वृद्धि सदा होती रही।

विजयनगर शासको के पश्चात् नायक लोगों के समय में भी इस साहित्य की उन्नति हुई और विशेषतः मदुरा तथा तजोर के नायक-शासकों ने इस की वृद्धि मे हाथ बटाया। यही कारण है कि तत्कालीन साहित्य मे नायकों का विशेष रूप से वर्णन मिलता है। नायक राजा सगीत के बहुत प्रेमी थे। अतएव उनकी सगीतात्मक तथा नाटकीय-प्रवृत्ति को देख कर कवियो ने तेलुगु-भाषा मे काव्य और नाटक लिखा। 'यक्ष-गान' नामक ग्रन्थ नायक-कालीन साहित्य का प्रमुख ग्रथ माना जाता है। तजौर के नायक रघुनाथ ने स्वय दो सौ नाटकों की रचना की। वे सब 'यक्ष-गान' की नकल पर लिखे गए थे। तेलुगु-साहित्य मे उस समय की श्रृगारिक भावनाये पायी जाती हैं। तत्कालीन साहित्य स्त्री-पुरुषों के प्रेम की

वार्त्ता से भरा पड़ा है। मदुरा मे गद्य-साहित्य की प्रधानता रही। विजय-नगर राजाओं तथा नायकों के साहित्य में केवल इतना अन्तर था कि विजयनगर कालीन साहित्य को तैयार करने वाले लेखक या कवि ब्राह्मण थे, लेकिन नायक-कालीन साहित्य-क्षेत्र में सभी जाति, वर्ग, और श्रेणी के लोग काम करते थे। स्त्री, पुरुष, धनी, गरीब तथा ब्राह्मणेतर लोगो ने भी साहित्य-सृष्टि मे सहयोग दिया और इसके भण्डार को भरा। इस प्रकार आन्ध्र प्रान्त मे तेलुगु-साहित्य की उन्नति हुई। राजा, नायक तथा प्रजा सभी विद्वान् और लेखक थे। सब को विद्या से प्रेम था। कवियों तथा लेखकों की प्रतिभा के प्रसाद से ही तेलुगु-साहित्य उस समय उन्नति की पराकाष्ठा को पहुच गया था।

यह कहा जा चुका है कि इस राज्य की स्थापना स्वधर्म और स्वराज्य को लेकर हुई थी, अतएव हिन्दू-सस्कृति के आधार-स्वरूप तथा धार्मिक-ग्रन्थों के भण्डार सस्कृत साहित्य को विजयनगर के राजाओं ने खूब अपनाया। इन्होने होयसल-वश की परिपाटी को चलाया। इस काल मे धर्म, दर्शन, आचार, रीति तथा, व्याकरण सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना पाई जाती है विजयनगर राजाओ ने देशी भाषा और तेलुगु-साहित्य के अतिरिक्त देववाणी को भी आश्रय दिया। इन राजाओ ने विद्वानो को आश्रय प्रदान कर सस्कृत-साहित्य की वृद्धि की। यह कहना कठिन है कि किस श्रेणी के लोगो ने इस साहित्य की उन्नति मे हाथ नही बटाया? जैन, वैष्णव, वीर-शैव, राजा तथा प्रजा सभी वर्णों तथा जाति के लोगों ने इसमे सहायता की। प्रत्येक वश के समय में सस्कृत की उन्नति होती रही। सगम-वश के राज-काल मे अनेक लेखक तथा कवियों ने सस्कृत ग्रन्था की रचना की,। सस्कृत साहित्य की अपनी बहुमुखी प्रतिभा से विभूषित करने वालों मे माधवाचार्य (विद्यारण्य) का नाम सर्व प्रथम लिया जाता है। इन्होंने व्यवहार-माधव, विवरण-प्रमेय-संग्रह, जीवनमुक्ति-विवेक, मनुस्मृति-व्याख्या, पंचदशी, आयुर्वेद-निदान आदि अनेक ग्रथ लिखे। स्थानाभाव के कारण प्रत्येक का

संस्कृत-साहित्य

विवेचन यहा प्रायः असभव एव अप्रासगिक होगा। भोगनाथ और गोपाल-स्वामी भी इस समय के प्रकाण्ड विद्वान् थे। भोगनाथ के रचित ग्रथों में रमोल्लास, त्रिपुर-विजय, उदाहरण-माला, महागणपति-स्तव, शृङ्गार-मजरी गौरीनाथ-स्तव आदि ग्रन्थों का नाम विशेष उल्लेखनीय है। जयतीर्थ नामक पडित ने वृहद् तथा महत्त्वपूर्ण तेईस पुस्तकें लिखीं। न्याय-दीपिका, प्रमाण-पद्धत्ति और पद्यमाला इसके मुख्य ग्रथ समझे जाते हैं। इसी विद्वान् के प्रिय शिष्य व्यासतीर्थ ने उपनिषदों पर टीका लिखी है।

विजयनगर की स्थापना के सबध में माधव मत्री का भी नाम सदा लिया जाता है। सस्कृत-साहित्य की उन्नति में भी इनका पर्याप्त हाथ रहा।

माधवाचार्य

माधव तथा उनके भ्राता सायण राजनीतिज्ञ तथा प्रातों के शासन में सहायक होते हुए भी बहुत बडे विद्वान् थे[1]। जब तक वैदिक-साहित्य रहेगा तब तक सायण का नाम अमर रहेगा। प्राचीन-भारत में भी ऐसा कोई पण्डित न हुआ जिसने वेदों की टीका लिख कर जनता में उनके प्रचार करने का बीड़ा उठाया हो। विजयनगर-काल की यह महान् विशेषता है कि इसी समय में वेदों पर भाष्य लिखे गये। वेदों के कठिन और गूढतम मन्त्रों का सरल अर्थ जनता तक पहुँचाया गया। इसका श्रेय सायणाचार्य को ही है। सायण के भ्राता माधव भी प्रसिद्ध विद्वान् थे। माधवाचार्य ने अनेक ग्रंथों की रचना की है। इनके ग्रथ दो विभागों में बाटे जा सकते हैं। (१) मीमासा और (२) धर्मशास्त्र। इनके नाम से धर्मशास्त्र मे बहुत-सी पुस्तकें मिलती हैं परन्तु इसमे सन्देह है कि इन सारी पुस्तकों की रचना माधव ने की थी या नहीं[2]। धर्मशास्त्र में इनके निम्न-लिखित ग्रथ प्रसिद्ध हैं—(१) पराशर-माधव (२) काल-निर्णय (३) दत्तक-मीमासा (४) गोत्र प्रवर-निर्णय (५) मुहूर्त-

---

१ विशेष वर्णन के लिए देखिये—
पं० बलदेव उपाध्याय, आचार्य सायण और माधव।

२ काने—हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र भाग १ पृ० ७२३

माधव (६) स्मृत-संग्रह तथा (७) व्रात्य-स्तोम-पद्धत्ति आदि प्रसिद्ध हैं[1]। पराशर-स्मृति की टीका समय समय पर लिखी गई। याज्ञवल्क तथा कौटिल्य ने भी स्मृति-कर्ता पराशर का नामोल्लेख किया है। परन्तु 'पराशर-माधव' से पूर्व कोई भी प्रामाणिक टीका नहीं मिलती। माधवाचार्य कृत टीका का नाम ही 'पराशर-माधव' है। आचार तथा प्रायश्चित्त का विभाग तो पहले से ही था। परन्तु व्यवहार का वर्णन न होते हुए भी माधव ने इसका वर्णन किया है--

पराशरस्मृति· पूर्वैः अव्याख्याता निबन्द्धृभि· ।
मयाऽतो माधवार्येण तद् व्याख्यायां प्रयत्यते ॥ (उपक्रम)

'पराशर-माधव' के पश्चात् काल निर्णय लिखा गया था।

व्याख्याय माधवाचार्यो, धर्मान् पाराशरानथ ।
तदनुष्ठानकालस्य, निर्णयं वक्तुमुद्यतः ॥
(काल-माधव)

माधव ने ऋतुओं का विवेचन, तिथि का अर्थ, नक्षत्र आदि का प्रामाणिक तथा उपयोगी वर्णन इस पुस्तक मे किया है। कर्म-मीमासा विषयक पुस्तक लिखने से माधव का नाम और प्रसिद्ध हो गया। विजयनगर-शासक बुक्कराय ने भरी सभा मे माधव की प्रशंसा की। 'जैमिनीय-न्याय-माला-विस्तर' मीमासा-विषय का प्रसिद्ध ग्रंथ है। माधव ने इस पुस्तक मे जैमिनि सूत्रों की बोधगम्य टीका लिखी, जिसका नाम 'न्यायमाला' रखा गया। इस पुस्तक के देखने से ज्ञात होता है कि माधव का मीमासा जैसे गहन-विषय मे भी प्रवेश था। निम्न श्लोक से उपर्युक्त बात की पुष्टि होती है—

स खलु प्राज्ञः जीवातुः सर्वशास्त्रविशारदः ।
अकरोत् जैमिनिमते न्यायमालां गरीयसीम् ॥
तं प्रशंस्य सभामध्ये, वीरः श्रीबुक्कभूपतिः ।
कुरु विस्तारं तस्यास्त्वमिति माधवमादिशत् ॥

---

[1] बलदेव उपाध्याय--भारतीय-दर्शन।

इसके अतिरिक्त माधव ने वेदान्त विषयक ग्रथ भी लिखे। विवरण-प्रमेय-सग्रह, अनुभूति-प्रकाश तथा पञ्चदशी पुस्तको की रचना कर के माधवाचार्य ने वेदान्त के गूढ सिद्धान्तो को सरल भाषा में समझाया है। इसके अतिरिक्त माधव के द्वारा शकराचार्य का जीवन-चरित्र 'शकरदिग्विजय' नामक पुस्तक रचित बतलाई जाती है। माधवाचार्य ने अपने स्वतत्र दार्शनिक मत का स्व-रचित ग्रथो मे प्रतिपादन किया है। इन्होंने गृहस्थ जीवन मे रहकर धर्म तथा मीमासा के विषय का बोध कराया तथा चौथे आश्रम में, सन्यास लेने पर अद्वैत वेदान्त के मर्म को सब के सन्मुख सरल भाषा में रखा। ससार के लोगो को जीवन का आदर्श-मार्ग बतलाकर, मानव-मात्र को सुखी बनाना ही इनके ग्रन्थो का मुख्य ध्येय है। यही नहीं माधवाचार्य ने विजयनगर-राज्य के शासन-प्रबध मे भी महती सहायता पहुचाई। इस राज्य की स्थापना में भी आपका बहुत हाथ था। प्रधान-मत्री के महान् पद को आपने वर्षों तक सुशोभित किया। अतएव मत्री के कार्यभार को सभालते हुए साहित्य की इतनी अधिक सेवा करना माधवाचार्य की बहुमुखी प्रतिभा का ही कार्य था।

माधव के दूसरे भ्राता सायण का नाम तो ससार प्रसिद्ध है। इन्होंने कम्पण तथा हरिहर द्वितीय का मन्त्री-पद ग्रहण कर विजयनगर-शासन में प्रचुर परिवर्तन किया। इन्होंने अपने जीवन का अधिक भाग राज्य-प्रबन्ध में ही व्यतीत किया। इसके अतिरिक्त वैदिक-सस्कृति के प्रसार के लिए सायण ने अवर्णनीय तथा असीम उत्साह से कार्य किया। अपने जीवन के अतिम समय के कुछ वर्षों में सायण ने वेदभाष्य लिख कर इनका उद्धार किया। सायण का नाम वेदों साथ अमर हो गया है। वेद भाष्यो की रचना के सम्बन्ध में एक रोचक कथानक प्रसिद्ध है। विजयनगर के राजा बुक्कराय के ध्यान मे यह बात आई कि आर्य-धर्म के प्राणभूत तथा हिन्दू-सस्कृति के आदि-ग्रन्थ वेदों का प्रामाणिक अर्थ सुन्दर ढग से लिखा जाय।

सायणाचार्य

हिन्दू-सस्कृति की उन्नति की भावना से प्रेरित होकर तथा अपने इस

उच्च विचार को कार्य रूप मे परिणित करने के लिए बुक्कराय ने अपने मन्त्री माधवाचार्य से विचार-विनिमय किया। बुक्क ने अपने विद्वान् मन्त्री माधवाचार्य से वेदों पर भाष्य लिखने का आग्रह किया। माधवाचार्य ने इस भार को अपने ऊपर न लेकर अपने कनिष्ठ भ्राता सायण का नाम राजा के सामने उपस्थित किया। उनका कहना था कि सायण वेदार्थ के ज्ञाता हैं और इस कार्य को सुचारु रूप से सम्पन्न कर सकते हैं। वह वेदो के गूढ से गूढ अभिप्राय तथा रहस्य को जानते है। माधवने बुक्क से प्रार्थना की कि वेद-भाष्य लिखने का कार्य सायण को ही दिया जाय। अतएव बुक्कराय ने इस भाष्य-रचना का भार सायण के ऊपर छोड दिया। सायण ने तैत्तिरीय संहिता के भाष्य की उपक्रमणिका मे इसका उल्लेख इस प्रकार से किया है:—

वेद भाष्यों की रचना की कथा

इत्युक्तः माधवार्येण वीरः बुक्कमहीपतिः।
आदिशत् सायणाचार्यं वेदार्थस्य प्रकाशने॥
ये पूर्वोत्तरमीमांसे ते व्याख्यायातिसंग्रहात्।
कृपालुः सायणाचार्यो वेदार्थं वक्तुमुद्यतः॥

सायणाचार्य मंत्री-पद स्वीकार करने के कारण वेलूर प्रांत के शासन मे लगे रहे। विजयनगर के अन्य राजाओं से इनका परिचय न था, इसी लिए बुक्कराय से भी सायण अपरिचित थे। सायण की अगाध-विद्वत्ता से परिचित न होने के कारण ही बुक्क ने माधवाचार्य से वेद-भाष्य लिखने के लिए प्रस्ताव किया था [१]। सायण ने अपने जीवन के अंतिम चौबीस वर्षो मे इस कार्य का सम्पादन किया। प्रायः लोगो को यह संदेह होता है कि साम्राज्य के प्रबंध मे व्यस्त व्यक्ति कैसे इतना विद्वत्तापूर्ण महान् कार्य कर सकता है। परन्तु सायण की अगाध विद्वत्ता और अलौकिक प्रतिभा के लिए यह काम कुछ कठिन न था।

---

१ पं० बलदेव उपाध्याय—आचार्य सायण और माधव

सायण के द्वारा रचित ग्रंथों तथा भाष्यों के वर्णन के पूर्व यह उचित प्रतीत होता है कि सायण से पूर्व भाष्यकारों का सक्षिप्त वर्णन यहा किया जाय। वेदों की जटिल भाषा तथा प्राचीनता के कारण इनका अर्थ समझना कठिन था। वेदो को समझने के लिए सर्व प्रथम ब्राह्मण ग्रन्थो की रचना हुई। उनको समझने के लिए निरुक्त तथा व्याकरण से भी सहायता मिलती है। सायण के पूर्व-भाष्यकार वेकटमाधव ने वेद-ज्ञान के लिए ब्राह्मण तथा आरण्यक की नितात आवश्यकता बतलाई है। ब्राह्मणों के पश्चात् निघण्टु तथा इन्हीं निघण्टुओ की विस्तृत टीका-के रूप में निरुक्त लिखा गया। यास्क के निरुक्त द्वारा वेदार्थ को जानने में सरलता तो अवश्य हुई परन्तु भाष्य की आवश्यकता बनी रही। भारतीय इतिहास के स्वर्णयुग-गुप्तकाल में वेदो के भाष्य लिखने का महत्त्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ हुआ था। इसी समय से वेदो पर भाष्य लिखने का अनेक आचार्यों ने प्रयास किया। कुण्डिन ने तैत्तिरीय सहिता पर भाष्य लिखा। भवस्वामी व गुहदेव आठवीं सदी मे आविर्भूत हुए। बलभी के निवासी स्कन्दस्वामी ने ऋग्वेद पर भाष्य लिखा। यास्क के निरुक्त पर इन्होंने टीका लिखी। इनका ऋग्भाष्य अत्यन्त विशद ग्रथ है। नारायण ने ऋग्वेद के कुछ मण्डलो पर टीका लिखी है। माधव या वेकट माधव ने सन् ११५० ई० मे ऋक् सहिता पर अपना भाष्य लिखा। वैष्णव सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध आचार्य, द्वैतवाद के प्रवर्तक मध्वाचार्य ने ऋग्वेद पर माध्वभाष्य लिखा। इन्होंने इसके आधिभौतिक, आधिदैविक अर्थ के अतिरिक्त आध्यात्मिक अर्थ भी किया है। इनका दूसरा नाम आनन्दतीर्थ भी है। इनका समय सन् १२५५ ई० से १३३५ ई० तक माना जाता है। भरतस्वामी ने होयसल नरेश रामनाथ के राज्यकाल मे (सन् १२७२ से १३१० ई० तक) भाष्य लिखा जो बहुत प्रसिद्ध है। माधव ने भी सामवेद पर भाष्य लिखा। इस प्रकार विभिन्न विद्वानों ने वेदार्थ को समझाने के लिए पृथक्-पृथक् भाष्य लिखे।

यद्यपि बुक्कराय ने वेदभाष्य लिखने का आदेश सायण को दिया था, परन्तु यह कार्य कुछ कम कठिन न था। सायण एक व्यवहार कुशल मन्त्री तथा प्रकाण्ड विद्वान् थे। जिस प्रकार इनके कार्य क्षेत्र अनेक थे उसी प्रकार इनकी विद्वता भी सर्वाङ्गीण थी। वेदों के गूढ़ार्थ प्रतिपादन से लेकर पुराणो के व्यापक वर्णन तक, अलकारों के विवेचन से लेकर पाणिनि-व्याकरण की विशद व्याख्या तक, यज्ञतत्र के मर्मोद्घाटन से लेकर वैद्यक के उपयोगी और व्यावहारिक ज्ञान की मीमासा तक--सर्वत्र सायण की अप्रतिम प्रतिभा की पहुँच थी और इसी कारण वे जनता के तथा विद्वानों के आदर के पात्र थे। सस्कृत साहित्य के अनेक विभागो को सायण ने अपनी रमणीय रचनाओ से अलकृत किया। परन्तु इनके साहित्यिक जीवन का सर्वश्रेष्ठ कार्य वेद भाष्यो की निर्मिति है। तीस वर्ष की अवस्था से लेकर जीवन-पर्यन्त इन्होंने भाष्यों के निर्माण के लिए अथक परिश्रम किया। अमात्य तथा प्रधान-मन्त्री के पद पर आसीन होकर और शासन के गुरुतर कार्यभार को सँभालने मे लगे रहने पर भी सायण ग्रथ-रचना से कभी विमुख नही हुए। सायण ने अनेक ग्रन्थो का निर्माण किया ये सभी ग्रंथ मत्रित्व काल के ही माने जाते हैं। बुक्क भूपाल की आज्ञा से सायणाचार्य ने वेदभाष्य लिखा। सस्कृत साहित्य के विभिन्न भागो से सम्बन्धित सायण के अन्य सात ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

सायण के ग्रन्थ

(१) सुभाषित-सुधानिधि—यह पुस्तक कम्पण के राज्यकाल सन् १३४० ई० से १३४५ ई० के अन्तर्गत लिखी गई थी। इसको चार भागों मे अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष मे बाटा गया है। यह धर्म तथा तत्वज्ञान को समझाने वाली पुस्तक है। 'राज-चाटु-पद्धति' जो तत्कालीन विजयनगर के राजाओ के विषय मे लिखी गई है, इसी ग्रन्थ का अनुकरण-मात्र है।

(२) प्रायश्चित्त-सुधानिधि—इसका दूसरा नाम 'कर्मविपाक' है। हिन्दू धर्म शास्त्र के तीन प्रधान विषयो, आचार, व्यवहार तथा प्रायश्चित्त

के अंतिम भाग पर सायण ने प्रकाश डाला है। संगम द्वितीय के राज्यकाल में जिन चार ग्रन्थो की रचना सायण ने की, उनमे प्रथम स्थान इसीको दिया गया है।

(३) आयुर्वेद-सुधानिधि—इसमे आयुर्वेद की प्रधान प्रधान उपयोगी बातों का विवेचन किया गया है।

(४) अलंकार-सुधानिधि—सायण ने इस पुस्तक में संस्कृत साहित्य के समस्त अलंकारों के लक्षण उदाहरण सहित प्रस्तुत किये हैं। इससे ज्ञात होता है कि सायण अलंकार शास्त्र के भी प्रकाण्ड पंडित थे। प्रसिद्ध विद्वान् अप्पय दीक्षित ने अपनी विख्यात अलंकार की पुस्तक चित्र-मीमांसा मे इसका उल्लेख किया है।

(५) माधवीया धातु-वृत्ति—सायणाचार्य ने इसकी रचना की, जैसा कि नीचे के श्लोक से स्पष्ट है—

तेन मायणपुत्रेण सायणेन मनीषीणा।
आख्याय माधवीयेन धातु-वृत्ति विरच्यते॥

परन्तु अपने अग्रज माधव के प्रति प्रगाढ़ स्नेह तथा भक्ति के कारण इस ग्रन्थ का नाम उन्ही के नाम पर रखा। माधवीया-धातुवृत्ति नामकरण के कारण विद्वान् लोग इसे माधव की रचना मानते हैं, परन्तु यह कल्पना अप्रमाणिक है। इस ग्रन्थ की रचना सायण ने संगम द्वितीय के राज्य में की।

६—पुरुषार्थ-सुधानिधि—बुक्क भूपाल का माधव को आदेश, माधव का सायण की योग्यता के बारे मे राजा को उत्तर और उनके कहने से भाष्य रचना के कार्य को करना इत्यादि घटनाओं का संग्रह इस ग्रन्थ में है। सायण को विद्वानों में श्रेष्ठ कहा गया है—

"तं सर्वविद्यानिलयं तत्वविद् बुक्कभूपति.।
सत्कथाकौतुकी हर्षादपृच्छत् राजराशेखरम्॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा युक्तार्थं बुक्कभूपते।
प्रशंस्य तं मुदा युक्तो माधव. प्रत्यभाषत॥

अयं हि कृतिः नाम्ना यः सायणार्यो ममानुजः
पुराणोपपुराणेषु पुरुषार्थोपयोगिनीम् ।
+ + + +
सायणार्योऽग्रजेनोक्तः प्राह बुक्कमहीपतिम् ॥

(७) यज्ञ-तत्र-सुधानिधि—सायण ने इसमे यज्ञो का वर्णन किया है। इस पुस्तक की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि हरिहर द्वितीय के शासन-काल मे मत्री-पदस्थ होकर सायण ने इस ग्रथ की रचना की।

"इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरहरिहरमहाराजसकलसाम्राज्य धुरंधरस्य वैदिकमार्गस्थापनाचार्यस्य सायणाचार्यस्य कृतौ यज्ञतंत्र सुधानिधिः" ।

सायण ने इन संस्कृत ग्रंथों की रचना के अतिरिक्त वेद-भाष्य लिखा जो इनकी सर्व प्रधान तथा सर्व श्रेष्ठ रचना है। सर्वसाधारण लोग

वेद-भाष्यों की रचना

इन्हे वेदभाष्यकार ही समझते हैं। सायण की अलौकिक विद्वत्ता व्यापक पाडित्य तथा अटूट अध्यवसाय, का सुन्दर फल हमे भाष्यो के रूप मे मिलता है। 'वेद' शब्द सहिता तथा ब्राह्मणों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। जिन सहिताओ तथा ब्राह्मणो की व्याख्या सायण ने की उनके नाम निम्न प्रकार हैं[१]—

(अ) संहिता

१ तैत्तिरीय (कृष्ण यजुर्वेदी)
२ ऋग्वेद-सहिता
३ सामवेद ब्राह्मण
४ काण्व-संहिता (शुक्ल यजुर्वेद)
५ अथर्ववेद सहिता

(ब) ब्राह्मण तथा आरण्यक

१—इसके विशेष तथा प्रामाणिक वर्णन के लिए देखिये—
पं० बलदेव उपाध्याय—वेदभाष्य भूमिका संग्रहः।

के अतिम भाग पर सायण ने प्रकाश डाला है। सगम द्वितीय के राज्यकाल में जिन चार ग्रन्थो की रचना सायण ने की, उनमे प्रथम स्थान इसीको दिया गया है।

(३) आयुर्वेद-सुधानिधि—इसमे आयुर्वेद की प्रधान प्रधान उपयोगी बातों का विवेचन किया गया है।

(४) अलकार-सुधानिधि—सायण ने इस पुस्तक मे सस्कृत साहित्य के समस्त अलकारो के लक्षण उदाहरण सहित प्रस्तुत किये हैं। इससे ज्ञात होता है कि सायण अलकार शास्त्र के भी प्रकाण्ड पंडित थे। प्रसिद्ध विद्वान् अप्पय दीक्षित ने अपनी विख्यात अलकार की पुस्तक चित्र-मीमासा मे इसका उल्लेख किया है।

(५) माधवीया धातु-वृत्ति—सायणाचार्य ने इसकी रचना की, जैसा कि नीचे के श्लोक से स्पष्ट है—

तेन मायणपुत्रेण सायणेन मनीषीणा।
आख्याय माधवीयेन धातु-वृत्ति विरच्यते॥

परन्तु अपने अग्रज माधव के प्रति प्रगाढ स्नेह तथा भक्ति के कारण इस ग्रन्थ का नाम उन्हीं के नाम पर रखा। माधवीया-धातुवृत्ति नामकरण के कारण विद्वान् लोग इसे माधव की रचना मानते हैं, परन्तु यह कल्पना अप्रमाणिक है। इस ग्रन्थ की रचना सायण ने सगम द्वितीय के राज्य में की।

६—पुरुषार्थ-सुधानिधि—बुक्क भूपाल का माधव को आदेश, माधव का सायण की योग्यता के बारे मे राजा को उत्तर और उनके कहने से भाष्य रचना के कार्य को करना इत्यादि घटनाओं का संग्रह इस ग्रन्थ में है। सायण को विद्वानों में श्रेष्ठ कहा गया है—

"तं सर्वविद्यानिलयं तत्वविद् बुक्कभूपति.।
सत्कथाकौतुकी हर्षादपृच्छत् राजराशेखरम्॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा युक्तार्थं बुक्कभूपते।
प्रशंस्य तं मुदा युक्तो माधव. प्रत्यभाषत॥

अयं हि कृतिः नाम्ना यः सायणार्यो ममानुजः
पुराणोपपुराणेषु पुरुषार्थोपयोगिनीम्।
+ + + +
सायणार्योऽग्रजेनोक्तः प्राह बुक्कमहीपतिम्॥

(७) यज्ञ-तत्र-सुधानिधि—सायण ने इसमे यज्ञो का वर्णन किया है। इस पुस्तक की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि हरिहर द्वितीय के शासन-काल मे मंत्री-पदस्थ होकर सायण ने इस ग्रथ की रचना की।

"इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरहरिहरमहाराजसकलसाम्राज्य धुरंधरस्य वैदिकमार्गस्थापनाचार्यस्य सायणाचार्यस्य कृतौ यज्ञतंत्र सुधानिधिः"।

वेद-भाष्यों की रचना

सायण ने इन संस्कृत ग्रंथों की रचना के अतिरिक्त वेद-भाष्य लिखा जो इनकी सर्व प्रधान तथा सर्व श्रेष्ठ रचना है। सर्वसाधारण लोग इन्हे वेदभाष्यकार ही समझते हैं। सायण की अलौकिक विद्वत्ता व्यापक पाडित्य तथा अटूट अध्यवसाय, का सुन्दर फल हमे भाष्यों के रूप मे मिलता है। 'वेद' शब्द सहिता तथा ब्राह्मणो के लिए प्रयुक्त किया जाता है। जिन सहिताओं तथा ब्राह्मणो की व्याख्या सायण ने की उनके नाम निम्न प्रकार हैं[1]—

(अ) संहिता

१ तैत्तिरीय (कृष्ण यजुर्वेदी)
२ ऋग्वेद-संहिता
३ सामवेद ब्राह्मण
४ काण्व-संहिता (शुक्ल यजुर्वेद)
५ अथर्ववेद सहिता

(ब) ब्राह्मण तथा आरण्यक

१—इसके विशेष तथा प्रामाणिक वर्णन के लिए देखिये—
पं० बलदेव उपाध्याय—वेदभाष्य भूमिका संग्रहः।

(क) कृष्ण यजुर्वेद ब्राह्मण

१ तैत्तिरीय ब्राह्मण   २ तैत्तिरीय आरण्यक

(ख) ऋग्वेद ब्राह्मण

३ ऐतरेय ब्राह्मण   ४ ऐतरेय आरण्यक

(ग) सामवेद ब्राह्मण

५ ताण्ड्य ब्राह्मण   ६ षड्विंश ब्राह्मण

७ सामविधान ब्राह्मण   ८ आर्षेय

९ देवताध्याय   १० उपनिषद् ब्राह्मण

११ संहितोपनिषद्   १२ वंश

(घ) शुक्ल-यजुर्वेदीय ब्राह्मण

१३ शतपथ ब्राह्मण

चारों संहिताओं तथा तेरह ब्राह्मणों के ऊपर सायण ने भाष्य लिखा। ये टीकाये चारों वेदों के ब्राह्मण भाग पर लिखी गई हैं। इस प्रकार वेदों तथा ब्राह्मणों पर प्रामाणिक भाष्य लिखे गए। आज तक किसी एक व्यक्ति ने इतने वैदिक ग्रंथों पर भाष्य नहीं लिखे। चारों संहिताओं तथा ब्राह्मणों के भाष्य के आरम्भ में सायण ने बुक्क नरेश के आदेशानुसार भाष्य लिखने की घटना का सादर उल्लेख किया है:—

यत्कटाक्षेण तद्रूपं दधद् बुक्कमहीपति।
आदिशन्माधवाचार्यं वेदार्थस्य प्रकाशने॥

ऋग्भाष्य की पुष्पिका में:—

"इति श्रीमद्राजाधिराजपरमेश्वरवैदिकमार्गप्रवर्तकश्रीबुक्कसाम्राज्य-धुरंधरेण सायणाचार्येण विरचिते माधवीये वेदार्थप्रकाशे ऋक्संहिता-भाष्ये।"—ऐसा उल्लेख मिलता है। इससे भी भाष्यों की रचना में बुक्क का आदेश ज्ञात होता है। अथर्ववेद-संहिता-भाष्य सम्भवत: बुक्क के पुत्र हरिहर द्वितीय के समय मे लिखा गया था। क्योंकि उसी पुस्तक की अवतरणिका मे सायण ने 'महाराजाधिराज, धर्मब्रह्माध्वन्य, षोडश महादानों के करने वाले हरिहर का वेदभाष्य मे नामोल्लेख किया है:—

तत्कटाक्षेण तद्रूपं दधतो बुक्कभूपतेः।
अभूत् हरिहरो राजा क्षीराब्धेरिव चन्द्रमा ॥

सायण के द्वारा रचित महान् वेद-भाष्यों तथा अन्य ग्रन्थों द्वारा विजयनगर राज्य में सस्कृत साहित्य की अपार उन्नति हुई।

माधव तथा सायण के अतिरिक्त सगम राज्य काल मे अनेक विद्वान् हो गए हैं। इसी वंश के शासक हरिहर द्वितीय का मन्त्री इरुगप्प भी एक प्रगाढ़ विद्वान् था। उसने जैन होते हुए भी सस्कृत मे 'नामानार्थ-रत्न-माला' नामक बृहत् कोष की रचना की[1]। पण्डितराय, श्रुतिमुनि तथा सिहनन्दिन भी जैन पण्डित हो गए हैं जिन्होंने सस्कृत मे ग्रथ लिखे। कम्पण की विदुषी स्त्री गगदेवी ने 'मधुरा-विजयम्' अथवा 'कम्पण-चरितम्' नामक महाकाव्य की रचना की। उसमे कम्पण द्वारा दक्षिणी भारत मे यवनों को परास्त करने का वर्णन मिलता है[2]। सगम के पाच पुत्रों मे से मारप्प ने 'शैवागमसार' नामक पुस्तक मे शैवसिद्धात का प्रतिपादन किया है[3]। कम्पण का महाप्रधान सोमप्प भी एक विद्वान् पुरुष था। 'निरंकुशोपाख्यानम्' के रचयिता रुद्रप्पा इसी काल मे आविर्भूत हुए थे।

नरहरि पण्डित ने 'काव्य-प्रकाश' पर टीका लिखी। कुमारसम्भव तथा किरातार्जुनीय पर भी टिप्पणियाँ लिखी गई। वामनभट्ट सङ्गीत का जानने वाला था, अतएव 'सङ्गीत-सुधा' और 'सङ्गीत-मुक्तावली' की उसने रचना की। देवभट्ट ने भी सङ्गीत पर ग्रथ लिखे। विजयनगर शासकों के आश्रय मे ऐसे अनेक विद्वान् रहते थे और पुस्तके लिख कर सस्कृत साहिय का भण्डार भरते थे। देवराय द्वितीय के दरबार मे जैन, वैष्णव तथा वीरशैव पण्डितों का जमघट रहता था। इम्मादी देवराय रचित 'रतिरत्न-प्रदीपिका' नामक ग्रथ प्रसिद्ध है। पुस्तक की पुष्पिका में 'इति

---

१ सा० इ० इ० भा० १ पृ० १६। २ कृस्णास्वामी—सोर्सेज़ आफ विजयनगर। ३ एपि० इंडि० भा० ३।

प्रौढ देवराय विरचितायां रतिरत्न प्रदीपिकायां'—ऐसा उल्लेख पाया जाता है, जो उपर्युक्त कथन की पुष्टि करता है। मल्लिकार्जुन के आश्रित गंगाधर कवि ने 'गंगदास-प्रदीप' नामक ग्रंथ लिखा था। इस प्रकार संगम-काल में संस्कृत-साहित्य की प्रचुर वृद्धि हुई।

सालुव तथा तुलुव-वंश के शासन-काल (१४८६ से १५५६ तक) में वैष्णव धर्म के अंतर्गत द्वैत तथा विशिष्टाद्वैत मतों की जागर्ति हुई। जनता ने भी इसमे योग दिया। इस जागर्ति का प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर दिखलाई पड़ता है। वैष्णव साधुओं ने अनेक ग्रन्थों पर अपने धार्मिक मत के अनुसार टीकाएं लिखीं। रघूत्तम ने 'भावबोध' पर टीका लिख कर प्रसिद्धि प्राप्त की।

व्यासराज उस समय का सबसे बड़ा दार्शनिक था। कृष्णदेवराय के शासन काल मे, बाल्यावस्था में ही वह सन्यासी हो गया था। उसने बहुत-सी पुस्तकें लिखी हैं जिनमे 'मायावाद-खण्डन' मुख्य माना जाता है। इसी राजा के समकालीन लक्ष्मीधर नामक विद्वान ने 'सौन्दर्य-लहरी', 'सरस्वती-विलासम्' आदि पुस्तकों की रचना की जिनका वर्णन शिलालेखों मे पाया जाता है। कृष्णदेव राय ने स्वयं कई पुस्तकें संस्कृत मे लिखी। अच्युत के समय मे राधामाधव ने वैष्णवधर्म के ऊपर दो विद्वत्तापूर्ण ग्रंथों की रचना की। ज्ञान-चिन्तामणि, रस-मञ्जरी आदि उसके अनेक संस्कृत ग्रंथ प्रसिद्ध हैं।

विजयनगर के अंतिम राज-वंश आरविडु के शासन काल मे संस्कृत-साहित्य की उन्नति चरम-सीमा को पहुंच गई। इस समय मे अनेक पुस्तकों की रचना कर साहित्य का भण्डार भरा गया। साहित्य की इस उन्नति का विशेष कारण यह था कि इस वंश के समय मे अद्वैत, द्वैत तथा विशिष्टाद्वैत मतों का प्रचार जनता में हो रहा था। अतएव अपने मत का मण्डन तथा दूसरे मत का खण्डन करने के लिए विद्वानों ने पुस्तकों की रचना कर संस्कृत-साहित्य के भण्डार को भर दिया। व्यास-राज के शिष्य वादिराज ने तीस पुस्तकों की रचना की। विजयेन्द्र ने

अप्पयदीक्षित के विरोध मे स्वय १०४ पुस्तके सस्कृत में लिखी। राघवेन्द्र ने वैदिक विषय के अतिरिक्त अन्य विषयों पर सब मिलाकर ४२ पुस्तकों का प्रणयन किया। वरदराजाचार्य लिखित 'महाभारत-तात्पर्य-निर्णय' नामक पुस्तक सस्कृत मे मिलती है। उसका पुत्र नरहरि भी सस्कृत का पडित था। विष्णु-पुराण पर उसकी टीका मिलती है। इस प्रकार आरविदु-शासन-काल मे प्रायः बीस विद्वान् ऐसे हुए जिन्होंने विभिन्न पुस्तकों पर टीकाए लिखीं। इस काल मे अद्वैत मत के अनुयायी अनेक धुरधर विद्वान् पैदा हुए। कृष्णानन्द एक प्रधान व्यक्ति माना जाता है। उसकी शिष्य-परम्परा मे भट्टोजी दीक्षित तथा रगोजी विख्यात विद्वान् थे। भट्टोजी दीक्षित व्याकरण का प्रकाण्ड पडित था। 'मनोरमा' तथा 'सिद्धान्तकौमुदी' उसके सर्व प्रसिद्ध ग्रथ हैं। यह अप्पय तथा जगन्नाथ के समकालीन था। अप्पयदीक्षित ने प्रायः एक सौ पुस्तको की रचना की है जिससे उनकी अगाध विद्वत्ता का परिचय मिलता है।

आरविदु-वश के शासको मे रामराय तथा वेकट का नाम आदर के साथ लिया जाता है। इनके समय में साहित्य की श्री-वृद्धि हुई! अनेक

विद्वानों के आश्रयदाता

विद्वान रामराय के दरबार मे रहा करते थे। वह स्वयं कवि था। बृटिश म्यूजियम मे सुरक्षित एक लेख में[1] रामराय की समता राजा भोज से की गई है। उसकी सभा मे रामानुजाचार्य नामक एक पडित रहा करते थे। ताताचार्य भी उसी के समय मे वर्तमान थे। इन आचार्य ने शैव (वीर-शैव) मत की पुष्टि करने तथा अन्य धर्मों के खण्डन करने के लिए 'पचनत-भंजनम्' नामक पुस्तक लिखी। विजयेन्द्र ने भी अनेक पुस्तको की रचना की। पटकुश ने रामराय का आश्रय प्राप्त कर (१) सिद्धान्त-मणि-दीपम् (२) पचकाल-दीपिका तथा (३) नृसिहस्तव नामक पुस्तको की रचना की। भट्टमूर्ति रामराय की सभा का प्रधान कवि था। उसको 'रामराय भूषण'

---

१ एपि० इडि० भाग ४ पृ० ४

की उपाधि दी गई थी, क्योकि वही राजकवियों मे श्रेष्ठ था। उसने 'हरिश्चन्द्र-नलोपाख्यान' नामक पुस्तक तामिल भाषा मे तैयार की। उसके उत्तराधिकारी तिरुमल ने 'गीति-गोविन्द' पर 'नीति मजरी' नामक टीका लिखी थी। वेकट पनिदेव सब राजाओं में विद्वान् था। अत विद्वानों ने उसकी तुलना चन्द्रमा से की है[1]। वह विद्वानों से धर्म, दर्शन तथा गणित आदि विषयो पर शास्त्रार्थ किया करता था। मंगल-दानपत्र मे स्पष्टतया उल्लखित है कि वेकट विद्वानों का आश्रयदाता था तथा वह स्वय भी पडित था[2]। रामानुजाचार्य की शिष्य-परम्परा मे उत्पन्न यजुर्वेद शाखा के प्रसिद्ध पडित जगन्नाथराय उसके दरबार मे वर्तमान थे वेकट ने पाडुरग के विष्णु-मन्दिर का इतिहास काव्य मे लिखवाया। भीमा नदी के किनारे पढरपुर मे पडितो का जमघट हुआ करता था जो शास्त्रीय विषयो पर शास्त्रार्थ किया करते थे। वेकट के सेनापति अनन्त ने तेलेगु भाषा में 'काकुस्थविजयम्' नामक काव्य लिखा।

सुरेन्द्रतीर्थ तथा अप्पय दीक्षित मे सदा शास्त्रार्थ होता था। सुरेन्द्र-तीर्थ माध्व-दर्शन के व्याख्याता थे। अप्पय दीक्षित ने इनके मत का खंड किया। इन्होंने अपने मत की पुष्टि के लिए चित्र मीमासा, न्यायमृत-व्याख्या नाम की पुस्तकें रचीं[3]। प्रसिद्ध दार्शनिक गोविन्द दीक्षित ने सङ्गीतपर पुस्तक लिखी जिसका नाम 'सङ्गीत-सुधानिधि' है। जैसा कहा गया है कि तजोर मे निवास करते हुए अप्पय दीक्षित ने सैकडो पुस्तकों की रचना की। इन्होने 'कुवलयानन्द' नामक अलकार विषयक पुस्तक लिखी[4]। प्रसिद्ध मन्त्री गोपणार्य ने तेलुगु-भाषा मे 'लक्ष्मी-विलासम्' काव्य की रचना की[5]। तिरुमल के सभा पडित वेदान्ती रामानुज राज-

---

१ एपि० इडि० भा० १२ पृ० १८६। २ बटरवर्थ—नेलोर लेख भा० १ पृ० ३६। ३ कृष्णास्वामी—सोर्सेज़ पृ० २३०।

४ एपि० इंडि० भा० ४ पृ० २७१।

५ विजयनगर डाइनेस्टी, इण्डि० एटि० भा० २३, नं० ५२३ आफ १९०६ •

कर्मचारी थे[1]। राजसभा मे कवि तथा विद्वान् लेखक रहा करते थे। मगल-दानपत्र का रचयिता सभापति नामक व्यक्ति था[2]। इस दानपत्र में वर्णन मिलता है कि वह एक बड़ा विद्वान् था। कृष्ण कवि ने वेंकट पतिदेव के दान-पत्रो को कविता मे लिखा था[3]। चिदम्बर कवि ने भी सुन्दर काव्यमय दानपत्रों को लिख कर अपने पाडित्य का परिचय दिया है[4]।

विजयनगर-साम्राज्य की अवनति के साथ ही साथ सस्कृत साहित्य की अवनति भी होने लगी। तजोर, मदुरा, ट्रावनकोर तथा मैसूर आदि हिन्दू सस्कृति के नये केन्द्र हो गये। यहा के नायक शासको ने अपने सम्राट् की प्रणाली को चलाया। नायको के काल मे भी विद्वानों को पूर्ववत् आश्रय मिलता रहा। तजोर मे सभवतः तीस विद्वान् रहते थे जिन्होने सैकडों पुस्तके लिखीं। रघुनाथ नायक एक विद्वान् शासक था। गान-विद्या मे वह निपुण था। उसने 'संगीत-सुधा' नामक पुस्तक की रचना की। उसने सगीत मे नये रागो का आविष्कार किया। मधुरावाणी नामक कवियित्री भी रघुनाथ के दरबार मे रहती थी।

यह तो सर्व-विदित है कि साहित्य की उन्नति के साथ ही शिक्षा का कार्य भी चला करता है। विजयनगर राजाओ के शासन काल मे इतने

शिक्षा की व्यवस्था

विद्वानो के पैदा करने तथा शिक्षित बनाने का श्रेय उस समय के शिक्षालयो को दिया जायेगा। उस समय शिक्षा का माध्यम सस्कृत, तेलुगु, और कन्नड भाषाये थी। पादरी नोविली ने लिखा है कि मदुरा मे हजारो विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे। प्रायः प्रत्येक देव-मंदिर शिक्षा का भी केन्द्र था। सन् १४२४ ई० मे देवराय द्वितीय ने एक पंडित को भूमि दान मे दी क्योकि वह आयुर्वेद का ज्ञाता था। उस भूमि की आय का कुछ भाग मदिर मे तथा कुछ विद्यादान

---

१ एपि० कर० भा० ४। २ एपि० इंडि० भा० ४ पृ० २।
३ एपि० इंडि० भा० १२ पृ० ३५७। ४ वही भा० १६ पृ० ३२६।

मे व्यय किया जाता था[१]। मदुरा में विद्यार्थी अपनी इच्छानुसार किसी भी गुरु के पास विद्या पढ सकता था। वेंकट ने विद्या के प्रचारार्थ, अध्यापको के सहायतार्थ तथा विद्यार्थियों के भोजन के निमित्त दान दिया था। मदुरा मे वेदान्त का अध्यापन होता था। उसमे चार-शाखाओं—प्रमाण, ज्ञान, विश्वास तथा साक्षी की शिक्षा दी जाती थी। केशव की 'तर्कभाषा' नामक प्रसिद्ध पुस्तक थी जिसे विद्यार्थी पढते थे। अन्य छोटी-छोटी पाठशालाएँ भी थी जिनमे देशी भाषा द्वारा लिखना, पढना तथा गणित सिखलाया जाता था। चन्द्रगिरि मे जेसुइट्स (ईसाई) लोग तेलुगु भाषा द्वारा एक नई प्रकार की शिक्षा दिया करते थे। हिन्दू अध्यापक, पादरियो की अध्यक्षता मे काम करते थे। पाठशाला का सारा व्यय ईसाई मिशन देता था। ईसाइयो ने भी तामिल तथा तेलुगु भाषा सीखी थी। शासक की राजसभा मे प्रवेश कर अपने मत के प्रचार के लिए ये अनेक कार्य करते थे। इन्ही लोगों ने सर्व प्रथम तामिल भाषा के अक्षर छापने के लिए तैयार किये। और पुस्तके छापनी आरम्भ कर दी[२]। यह सारा काम धर्म प्रचार की बुद्धि से किया जाता था। पीछे मरहठा लोगो के विजयी हो जाने पर देव-नागरी अक्षरो का प्रचार दक्षिण-भारत मे हो गया। इस प्रकार विजयनगर मे शिक्षा प्रचार का कार्य होता रहा। इस समय के किसी बडे शिक्षालय का वर्णन अभी तक नहीं मिला है। पाठशालाए ग्रामो मे वर्तमान थीं। यही से विद्या प्राप्त कर विद्वान् कवि और लेखक राज-सभा मे आया करते थे। ये लोग शासन सचालन मे भी सहयोग देते थे। आश्चर्य यह है कि उच्च-पदस्थ होने पर भी विद्या का व्यसन उनमे बना रहता था।

ऊपर के वर्णन से विजयनगर-कालीन साहित्यिक-उन्नति का कुछ अनुमान किया जा सकता है। इन चार सौ वर्षों मे असख्य पुस्तके लिखी

---

१ केटलाग आफ कापर प्लेट्स मद्रास म्यूजियम नं० ६ पृ० ४५

२ हेरास—आरविद पृ० ५३० ।

गई। तेलुगु, कन्नड तथा सस्कृत साहित्य की प्रचुर उन्नति हुई। संसार के इतिहास मे ऐसा कोई भी शासन-काल नही है जिस समय मे साहित्य की ऐसी श्री वृद्धि हुई हो। सचमुच विजयनगर-राजाओं का शासनकाल तेलुगु तथा कन्नड़ भाषा के साहित्य के लिए 'सुवर्ण युग' था तथा सस्कृत भाषा भी इन गुण-ग्राही राजाओं की छत्र-छाया मे दिन दूनी और रात चौगुनी फूलती फलती रही।

: ८ :

धार्मिक-अवस्था

भारत धर्मप्राण देश है, यही कारण है कि यहा धर्म को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इस देश मे धर्म के महान् सस्थापक समय समय पर उत्पन्न होते रहे। वैदिक धर्म के स्थान पर बुद्ध तथा महावीर ने अपने मतों का विस्तार किया। भारतीय जनता ने इन धर्मों को अपनाया और बौद्ध धर्म तो कुछ समय के लिए सार्वजनिक तथा राजकीय धर्म बन गया। इसका प्रचार समस्त भारत मे तथा विदेशों में हुआ। सम्राट् हर्षवर्धन के पश्चात् बौद्धों मे धार्मिक लगन की न्यूनता प्रारम्भ हो गई। बौद्ध धर्म विभिन्न शाखाओ मे विभक्त हो गया और कालान्तर मे यह राजधर्म के पद से च्युत हो गया। सातवी शताब्दी से मुसलमानो का आक्रमण उत्तरी भारत पर प्रारम्भ हो गया। ये आक्रमणकारी हिन्दू राजाओं को परास्त कर उनके धर्म को भी नष्ट करना चाहते थे। ये हिन्दू-मदिरो को तोड़ कर उनके स्थान पर मसजिदे बनवाते थे। इस प्रकार हिंदू धर्म के लिए सकट काल उपस्थित था। ऐसे समय मे दक्षिण-भारत मे अनेक धर्म-प्रचारक पैदा हुए। इन्होने ने समस्त भारत में भ्रमण कर हिन्दू धर्म का प्रचार किया। शकर तथा रामानुज ने शैव तथा वैष्णव मतो का प्रसार किया। उत्तरी भारत मे भी उनके प्रचार का समुचित प्रभाव पडा। बौद्ध धर्म को त्याग कर जनता ने शकर के अद्वैत मत को ग्रहण किया। वेदों पर जनता की पुनः आस्था हो गई। दक्षिण भारत के दो प्रधान राज्यों—चोल तथा विजय-नगर ने धार्मिक ज्योति को जलाये रखा। मुसलमानों के आक्रमण से उस भाग मे भी यवन मत के अनुयायी पहुँच गए। योरुप से पुर्तगाली लोगों ने आकर यहा बसना आरम्भ कर दिया और छल-पूर्वक हिन्दुओं

को ईसाई बनाने लगे। कहने का अर्थ यह है कि दक्षिणी भाग मे भी हिन्दू-धर्म निर्विघ्न रूप से विकसित न हो सका। वहाँ भी नई विघ्न-बाधाएँ आने लगीं। इतना होते हुए भी दक्षिण भारत मे (१) शैव (२) वैष्णव तथा (३) जैन धर्म की प्रधानता रही। चोल तथा विजयनगर के राजा हिन्दू सभ्यता तथा धर्म के सरक्षक थे। इन राजाओं के शासन-काल मे तीनो धर्मों की उन्नति हुई।

विजयनगर की स्थापना के बाद राजनैतिक क्षेत्र मे परिवर्तन के साथ ही साथ धर्म मे भी पर्याप्त परिवर्तन हुआ। विजयनगर के राजाओं के धार्मिक कार्यों के अनुशीलन से दक्षिण-भारत की धार्मिक-अवस्था का परिचय मिलता है। जैसा कहा गया है कि उस समय शैव, वैष्णव तथा जैन मतों का प्रचुर प्रचार था। सोलहवी सदी तक विजयनगर के शासक शैव मतानुयायी थे। सगम-वश के अन्तिम समय तक शैव मत ही राजकीय धर्म था परन्तु राजा विरुपाक्ष ने वैष्णव आचार्यों की शिक्षा से प्रभावित होकर वैष्णव-मत को स्वीकार कर लिया। इससे पूर्व शिव ही विजयनगर के कुल-देवता थे। राज्य मे शिव की पूजा 'विरुपाक्ष' नाम से की जाती थी। विजयनगर का 'विरुपाक्ष' का विशालकाय मन्दिर इन नरेशो की शिव-भक्ति तथा श्रद्धा का ज्वलन्त उदाहरण है। इनके लेखो के अन्त में भी 'श्री विरुपाक्ष' लिखा मिलता है[1]:—

श्रीकंठपुरसंपूर्त्यै: श्रीविरुपाक्षसंज्ञया।
लिखितः संगमेन्द्रेण पत्रे पञ्चाक्षरो मनुः॥

विजयनगर राज्य के आराध्यदेव शिव पर इन राजाओ की असीम निष्ठा थी। अन्य लेखों मे लिपि दूसरी होने पर भी 'श्री विरुपाक्ष' उत्कीर्ण है[2]। कन्नड लिपि ही कर्णाटक राजाओ की राज-लिपि मानी जाती है। सम्भवतः उन्होंने अपनी राजधानी का नाम 'विजय विरुपाक्षपुर' रखा था[3]। श्रीमत् शकराचार्य द्वारा स्थापित शृङ्गेरी मठ पर इनकी दया

१ एपि० इ० भा० ३ पृ० १२४। २ वही—पृ० ४१
३ एपि० कर० भा० ६.

और शैव आचार्यो के प्रति विशेष आस्था थी । हरिहर ने अपने समग्र भाइयो को साथ लेकर विजय के उपलक्ष मे सन् १३४६ ई० में शृङ्गेरीमठ की यात्रा की और वहाँ के अध्यक्ष श्रीविद्यातीर्थ स्वामी को विपुल भूमिदान मे दी [१]। बुक्क ने भी कई बार वहाँ की यात्रा की और दान दिया। हरिहर ने कई गाव दान मे दिये और अपने गुरु के नाम पर 'विद्यारण्यपुर' की स्थापना की । इससे गुरु के प्रति इनका गाढ अनुराग तथा आदर प्रतीत होता है। सगम राजाओं के कुल गुरु सुप्रसिद्ध शैवाचार्य काशीविलास क्रियाशक्ति थे । इसलिए लेखों में इन्हे 'राय राजगुरु मण्डलाचार्य' अथवा 'राय राजगुरु पितामह' कहा गया है [२]। ये शिवाद्वैत के प्रतिपादक तथा माधव मत्री के प्रधान शिष्य थे। ये भगवान् त्र्यम्बक की उपासना किया करते थे । श्रीकण्ठनाथ दूसरे प्रधान शैवाचार्य थे जो राजा सगम द्वितीय के पूजनीय आचार्य थे। इससे प्रकट होता है कि सभी राजा शैवमत के अनुयायी थे। सगम द्वितीय के विट्रगुण्ठ लेख मे ये राजा के गुरु तथा साक्षात् शिवरूप माने गए हैं[३] —

डा० कृष्णस्वामी का मत है कि उस समय शैवमत के अनेक केन्द्र थे। वीर शैव या लिङ्गायत मत का कर्नाटक में प्रचार था। वीर शैव सम्प्रदाय के अनेक अनुयायी थे। मैसूर मे मलनद जिला तथा श्रीशैलम् शैव सम्प्रदाय के प्रधान केन्द्र थे[३]। मैसूर तथा कोल्हापुर रियसतो की अधिक जनसख्या शैव थी। कनारी तथा तेलुगु देश मे वीर शैवों का निवासस्थान रहा। इन लिंगायतों में वैदिक यज्ञ, उपवास, तीर्थ-यात्रा का कोई महत्त्व न था। जगमों की पूजा को विशेष महत्त्व दिया गया था। इनमें जाति भेद के लिए भी कोई स्थान न था। श्राद्ध की रीति का प्रचार न था । उनके

---

१ हेरास—बिगिनिंग आफ विजयनगर

२ ए० कर० १२ भा० पृ० १३. मैसूर आ० रि० १९१२ पृ० ४७

३ एपि० इंडि० भा० ३

४ कन्ट्रीब्यूशन आफ साउथ इंडिया पृ० ३१२।

आठ प्रधान व्रत थे (१) गुरु (२) लिग (३) जगम (४) विभूति (५) रुद्राक्ष (६) पदोदक (७) प्रसाद तथा (८) पचाक्षर मंत्र[1]।

प्रायः सौ वर्षों तक दक्षिण मे शैवमत की प्रधानता बनी रही। विजयनगर नरेशों के समय में अप्पयदीक्षित नाम के विद्वान् परम शैव थे।

शैवमत की तरह वैष्णवमत को राजाश्रय प्राप्त न था। चोल राजा कुलतग परम शैव था, अतः उसके भय से वैष्णव लोग मैसूर मे भाग गये।

वैष्णव-धर्म जिस विष्णुवर्धन ने रामानुजाचार्य को आश्रय दिया तथा वैष्णव मत के प्रसार में सहायता की थी वह होयमल-वंश का शासक था। होयसल-वश के उत्तराधिकारी विजयनगर राजा भी शैव थे। अतः राजकीय आश्रय न पाने से वैष्णवों की दशा अच्छी न थी। मध्व स्वामी ने उडुपि मे अपने मठ की स्थापना की। अपने मत की प्रतिष्ठा और वृद्धि के लिए यह अद्वैतवादियों से शास्त्रार्थ भी किया करते थे। इसी समय वैष्णव तथा माध्व साम्प्रदाय के बडे-बड़े आचार्य पैदा हुए। विजयनगर काल ही मे रामानुज सम्प्रदाय में लोकाचार्य, ताताचार्य और वेदान्तदेशिक जैसे विद्वान् उत्पन्न हुए। माध्व सम्प्रदाय मे अक्षोभ्यमुनि और जयतीर्थ जैसे कट्टर द्वैतवादी विद्वानों का जन्म इसी काल में हुआ। रामानुजी वैष्णवों पर यवन आक्रमण से ऐसी विपत्ति आ गई कि मन्दिरों से देव-मूर्तियों को लेकर आचार्यों को भागना पड़ा। मन्दिर शून्य हो गए। साधारण प्रजा तथा आचार्यों को कोई राजकीय आश्रय न मिला। वैष्णव लोगो की अत्यन्त दुर्दशा होने लगी। इन सब घटनाओं का वर्णन वैष्णव आचार्यों द्वारा रचित पुस्तकों मे मिलता है। अनन्ताचार्य रचित प्रपन्नामृत, केशवाचार्य द्वारा रचित 'आचार्य-सुक्ति मुक्तावली' व जैमिनि-भारत तथा महाराजा सालुव नरसिंह कृत 'रामाभ्युदय' आदि ग्रथो मे इन बातों का उल्लेख मिलता है।

उस समय श्रीरग नाथ की विशेष यात्रा व उत्सव को देख कर वैष्णव

---

१ वैष्णविज़्म् शैविज़्म् एण्ड माइनर सेक्ट्स पृ० १३५

धर्म के प्रति जनता के अनुराग का अनुमान किया जा सकता है। दक्षिण भारत में वैष्णव मत का भी जोर था। वैष्णव आचार्य लोकाचार्य तथा वेदान्तदेशिक के विद्यमान होते जनता को किसी बात की आशका न थी। विजयनगर की स्थापना से पूर्व यवनों ने दक्षिणी भारत मे आक्रमण किया। सन् १३२८ में यवनों ने चोल राज्य में स्थित श्रीरगम् पर आक्रमण कर दिया। मुसलमानों के आक्रमण की खबर पाकर उस स्थान से लोग भागने लगे। लोकाचार्य श्रीरगनाथ की प्रतिमा को लेकर तथा वेदान्त-देशिक वैष्णव धर्म की प्रधान पुस्तक 'श्री भाष्य श्रुति प्रकाशिका' के साथ साथ यादवों की राजधानी देवगिरि को भाग गए। मैसूर में ये प्रसिद्ध वैष्णव सत भिक्षाटन से अपना जीवन व्यतीत करते थे। दक्षिणी भारत में यवन शासन स्थापित हो गया। मदुरा में मुसलमान शासक राज्य करने लगे। श्रीरगम् पर उनका कब्जा हो गया। विजयनगर के मन्त्री माधव ने वैष्णव आचार्यों की दुर्दशा देख कर उनको बुला भेजा, परन्तु उन्होंने श्रीरगनाथ की सेवा के अतिरिक्त किसी अन्य की शरण मे जाना पसन्द न किया[1]। ऐसी परिस्थिति में विजयनगर के शासक महाराज बुक्क ने कुमार कम्पण तथा सेनापति गोपणार्य को दक्षिण में यवनो पर विजय करने के लिए भेजा। कुमार कम्पण ने समस्त दक्षिणी भाग से यवनों को निकाल भगाया। कम्पण ने काची के राजा चम्पराय को हराया। इसने मदुरा के मुसलमान शासक अलाउद्दीन सिकन्दर शाह को सन् १३७७ ई० में मार डाला[2]। उस प्रात से यवनों को भागना पड़ा। विजयी कुमार कम्पण की स्त्री गगदेवी ने 'मधुरा-विजयम्' या 'कम्पण चरितम्' नामक महाकाव्य लिख कर यवनो के पराजय को अमर कर दिया है[3]। जिंजी के गवर्नर गोपणार्य ने भी कम्पण की सहायता की। कहा जाता है कि भगवान् के स्वप्न देने

---

१ कृष्णस्वामी—कन्ट्रीब्यूशन आफ साउथ इंडिया पृ० २११।

२ हेरास-आरविदु डाइनेस्टी पृ० १०५।

३ कृष्णस्वामी-सोर्सेज़ आफ विजयनगर हिस्ट्री।

पर पवित्र मदुरा पीठ से गोपणार्य ने यवनों को निकाल बाहर किया। सालुव नरसिंह के पूर्वज सालुव मन्त्री ने भी इसमें सहायता की थी। वे परम वैष्णव थे। उन्होंने श्रीरगम् मे एक सहस्र शालिग्राम के प्रतिमाओं की स्थापना की तथा आठ गाव दान मे दिये[1]। देश मे शाति स्थापित होने पर वेदान्त देशिक लौट आये और लोकाचार्य के साथ भगवान् की मूर्त्ति की पुनः स्थापना की इन्होंने गोपण नायक की प्रशसा शतमुख से की है। वेदान्त देशिक ने एक पद्य मन्दिर के द्वार पर उत्कीर्ण कराया जो प्राचीन घटना का स्मरण दिलाता है।

कुमार कम्पण ने मदिरों के ताले खुलवाए। देव मूर्त्तियों का पुनः संस्कार कराया। अनेक गाव तथा द्रव्य दान मे दिया। वेदान्त देशिक ने यही अपना शेष जीवन व्यतीत किया। यह एक प्रसिद्ध दार्शनिक तथा कवि था। इसने धर्म-प्रचार मे लगे रहने पर भी १२० ग्रथो की रचना की। इसके ग्रंथ प्राकृत तथा संस्कृत मे मिलते हैं। 'यादवाभ्युदय' इनका प्रसिद्ध ग्रथ है। श्री सम्प्रदाय का जो वर्तमान रूप दिखाई पड़ता है उसका बहुत कुछ श्रेय इन्हीं को है। माध्वों ने उडुपि को अपना केन्द्र बनाया[2]। पद्रहवी सदी से वैष्णव आचार्यो के प्रभाव से इस मत को राजाश्रय प्राप्त होगया। शासक विरुपाक्ष सर्व प्रथम वैष्णव मत का अनुयायी हुआ। उसी समय से उस वश के समस्त नरेश वैष्णव धर्मावलम्बी हो गये। उनमे धार्मिक सहिष्णुता का भाव अत्यधिक था। विष्णु के अवतार विठोबा की भी पूजा होती थी। अच्युत राय ने विट्ठलेश्वर के मन्दिर को दान दिया[3]। तुगभद्रा के किनारे विठोबा का विशाल मदिर था जहा प्रति वर्ष सहस्रों लोग यात्रा करने आते थे। वीर शैवों के सिद्धान्तो के प्रतिकूल ये लोग उपवास, यज्ञ तथा तीर्थ यात्रा को प्रधानता देते थे। विजयनगर के शासक अपने प्रातों में वैष्णव नायकों को शासन के लिए

---

१ नरसिंह–रामाभ्युदयम्। २ कृष्णस्वामी— साउथ इंडिया पृ० ३१२.
३ इंडि० एंटि० भा० ६४ पृ० २२२

भेजते थे। मदुरा के नायक परम विष्णुभक्त थे। सन् १५५६ ई० में सदाशिव ने मंदिर के निमित्त तथा पूजा के व्यय के लिए पृथ्वी दान में दी [1]। मदुरा के विश्वनाथ तथा करणप्पा नायकों ने विष्णु मंदिर में छत्र, चामर तथा फूल आदि चढाने के निमित्त कई-ग्राम दान किये [2]। रामराय परम वैष्णव था अतः उसने अपने वश में विभिन्न व्यक्तियों के नाम करण के लिए अवतारों के नाम का प्रयोग किया। माधवाचार्य ने रामराय तथा ताताचार्य की सहायता से चिदम्बरम् मे विष्णु मंदिर स्थापित किया। जिसको शैव मतानुयायी चोल राजाओं ने नष्ट करने का प्रयत्न किया था [3]। तिरुमल ने गीत गोविन्द की टीका लिखी और अनेक ग्राम दान में दिये [4]। उसके सिक्के उसके वैष्णव मतानुयायी होने के ज्वलन्त उदाहरण हैं [5]। समस्त दान भगवान् (विरुपाक्ष) के सन्मुख किया जाता था [6]। रामराय ने मुसलमानों के ध्वंस किये हुए दो मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया [7]। विजयनगर राजाओं के भगवान् 'विरुपाक्ष' कुल देवता थे। वेंकट द्वितीय के समय से विजयनगर राज्य की मुद्राओं पर 'विरुपाक्ष' उत्कीर्ण न होकर 'श्रीराम' उत्कीर्ण किया जाने लगा [8]। यही कारण है कि विजयनगर राजा का मंगल-दान पत्र राम भगवान् की स्तुति से प्रारम्भ किया गया है [9]। कहने का तात्पर्य यह है कि राजा वेंकट के समय से विष्णु की पूजा न होकर उनके अवतार राम की पूजा प्रारम्भ हो गई। वेंकट के सोने के सिक्कों पर (वेंकट पति पगोडा) सामने की ओर विष्णु की आकृति बनी है तथा दूसरी ओर नागराक्षरों में 'श्री

---

१ एपि० इंडि० भा० ४ पृ० ५। २ वही भा० ६ पृ० ३४१

३ कृष्णस्वामी—ऐन्शेंट इण्डिया पृ० ३२०

४ रंगाचार्य भा० ३ पृ० ६०६। ५ हेरास—आरविदु पृ० ५४५

६ एपि० इंडिका भा० १६ पृ० २५६। ७ एपि० कर० भा० ६

८ कृष्णस्वामी—सोर्सेज़ पृ० ७३।

९ बटरवर्थ—नेलोर लेख भा० पृ० २६

वेंकटेश्वराय नम लिखा है[1]। ये सब उल्लेख विजयनगर मे वैष्णव-धर्म के प्रचार की पुष्टि करते हैं। 'प्रपन्नामृतम्' के कथनानुसार ताताचार्य के बाद अनेक व्यक्ति वैष्णव हो गए[2]। वेंकट द्वितीय के राज्य काल मे शैवों तथा वैष्णवो में सदा वाद-विवाद होता रहा। वैष्णव ताताचार्य तथा शैव मतानुयायी अप्पय दीक्षित मे शास्त्रार्थ हुआ। यह वाद-विवाद ११ दिन तक चलता रहा। विजय तीर्थ ने शैवो के विरोध मे लिखा और अप्पय दीक्षित ने वैष्णव-मत का खण्डन किया[3]। यह विरोध तामिलदेश मे अधिक समय तक रहा परन्तु वेंकट द्वितीय के बाद आपस के झगडे शात हो गये। शैव मत की अवनति होने लगा और वैष्णव मत प्रधान हो गया।

धार्मिक-सहिष्णुता

परन्तु विजयनगर के शासक वैष्णव होते हुए भी धार्मिक सहिष्णुता के पवित्र भाव से युक्त थे। जैसे प्राचीनकाल मे गुप्त सम्राट् (भागवत) होते हुए भी धार्मिक सहिष्णुता की भावना रखते थे ठीक ऐसी ही दशा विजयनगर के शासकों की थी। ये राजा वैष्णव होते हुए भी अपने राज्य मे अन्य धर्मावलम्बी नायक तथा सेनापति रखते थे[4]। लेखों मे वर्णन मिलता है कि इकेरी का नायक शैव था। उसने अनेक जैनो को शैव मत मे दीक्षित किया[5]। इसने शिव-मदिरो को दान दिया[6]।

दक्षिण भारत मे चन्द्रगुप्त मौर्य के समय मे भद्रबाहु ने जैनमत का

---

१ ब्राउन कायन्स आफ इंडिया पृ० ६४; इंडि० एंटि० भा० २० पृ० ३०२

२ कृष्णस्वामी-सोर्सेज़ पृ० २५१

३ गोपीनाथराव—एपि० इंडि० भा० १२ पृ० ३४६

४ एपि० इंडि० भा० ४ पृ० २७१

५ इंडि० एण्टि० भा० २ पृ० ३५३

६ एपि० कर० भा० ४ पृ० १३५

प्रचार किया। जैन धर्म के आचार्य इस मत को फैलाने के लिए समय-समय पर प्रयत्न करते रहे। जैन धर्म का प्रचार कर्नाटक मे विशेषकर हुआ। कन्नड़ साहित्य की उन्नति मे जैनियो का प्रधान हाथ था[1]। तामिल भाषा में भी जैन मत के अनेक ग्रन्थ मिलते हैं। विजयनगर के शासको ने इस मत का कभी विरोध नहीं किया। लेखो में वर्णन मिलता है कि विजयनगर की राजसभा मे जैनियों की पूर्ण प्रतिष्ठा थी। इनको ऊँचे-ऊँचे पद भी मिलते थे। बुक्क की सभा में वैचण्प नामक एक जैन मन्त्री भी था। मैसूर के श्रवण वेलगोला लेख मे इसका उल्लेख मिलता है[2]। हरिहर द्वितीय का प्रसिद्ध मन्त्री इरुगप्प भी जैनी था[3]। इरुगप्प न्याय-कुशल तथा चतुर पुरुष था। इसने 'नानार्थ-रत्नमाला' नामक कोष की रचना की[4]। इससे भी अधिक जैन धर्म का समर्थन इस घटना से किया जा सकता है कि सगम के वशज देवराय प्रथम ने भीमादेवी नामक जैन स्त्री से विवाह किया था। राजाओं ने जैन मन्दिरों को दान दिया। कांची के पास विजयनगर राज्य मे इसने एक विशाल जैन मन्दिर का निर्माण कराया[5]। इसे 'तेलिग' मन्दिर के नाम से पुकारते थे[6]। श्रवण वेलगोला के लेख से पता चलता है कि इसके दो पुत्र विजयनगर सेना में सेनापति के पद पर थे[7]। भूपाल ने जैन मन्दिर तैयार कराया। वेनूर मे स्थित जैन साधु भुजबल की विशाल मूर्त्ति अब तक वर्तमान है[8]। ये सब बातें सिद्ध करती हैं कि वैष्णव होते हुए भी विजयनगर नरेशो में धार्मिक सहिष्णुता की भावना बड़ी प्रबल थी। लेखों मे इन राजाओं के लिए 'चतु:-समय-समुद्धरण' की उपाधि मिलती है[9]। इन्होंने किसी धर्म की

जैनमत

---

१ राइस—हिस्ट्री आफ कनारीज़ लिटरेचर पृ० १७-४०। २ एपि० इण्डि० भा० ८ पृ० १७। ३ सा० इ० इ० भा० १ पृ० १६१। ४ वही पृ० १५६। ५ एपि० इण्डि० भा० ७ पृ० ११५। ६ सा० इ० इ० भा० १ पृ० १५६। ७ एपि० इण्डि० भा० ८ पृ० २२।
८ सेवेल—ए फार० इम्पा० पृ० १४। ९ ए० कर० भा० ५२।

हानि नही पहुँचाई। ये लोग चोलभूपाल विष्णुवर्धन के समान कट्टर न थे। जिसने वैष्णवों को कोल्हू में दबा दिया था। ये उदार-चरित शासक थे। इन राजाओं ने शैव तथा जैनियों को सहायता दी। माधव मन्त्री ने वेदान्त देशिक को बुलाया। हरिहर द्वितीय ने जिस प्रकार—श्री शैलम् के शिव-मन्दिर को तथा श्रीरगम् के वैष्णव मन्दिर को दान दिया, उसी प्रकार अपनी उदारता एव विशाल हृदयता का भी परिचय दिया[1]। इससे पूर्व बुक्कराय ने भी जैनियो से वैष्णवों के समान ही व्यवहार किया तथा इन धर्मों के पारस्परिक द्वेष को शान्त किया।

मैसूर राज्य में जैन मत का प्रचुर प्रचार था। वही वैष्णव लोग भी अपने मत का प्रचार करते थे, अतएव समय-समय पर उनमे पारस्परिक झगड़ा हो जाया करता था। बुक्कराय के समय मे इस झगड़े ने वृहद् रूप धारण कर लिया। सब जैनियों ने मिल कर वैष्णवो की शिकायत राजा के पास की कि विष्णु भक्तो ने उनके धार्मिक कृत्यों में विघ्न उपस्थित किया है। जैनियों के कथनानुसार वैष्णव लोग दोषी थे। राजा बुक्क ने निष्पक्ष होकर इस मामले पर विचार किया। एक सभा बुलाई गई। इस सभा मे जैनियों तथा वैष्णवों के समस्त मुख्य प्रतिनिधि सम्मिलित थे। ये प्रतिनिधि श्रीरगम् तथा काची से सभा मे भाग लेने आए थे। राजा ने उस पर विचार कर यह घोषणा की कि जैनी सदा की भाति अपने गीत, वाद्य तथा कलश के अधिकारी रहेगे और यदि वैष्णवों द्वारा हानि पहुँचाई गई तो यह अत्यन्त अनुचित कार्य समझा जायेगा। इस घोषणा का सदा पालन होता रहा। बुक्क ने आज्ञा दी कि मैसूर प्रान्त के प्रत्येक घर से एक आना कर वसूल किया जाय। यह कर तिरुपति के अधिकारियों ने राज्य के जैनियों की अनुमति से ग्रहण किया। यह निश्चय हुआ कि इस आय से श्रावण वेलगोला मे वैष्णव लोग पूजा के लिए भृत्य नियुक्त करे और शेष धन जीर्ण जिनालयों के उद्धार में व्यय

---

१ एपि० इण्डि० भा० ३ पृ० ११६ नोट ११

किया जाय। इस नियम को कोई नष्ट न करे। ग्राम का कोई मुखिया इसे वन्द न करे। अन्यथा उसे ब्राह्मण तथा गो-हत्या का पातक लगेगा[1]। इस प्रकार बुक्कराय ने जैन-वैष्णव-सघर्ष को शान्त कर दिया और राज्य मे झगडा न होने पाया।

विजयनगर-राज्य मे पुर्तगालियों के स्वागत से पादरियो ने ईसाई-धर्म के फैलाने का प्रयत्न किया। सब से प्रथम मदुरा का ब्राह्मण अध्यापक ईसाई बन गया[2]। पादरी लोगो ने सैकड़ों हिन्दुओ को ईसाई बनाया परन्तु अपनी कूट नीति के कारण विजयनगर-राजाओ ने उनको नहीं रोका। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि विजयनगर के शासक हिन्दुओं को ईसाई बनाने में सहायक थे। उस समय हिन्दू सस्कृति तथा धर्म का इतना प्रभाव था कि विजयनगर राज्य मे पादरियों का कार्य सफल न हो सका। सेना मे हजारों मुसलमान नियुक्त किये गए थे। उनके लिए नगर में मसजिदे बनीं। राजा स्वय अपने सिंहासन के एक ओर कुरान को रखता था ताकि किसी भी मुसलमान को यह न ज्ञात हो कि शासक यवनों के मत से घृणा करता है। परन्तु इससे शासक इस्लाम-धर्म की वृद्धि का सहायक नही कहा जा सकता।

विजयनगर के राजा पहले शैव थे, फिर वैष्णव मतानुयायी हो गए। वे उदार थे। उनमे धार्मिक सहिष्णुता का भाव भरा था[3]। शासको मे कृष्णदेवराय तथा वेकट द्वितीय का नाम प्रधान रूप से उल्लेख किया जाता है। शिव तथा विष्णु के अतिरिक्त हनुमान, नरसिंह तथा गणेश की भी पूजा होती थी[4]। वेकट का नाम लेखों मे सदा उल्लिखित मिलता है जिसने रथ-यात्रा की प्रथा चलाई[5]।

---

१ एपि० कर० भा० ६ पृ० १८ एपि० कर० भा० २ पृ० ३४४

२ हेरास—आरविदु डाइनेस्टी पृ० ३७८

३ रायचौधरी—वैष्णवविजयम्, शैविजम् पृ० ११६

४ न० ३४६ आफ १६१३ विजयनगर कामेमोरेशन वालुम पृ० ४६

५ एपि० इण्डि० १६

: ६ :

आर्थिक-अवस्था

भारत में सदा से आध्यात्मिक उन्नति के साथ-साथ भौतिक क्षेत्र मे भी प्रचुर वृद्धि होती रही है। विजयनगर राज्य मे जनता वैभव से पूर्ण थी तथा सुख-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करती थी। समस्त राज्य मे निर्धनों की सख्या बहुत कम थी। सब लोग सुख की नीद सोते थे। विजय-नगर कालीन आर्थिक उन्नति का परिचय निम्न लिखित पक्तियों मे मिलता है।

यह देश सदा से कृषि-प्रधान रहा है। जनता का मुख्य व्यवसाय खेती रहा और है। राजा को सबसे अधिक कर भूमि से मिलता था।

कृषि

विजयनगर-साम्राज्य की स्थिति दक्षिण-भारत के पठारी भाग मे थी। यहा मैदान की कमी है। यहा की मिट्टी काली है। अतएव रुई, ज्वार तथा तिल की पैदावार अधिक मात्रा मे हुआ करती थी। प्रत्येक वर्ष भूमि का नाप होता था[1]। पृथ्वी को मापने वाले लट्ठ की लम्बाई ३४ फीट थी[2]। प्रत्येक भूमि को विभिन्न श्रेणियों में बाँटा जाता था। भूमि की सीमा निर्धारित की जाती थी तथा वामन या लोकेश्वर-प्रस्तर स्थिर रूप से सीमा पर गाड़ दिया जाता था[3]। सिचाई का प्रबंध अच्छा था। नहरे, तालाब तथा बाँध बाँधकर सिंचाई का काम सरलता से होता था। इन सब बातों का विवरण विजयनगर-कालीन लेखो मे मिलता है। राजाओं तथा मत्रियो ने भी नहरे खुदवाई[4]। नायक लोगों ने तालाब तथा कु ए तैयार कराये[5]। नहर खुदवाने के लिए सदा-

---

१ सालातोर-हिस्ट्री भा० १ पृ० १९७। २ एपि० रि० १९१६ पृ० १४१

३ एपि० कर० भा० ४ पृ० ४७। ४ इ० ए० भा० ३८ पृ० ६७

५ नं० ३८८ आफ १९१२

शिव ने पृथ्वी दान में दी। भोगवती नदी में बाध बॉधा गया जिससे सिंचाई कर के कृषि की उन्नति हो सके। गगदेवी ने 'मधुरा-विजयम्' में कावेरी नदी मे नहर खुदवाने का वर्णन किया है। कृष्णदेव राय ने अनेक बडे-बडे तालाब बनवाये। देवराय के मत्री ने हरिद्रा नदी के बाध की मरम्मत करवाई[1]। रामराय नहर के झगड़ो को स्वय देखता था और सीमा निश्चित करके झगड़े को शात कर देता था[2]। ये सब बाते यह सिद्ध करती हैं कि राजा तथा प्रजा मे कृषि की उन्नति करने के लिए सिंचाई के प्रत्येक साधनो (नहर तालाब, और बाध आदि) से लाभ उठाने की उत्कठा थी। इसके लिए दोनो ने योग दान दिया। विजयनगर-राज्य के पश्चिमी तथा पूर्वी किनारों पर चावल की खेती अधिक होती थी। चावल, जव, गेहूँ, तथा रुई की खेती हुआ करती थी और यह पैदावार बाहर भी भेजी जाती थी।

व्यापार

कृषि के पश्चात् जनता का प्रधान व्यवसाय व्यापार था। प्रत्येक व्यक्ति व्यापार कर सकता था। बाजार मे दूकान खोल कर सामान स्वतत्रतापूर्वक बेच सकता था। विजयनगर-राज्य के बाजार मे सामान बेचने वाले दूकानदार से कर वसूल किया जाता था। अतः व्यापार किसी एक जाति या व्यक्ति-विशेष के हाथ में न था। विजयनगर में पुर्तगालियों तथा अरब के लोगों के साथ व्यापार करने से पर्याप्त लाभ होता था। विजयनगर-साम्राज्य की स्थापना से पूर्व ही कारोमण्डल के किनारे पर अरब वालो ने व्यापार के निमित्त बस्तिया बसाईं। इसीलिए अमीर खुसरो ने लिखा है कि पूर्वी किनारे पर मलिक काफूर के आक्रमण से पहले ही मुसलमान आबाद हो गए थे[3]। इब्नबतूता का कथन है कि गयासुद्दीन दगमनी मदुरा का सुल्तान हो गया था। दक्षिणी भारत मे अरब तथा यहाँ के निवासियों के व्यापारिक ससर्ग के बढने से

---

१ राइस-मैसूर इन्स० भूमिका पृ० १३२। २ रंगाचार्य-भा० १ पृ० २६.
३ इलियट–हिस्ट्री भा० ३ पृ० ६०।

खत्रून तथा लवेस नामक दो नई जातिया पैदा हो गई थी[1] । कहने का तात्पर्य यह है कि विजयनगर की स्थापना तथा उन्नति के साथ ही साथ दक्षिणी-भारत में विदेशियों का व्यापार भी अधिक उन्नत हो रहा था । शासक स्वय व्यापार में दिलचस्पी रखते थे । कृष्णदेव राय ने आमुक्तमाल्यम् ग्रन्थ में अनेक राजनैतिक प्रश्नो पर विचार किया है। इस ग्रन्थ में राजा के विभिन्न कार्यो में से राज्य की आर्थिक दशा को सुधारना भी मुख्य कर्त्तव्य बतलाया गया है। उसका कहना है कि शासक स्वय व्यवसाय तथा शिल्प को प्रोत्साहन दे तथा विदेशी व्यापारियो की ओर से सतर्क रहे। राजा का ध्यान सदा इन बातो की ओर होना चाहिए[2] । इसलिए व्यापार की अनेक सस्थाये तथा केन्द्र स्थापित किये गये थे। इस तरह विजयनगर-साम्राज्य मे हम्पी (राजधानी) पेनुगोड़ा, उदयगिरि चन्द्रगिरि, नेलोर और मदुरा, आदि अनेक शहर व्यापारिक केन्द्र बन गये थे। इसके अतिरिक्त अन्य नगर राजनैतिक कारणो से महत्त्वपूर्ण थे। रायचूर और मुद्गल मे किले बने थे । युद्ध के कारण इनकी प्रधानता हो गई थी अन्यथा ये साधारण नगर थे । इस भाग मे कपास और तिल की अधिक पैदावार होती थी। अतएव कई नगरों में सूती कपडे के कारखाने खुले थे । विजयनगर के लेखों मे गाठों (कपडे की गठरी) के ऊपर कर लगाये जाने का वर्णन मिलता है जो सूती कपडे के व्यवसाय का द्योतक है[3] । तेल के कारखानो पर भी कर लगाने का वर्णन प्रशस्तियों मे मिलता है[4] । इससे यह सिद्ध होता है कि विजयनगर साम्राज्य के बडे-बडे नगर व्यापारिक उन्नति तथा कारखानो के केन्द्र होने के कारण प्रसिद्ध थे ।

समस्त विदेशी यात्रियो ने एक मत से विजयनगर के उन्नत व्यापार

---

१ ताराचन्द–इन्फ्लुऐन्स आफ इस्लाम पृ० ४२ ।

२ आमुक्तमाल्यम् सर्ग ४ श्लोक २४५ ।

३ एपि० रि० १९११ पृ० ८३ । ४ एपि० इंडि० भा० १८ पृ० १३९

तथा घनी आबादी का उल्लेख किया है। पुर्तगाली तथा ईरानी लोगो ने साम्राज्य के अनेक शहरों का वर्णन किया है। मोरलैंड के अनुमान से राज्य की आबादी ८० लाख के करीब थी। पश्चिमी किनारे तथा पठारी भाग मे बहुत से घने शहर बसे हुए थे। साम्राज्य के समस्त व्यापार को देख कर विदेशी लोग आश्चर्यित हो जाते थे। मोरलैंड का कथन है कि उस समय व्यापार मे भारत इतनी अधिक उन्नति कर चुका था कि उसकी समता वर्तमान पश्चिमी योरप (जो कारखानों का केन्द्र है) से भी नहीं की जा सकती[1]। इससे यह सहज ही में अनुमान किया जा सकता है कि कारखानों में बहुत बडे पैमाने पर काम होता था। कालिकट सूती कपड़ो का केन्द्र था। गोआ मे बारीक कपडे बुने जाते थे। महीन सूती कपडे, कच्चा रेशम तथा कई प्रकार के रगीन कपडे विजयनगर के बाजारों मे बिका करते थे।

अब्दुर रज्जाक ने साम्राज्य की राजधानी का वर्णन किया है कि हम्पी मे राजा का महल, नायको के लिए ऊची अट्टालिकाए तथा बड़े कर्मचारियों के लिए सुन्दर भवन बने हुए थे। राजमहल चहारदीवारी से घिरा हुआ था। ये विशाल इमारते कई मजिल की होती थीं। राजा तथा राज-कर्मचारियों के आने जाने का मार्ग भिन्न होता था। चारों तरफ पहरेदार बैठाये जाते थे। ये भवन चारों तरफ से बरामदा से युक्त होते तथा लम्बे भव्य खम्भो से सुशोभित थे। कोई-कोई कमरा २०×६ अथवा २०×१२ फीट का बनता था। एक कमरे को तैयार करने में तीन सौ वाराट (सिक्का) व्यय किया जाता था। कमरों की फर्श तथा दीवारे मूल्यवान् पत्थर से जडी होती थी। किसी-किसी कमरे के भीतर हाथी दात भी जड़ा होता था। महल के खम्भों मे नाना प्रकार की नक्काशी की जाती थी। महल के कमरों के भीतर राजा की आज्ञा से अन्य देशवासियों के भी चित्र बने होते थे, जिससे रानियों को विभिन्न देशों के लोगों की रहन-सहन और

---

१ मोरलैंड- इण्डिया एट दि डेथ आफ अकबर पृ० १५५।

पहनावा का ज्ञान हो जाय[1]। इसी तरह नाट्य-शाला तथा नृत्य-गृह भी तैयार किये गये थे। नायकों के भी भवन आभूषित किये जाते थे। बारबोसा ने भी ऐसे विशाल एव भव्य भवनो को विजयनगर मे देखा था[2]। इस प्रकार विजयनगर की राजधानी एक दिव्य-नगरी थी। रामनवमी के समय महल अच्छी तरह से चित्रित किया जाता था, जिसमे बैठकर राजा उत्सव के समस्त कार्यों को सम्पन्न करता था। राज-सभा के लिए चालीस खम्भों वाला एक विशाल-भवन भी बनवाया गया था। एक लेख मे यह वर्णन मिलता है कि विजयनगर के मकान कई मजिलों के बनाये जाते थे। मनुष्य की आर्थिक स्थिति के अनुकूल ही भवनों की सुन्दरता होती थी। परन्तु प्रत्येक मकान में काफी जगह खुली रहती थी। मकान के चारों तरफ बरामदा होता था। इसके अतिरिक्त मकानो के चारों ओर चहार दीवारी हुआ करती थी[3]।

अब्दुल रज्जाक ने लिखा है कि राजधानी (विजयनगर) को तीन भागों मे विभक्त किया गया था। पहले भाग मे बाजार तथा विरुपाक्ष का मन्दिर स्थित था। दूसरे भाग मे राजमहल तथा ऊचे अधिकारियों के ठहरने या निवास करने के लिए सुन्दर भवन बने थे। इसी भाग मे हजाराराम का मन्दिर भी तैयार किया गया था। तीसरा भाग 'नागलापुर' के नाम से प्रसिद्ध था। यह सबसे पीछे बसाया गया था। इस भाग के निर्माण करने का श्रेय कृष्णदेवराय को दिया जाता है। इस प्रकार राजधानी एक सुन्दर तथा विशाल नगरी थी।

विजयनगर राज्य मे व्यापार स्थल तथा जल दोनो मार्गों से हुआ करता था। स्थलमार्ग तो दक्षिण भारत में ही सीमित था परन्तु जलमार्ग अधिक विस्तृत था। राज्य की स्थिति पठारी भाग में थी। अतएव

---

१ सेवेल—ए फार० इम्पायर पृ० २६३ और २८८–६

२ डिम्रूयल—हिसट्रि० भाग १ पृ० २०८

३ एपि० कर० भाग १० पृ० ५३

लम्बे तथा अधिक महत्त्वपूर्ण स्थल मार्ग न थे। उस समय में मुसलमान तथा पुर्तगाली लोगों से विजयनगर का व्यापारिक सम्बन्ध था। अत' कृष्णा नदी के दक्षिण मे मदुरा, नेलोर और रामेश्वरम् तक व्यापार के मार्ग बने थे।

व्यापारिक मार्ग

विजयनगर की प्रत्येक राजधानी से गोआ का सीधा सम्बन्ध था और दोनों के बीच में विशेष रूप से सुन्दर सडके तैयार की गई थीं। पुर्तगाली लोग हम्पी को सामान लेकर आते तथा विजयनगर के व्यापारी अन्दर का माल गोआ अथवा दूसरे बन्दरगाहों तक स्थल-मार्ग से ले जाते थे। स्थल के मार्ग से विजयनगर में आने वाली वस्तुओं का पता उन पर ली जाने वाली चुंगी (कर-ग्रहण) के नियम से लगता है। राज्य के भीतर तिल, दाल, रुई, इमली, मसाले, मिर्च, चन्दन, कच्चा माल, रुई का सूत, ऊन, नमक, पान फल आदि वस्तुओं पर कर लगाया जाता था[1]। जब एक वस्तु एक शहर से दूसरे शहर को जाती थी तब उस पर चुंगी लगाई जाती थी और राजा को इन वस्तुओं के व्यापार से पर्याप्त कर मिलता था[2]। ये चुंगीघर नगर के राजमार्गों के किनारे बने होते थे। चुंगी के प्रधान कर्मचारी को 'नायक' तथा उससे छोटे कर्मचारी को 'अधिकारी' कहते थे[3]। लेखों में यह वर्णन मिलता है कि चुंगी बडी सावधानी से वसूल की जाती थी[4]। इसको 'मार्ग-आदायम्' के नाम से पुकारते थे[5]। इन सबसे प्रकट होता है कि विजयनगर में व्यापार स्थल-मार्ग से भी पर्याप्त मात्रा में होता था। आने जाने के लिए नदी-मार्ग तथा सडकें थीं जिससे व्यापार सुगमता से होता था।- सोलहवीं शताब्दी में पुर्तगालियों का व्यापार भारत में बहुत बढ गया था। हिन्द-महासागर

---

१ एपि० इंडि० भा० २ पृ० १६८। एपि० कर० भा० ८ पृ० ८१

२ सालातोर—विजयनगर हिस्ट्री भा० १ पृ० २२१

३ एपि० कर० भा० ११ पृ० १२५

४ वही भा० ८ पृ० ११७

५ मैसूर गजेटियर भा० १ पृ० ५७६

मे समस्त व्यापार इन्हीं के हाथो में था। कुछ शक्ति बढने पर इन लोगों ने देश जीतने की अभिलाषा की। इसी विचार को लेकर सन् १५४६ ई० में कृष्णदेव राय की मृत्यु के पश्चात् पुर्तगालियों ने तिरुपति के मदिर पर आक्रमण कर दिया। यह मदिर वैभव तथा असख्य धन के लिए प्रसिद्ध था। परन्तु विजयनगर की जल तथा स्थल सेना के सामने विदेशी ठहर न सके और अन्त मे पराजित हो गये। पुर्तगाली गवर्नर ने विजयनगर के शासक से मैत्री स्थापित करते हुए एक सन्धि की जो राजनीतिक सन्धि न होकर 'व्यापारिक-सन्धि' कही जा सकती है। विजयनगर के राजा रामराय का दूत गोआ गया वहा उसका अपूर्व स्वागत किया गया। पुर्तगाली अर्थ-सचिव विजयनगर की राजधानी (हम्पी) में आया और नीचे लिखी शर्तों पर सन्धि की गई।

(१) दोनों शासकों में पारस्परिक मैत्री का भाव रहेगा, जिसके कारण व्यापार करने मे काफी सुविधा हो।

(२) गोआ के गवर्नर को गोआ मे बिकने वाले अरब के सब घोड़ों को विजयनगर राजा के ही हाथों बेचना होगा।

(३) दोनों एक दूसरे का माल खरीदेगे।

(४) विजयनगर के व्यापारी अपने बन्दरगाह पर लोहा, चन्दन और खाद्य सामग्री को ले आवेगे और पुर्तगाली उन्हें खरीदेगे।

(५) विजयनगर राज्य में बने हुए कपडे पुर्तगालियों को खरीदना होगा और इसके बदल मे ताँबा, मूँगा, पारा तथा चीन का रेशम देना पडेगा।

(६) विजयनगर के राजा किसी भी मुसलमानी जहाज को बन्दरगाह पर लगर डालने की आज्ञा न देगे। यदि कोई जहाज आता दिखलाई पडे तो उसे पकड़ कर पुर्तगाली गवर्नर को सुपुर्द करेगा।

(७) आदिलशाह को दोनों शत्रु समझेगे। उससे युद्ध होने पर एक दूसरे की सहायता करेगा।

(८) पश्चिमी घाट में गोआ के पास की भूमि पुर्तगाली गवर्नर को दी जायेगी।

इस सन्धि पत्र पर पुर्तगाली गवर्नर तथा विजयनगर के राजा ने हस्ताक्षर किये[१]। विजयनगर के राजा को उस समय घोडे, कपडे तथा मूल्यवान वस्तुए भेट में मिलीं। परन्तु यह सन्धि अधिक समय तक न कार्यान्वित न हो सकी और पुनः दोनो में व्यापारिक प्रतिस्पर्धा के कारण शत्रुता हो गई। परन्तु यह बात विवाद रहित है कि विजयनगर के व्यापारी राज्य के अन्दर का माल स्थलमार्ग से बन्दरगाह तक ले जाते थे। स्थल व्यापार मे पुर्तगालियो की प्रधानता थी। विजयनगर के व्यापारी बड़ी सख्या मे सूती कपडे बेचते थे। यह सामान तीस प्रतिशत के लाभ के हिसाब से बेचा जाता था। पुर्तगाली भी अरबी घोड़ो को बेच कर अधिक लाभ उठाया करते थे। अपने सामान के बदले में वे सदा मोती, सोना और हीरे आदि को खरीद कर ले जाते थे। इनकी व्यापारिक-सुविधा के लिए गोआ से विजयनगर तक अच्छा मार्ग तैयार किया गया।

शत्रुओं पर आक्रमण करने तथा व्यापार की सुविधा के लिए विजयनगर मे जल-सेना का एक पृथक् विभाग था। विजयनगर शासकों के पास करीब साठ अच्छे बन्दरगाह थे। जिनके द्वारा पूर्वी तथा पश्चिमी देशों से सामुद्रिक व्यापार होता था। अब्दुल रज्जाक ने विजयनगर साम्राज्य के तीन सौ बन्दरगाहों का उल्लेख किया है। उसके कथनानुसार कालीकट मुख्य बन्दरगाह था और गोआ से चीन तक अच्छी तरह से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो गया था। डा० कुमार स्वामी ने लिखा है कि पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दियों मे यूरोप और भारत में सामुद्रिक व्यापार प्रचुर परिमाण मे होता था और उस समय विशाल एव अच्छे पोत भी वर्तमान थे[२]। लेखों मे बन्दरगाहों पर लिये जाने वाले कर 'स्थल-आदायम्'

जल-मार्ग

---

१ सेवेल-ए फा० इम्पा० पृ० १८७

२ आर्ट एण्ड क्राफ्ट इन इंडिया पृ० १६६

(Import Duty) तथा 'मामूल-आदायम्' (Export Duty) का वर्णन मिलता है[1] जिससे यह पता चलता है कि जल-मार्ग से भी व्यापार पर्याप्त मात्रा मे होता था। विजयनगर तथा पुर्तगाली शासकों की व्यापारिक सन्धि से यह प्रकट होता है कि देश के अन्दर का माल व्यापारी बन्दरगाह तक ले जाते थे और वहा विदेशी उसे खरीद लेते थे। देश की भौगोलिक स्थिति के कारण विजयनगर के शासको को घोड़ो की आवश्यकता रहती थी। प्रति वर्ष हजारों घोडे खरीदे जाते थे। घोडों का व्यापार पुर्तगालियो के हाथ मे था और वे लोग इस व्यापार से बहुत धन पैदा किया करते थे[2]। इस प्रकार पश्चिमी जल-मार्ग मे पुर्तगालियों की प्रधानता रही। पूर्वी अफ्रिका, अरब तथा ईरान का व्यापार सीधे भारत से होता था। विजयनगर के बने कपडे बिकने के लिए बाहर जाया करते थे। भारत मे मलाबार के किनारे से पहले से ही मिश्र तथा एशिया के पश्चिमी भाग से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो चुका था[3]। फ्रेडरिक ने लिखा है कि चीन का रेशम, फलालैन एव घोड़े आदि के बदले में व्यापारी विजयनगर से सोना व हीरा ले जाते थे[4]। अरब के लोग दक्षिण-भारत मे बस गए थे और व्यापार करते थे। पूर्वी देशों से भी व्यापार कम न होता था। भारत का व्यापार पूर्वी द्वीप-समूह तथा चीन देश तक फैला हुआ था। वहा मसालों तथा चीन देश के रेशम का व्यापार उन्नति पर था। रेशम विजयनगर-राज्य के लिए एक आवश्यक वस्तु थी। राजा तथा बडे कर्मचारी-गण रेशमी ही कपडे पहनते थे। एक लेख मे वर्णन मिलता है कि पूर्वी-भाग से प्राप्त स्थल 'आदायम्' (Import duty) चिन्नकेशव मदिर को दान कर दिया

---

१ मैसूर गजेटियर भाग १ पृ० ४७७

२ फोटो—भाग ८ पृ० ६३

३ कृष्णस्वामी—कन्ट्रीब्यूशन आफ साउथ इंडिया पृ० ३३३

४ फ्रेडरिक—पिलग्रिम्स भाग १० पृ० ६६

गया था[१]। इस प्रकार सामुद्रिक व्यापार के कथन की पुष्टि होती है। इस विवरण से विजयनगर राज्य मे जल-मार्ग द्वारा अन्य देशा से जहाजों में माल लाद कर व्यापार करने का पता चलता है। इस समय दक्षिणी-भारत में व्यापार के निमित्त विदेशियों मे होड लगी हुई थी।

विजयनगर राज्य की स्थापना से पूर्व मे भी भारत का सामुद्रिक व्यापार उन्नत अवस्था में था। बडे-बडे जहाजो द्वारा माल आता जाता था।

आयात व निर्यात

मिश्र देश की ममियों की पुरानी कब्रा मे महीन (बारीक) भारतीय मलमल मिला है। दक्षिण भारत में रोम-साम्राज्य के असख्य सिक्के मिले हैं जो विदेशियों के साथ व्यापार की बात सिद्ध करते हैं। भारत मे, प्राचीनकाल में, सुन्दर वस्त्र बनते थे और उनकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई थी। विजयनगर राज्य मे कपडे के व्यापर की कमी न थी। सूती कपडे प्रचुर मात्रा मे बनते थे। वे कपडे विदेश में भी विकते थे। इसके अलावा दक्षिण भारत से मिर्च मसाला, मोती, हाथीदात, कीमती पत्थर तथा हीरा बाहर जाता था। निर्यात मे कपडों के साथ चन्दन तथा सुगन्धित पदार्थ भी शामिल थे। इनके बदले मे भारत में अन्य सामान आता था। विजयनगर राज्य को घोडो की अत्यन्त आवश्यकता थी। अतएव घोडा, रेशम, मूँगा, कपूर और नमक आदि वस्तुएँ आयात के अन्दर थीं[२]। मसाले, कपूर और रेशम आदि चीजे चीन और पूर्वी द्वीपों से आती थीं और घोडा, मोती तथा सोने के सिक्के पश्चिमी देशों से आते थे। विजयनगर मे इन वस्तुओं को ले आने का श्रेय पुर्तगाली लोगों को था। भारत से अधिकतर सुख और भोग-विलास की सामग्री विदेशी लोग बाहर ले जाते थे और विजयनगर मे आवश्यकीय पदार्थ उनसे मोल लिया जाता था।

---

१ रंगाचार्य--नेलोर इन्स० भा० १ पृ० ६२०

२ कृष्णस्वामी--कन्ट्रीब्यूशन आफ साउथ इण्डिया पृ० ३६१।

विजयनगर में लोहे तथा अन्य धातुओं का व्यवसाय आश्चर्य-जनक उन्नति पर था। दक्षिण में लोहे का व्यापार विजय नगर के लोगों के हाथों में रहा। पुर्तगाली इनसे लोहा खरीद कर ताँबा देते थे। विजयनगर की विशाल सेना के लिए धनुष, तलवार, बन्दूक आदि तैयार करने के बड़े-बड़े कारखाने बने थे। इन कारखानों में युद्ध-सामग्री तथा अन्य प्रकार के औजारों के अतिरिक्त धातु की मूर्त्तिया भी बनाई जाती थीं। कृष्णदेव राय तथा उनकी दो रानियों की धातु की मूर्त्ति अत्यन्त सुन्दर बनाई गई थी, जिसमे सब वस्त्र तथा आभूषण सूक्ष्म रूप से दिखलाये गये हैं। तिरुवन्नमलाई मे वेंकटपति देव की सुन्दर धातु-मूर्ति मिली है[1]। अब्दुर रज्जाक ने लिखा है कि देवराय द्वितीय ने धातु का एक अतीव सुन्दर मंदिर तैयार कराया था[2]। ओ०सी० गांगूली का मत है कि तिरुपति में धातु ढालने का काम जानने वाले निपुण कारीगर रहते थे[3]। उस समय मे लोह आदि अन्य धातुओं की कारीगरी का केन्द्र मदुरा, तंजोर, उत्तरी आरकाट और सलेम आदि स्थान थे।

लौह-व्यवसाय

विजयनगर के वैभव का दिग्दर्शन पहले कराया जा चुका है। इन राजाओं का निवास स्थान चांदी, सोना और मणि आदि अनेक बहुमूल्य रत्नो से विभूषित किया जाता था तथा स्तम्भो मे भी रत्न जडे रहते थे। सोना और मोती का हार तो सभी के गले में दिखलाई पडता था। हीरों से जटित कुंडल तथा अंगूठिया सब धनी लोगो के पास दिखलाई पड़ती थीं। बारबोसा ने लिखा है कि नीलम तथा हीरा दक्षिण भारत मे खान से निकाले जाते थे। विजयनगर मे सोने के सिक्के अधिक प्रचलित थे। इसके बाद ताँबे

सोना, मोती आदि का व्यवसाय

---

१ गांगूली—साउथ इंडियन ब्रोन्ज़ेज पृ० १२४ व १२५

२ सेवेल-ए फा० इम्पा० पृ० ८८

३ गांगूली सा० इ० ब्रो० पृ० ६०

के सिक्कों की प्रधानता समझी जाती थी[1]। ये सिक्के सोने के व्यापार की प्रचुरता के द्योतक हैं। भारतवर्ष के दक्षिणी भाग में समुद्र के किनारे मोती निकाले जाते थे। सन १५१५ ई० तक यह व्यवसाय मुसलमानों के हाथ मे था। अरब के व्यापारी दक्षिणी समुद्र के किनारों से मोती निकाला करते थे, परन्तु विजयनगर के शासकों ने इस व्यापार की आज्ञा अन्य लोगों को न देकर इसे राजकीय सरक्षित 'वस्तु' (State monopoly) बनाया और मोतियो का व्यापार प्रारम्भ कर दिया। यही कारण है कि विदेशो को जाने वाली वस्तुओ में मोती की भी गणना होती थी। राजा मोती निकालने वाली व्यापारिक सस्थाओ से कर ग्रहण किया करता था, जिसका वर्णन उस समय के एक लेख में पाया जाता है[2]। कभी-कभी मोती निकालने का ठेका भी दे दिया जाता था और कर रूप में द्रव्य वसूल किया जाता था[3]।

व्यापारिक संस्थाये

भारत मे प्राचीन काल से ऐसी प्रणाली चली आती है कि देश का अधिक व्यापार जनता द्वारा ही किया जाता है। भारतीय व्यापार कभी पूंजीपतियों के हाथ में न था बल्कि गण-पद्धति से कार्य किया जाता था। विजयनगर-शासन-काल में व्यापारियों की अनेक सस्थाये थीं[4]। प्रायः प्रत्येक वर्ग में व्यापारिक सस्थाये वर्तमान थीं। कृषक तथा अन्य लोगों के भी गण मौजूद थे। स्मृतिकार शुक्र ने कलाकार, व्यवसायी आदि की सस्थायें (श्रेणी) का वर्णन किया है[5]। ये सस्थायें—जो श्रेणी (Guild) के नाम से प्रसिद्ध थीं। अपने व्यवसाय में लगी रहती थीं। सब लोग मिलकर कार्य करते थे। विभिन्न जाति के लोगों का मुकदमा भी उनकी

१—इ० ए० भा० २०। २ एपि० कर० भा० ३ पृ० १६७।

३ एपि० कर० भा० ५ पृ० ६८।

४ रंगाचार्य—नेलोर इन्स० भा० २ पृ० ६१८

५ शुक्रनीति—४।५।२६

श्रेणियों द्वारा तय किया जाता था। विजयनगर राज्य के अनेक लेखों मे ऐसी श्रेणियों का वर्णन मिलता है[1]। इनमे वीर वणिजी अथवा सेठी का उल्लेख पाया जाता है। प्रत्येक सेठी का केन्द्र पृथक्-पृथक् था। विजयनगर राज्य मे हस्तिनावटी, पेनुगोंडा, चन्द्रगिरि, उदयगिरि आदि चौदह केन्द्र प्रधान थे[2]। और इन्हीं केन्द्रों मे व्यापार का अधिक कार्य होता था। उस सस्था के कई एक अधिकारी होते थे। प्रधान व्यक्ति को 'महाप्रभु' अथवा 'वड्ड व्यवहारी' कहते थे। उससे छोटे कर्मचारी को 'पट्टन स्वामी' कहा जाता था[3]। वह साप्ताहिक मेला का अधिकारी होता था। मेला का प्रवध अन्य लोगो की सहायता से 'पट्टनस्वामी' किया करता था और उसको राजा की ओर से भूमि माफी (कर-रहित) दी जाती थी[4]। एक लेख मे प्रधान का नाम 'महावड्ड-व्यवहारी' लिखा मिलता है। उसने वीरभद्र के लिए एक सुन्दर मदिर तैयार कराया। अब्दुर-रजाक ने लिखा है कि प्रत्येक सस्थाये अपनी-अपनी दूकाने रखती थी[5]। यदि कोई सस्था व्यापार मे प्रशसनीय कार्य करती थी तो उसका राजकीय कर माफ कर दिया जाता था[6], अन्यथा सभी दूकान या सेठी से कर लिया जाता था[7]। सदाशिव राय द्वारा सुन्दर रीति से नमक बनाने वाली सस्था को सन् १५५१ मे भूमि दी गई थी और उसे कर से मुक्त (माफ) कर दिया गया था[8]। इसी प्रकार से पटकार-समिति, लोहार, बढ़ई, कलाकार चर्मकार, कुम्हार आदि लोगों की समितिया काम करती थीं और सबको

---

१ एपि० कर० भाग २, ७ पृ० १०३, ११२। एपि० रि० १९१८ पृ० १७४। २ एपि० कर० भाग० ५ पृ० २०१

३ एपि० कर० भाग १० पृ० २६३। ४ वही पृ० १६

५ इलियट—हिस्ट्री आफ इंडिया भाग ४ पृ० १०७

६ मैसूर आ० रि० १९१७ पृ० ४८

७ एपि० रि० १९११ नं० ८३

८ एपि० कर० भाग ११ पृ० १६

कर देना पड़ता था[1]। तत्कालीन सेठी की संस्थाएं बैंक का भी काम करती थीं। मंदिरों के लिए दान में दी हुई भूमि का प्रबंध श्रेणियों द्वारा किया जाता था। वे उस जमीन को जिसका पैसा मंदिर के लिए व्यय किया जाता था पट्टे पर दे देती थी[2]। बाजार का सारा कर वसूल कर सेठी मंदिर के प्रबंध में व्यय करता था[3]। इस प्रकार 'वीर-वणिजों' की संस्था व्यापारिक कार्य करते हुए सार्वजनिक कार्य में भी भाग लेती थी। प्रत्येक श्रेणी या व्यवसायी-संघ प्रजातंत्र के सिद्धान्तों के अनुसार लोकोपकारी संस्था के रूप में व्यवस्थित किया गया था। इन्हीं श्रेणियों के कारण जातीय सुधार तथा ग्रामीण-व्यवसाय पूर्ण रूप से उन्नति कर सका।

प्राचीन काल में सभी देशों में व्यापार वस्तु विनिमय (Barter) द्वारा होता था। शनैः-शनैः सिक्के तैयार किये गये और प्रयोग किये जाने लगे। भारत में कुषाण लोगों ने सोने के सिक्कों का प्रयोग करना प्रारम्भ किया। चाँदी तथा ताँबे के सिक्के तो पहले से ही बनते थे।

विजयनगर राजाओं के सिक्के

विजयनगर के शासक वर्गों में एक राजा के सिक्के का अनुकरण दूसरे ने किया और तीसरे ने भी उसी शैली पर अपना सिक्का चलाया। इस तरह सिक्के बनते गये। विजयनगर के सिक्कों पर भी पूर्वगामी राजाओं की मुद्राओं का प्रभाव पड़ा। विजयनगर के पूर्व सिक्कों का नाम ज्ञात नहीं है परन्तु लेखों के उल्लेख से प्रकट होता है कि गद्यानक, निष्क, पण, हाग, द्रम, धरण आदि नाम के सिक्के प्रचलित थे। उस समय ढालने तथा ठप्पे के तरीकों को प्रयुक्त किया जाता था। कुछ सिक्के ढाले हुए और कुछ ठप्पेदार मिलते हैं। उन सिक्कों पर एक ओर राज्य का चिन्ह तथा दूसरी ओर उपाधि सहित राजा का नाम खुदा है। विजयनगर काल में सिक्कों के आकार तथा धातु के निश्चय हो जाने से सर्व साधारण को सुविधा हो गई। राजाओं ने यह तय कर दिया कि कौनसा सिक्का

---

१ एपि०कर० भाग ३ पृ० १६७ २ एपि० रि० १९१३ पृ० १२२

३ साउथ इण्डिया भाग ३ पा० ३० पृ० २२२

किस धातु का बनेगा, उसका आकार क्या होगा और उसकी तौल कितनी होगी ।

विजयनगर के शासकों ने सोने, चादी तथा ताँवे के भी सिक्के तैयार कराये । देश मे सोने की अधिकता के कारण सोने के सिक्के अधिक संख्या मे मिलते हैं । विदेशो से ताँबा मगाकर उनका उपयोग किया जाता था । इस प्रकार इस राज्य मे सिक्को के लिए धातु की कमी न थी । सोने के सिक्के वाराह के नाम से पुकारे जाते थे परन्तु विदेशी इन्हें पगोदा के नाम से पुकारते थे । चादी के सिक्को को 'तार' का नाम दिया गया था । ताँवे के सिक्के जितल नाम से प्रसिद्ध थे जो वर्तमान पैसे के समान थे । सोने तथा ताँवे के सिक्को को प्रायः प्रत्येक महान् सम्राट् ने तैयार कराया और अतः इन्हीं की संख्या अधिक थी । चादी की कमी के कारण देवराय द्वितीय के अतिरिक्त अन्य किसी राजा के सिक्के प्राप्त नही हैं । उसने आधे तथा चौथाई पगोदे भी तैयार कराये ।

विजयनगर के सिक्कों का जन्मदाता बुक्कराय था । उसके केवल सोने के सिक्के मिले हैं[1] ।

पगोदा—सोने का सिक्का ।

एक ओर—ऊपर झुके हुए गरुड की आकृति । दूसरी ओर—श्री वीर बुक्कराय लिखा है ।

हरिहर प्रथम

(१) अर्ध पगोदा—सोने का सिक्का ।

एक ओर—देव तथा देवी की बैठी हुई आकृति । दूसरी ओर—श्रीप्रताप हरिहर लिखा है । यह मूर्त्ति शैव देव तथा देवी की मानी गई है ।

(२) जितल—ताँवे का सिक्का ।

एक ओर—शिव के नन्दी (बैल) की आकृति ।

दूसरी ओर—प्रताप हरिहर लिखा है ।

---

१ इ० ए० भा० २० ।

देवराय द्वितीय

(१) पगोदा—सोने का सिक्का।
एक ओर—हाथी की आकृति। दूसरी ओर—श्री प्रताप देवराय।

(२) अर्द्ध पगोदा—वही।
एक ओर—
दूसरी ओर— } पहले पगोदे की तरह।

(३) चौथाई पगोदा—
एक ओर—हाथी की आकृति। दूसरी ओर—श्री देवराय।

(४) तारा—चादी का सिक्का।
एक ओर—नन्दी। दूसरी ओर श्री उत्तम राय।
देवराय द्वितीय की 'उत्तम' की पदवी केवल सिक्को पर ही अकित मिलती है।

(५) जितल—ताँबे के सिक्के
एक ओर—हाथी की आकृति। दूसरी ओर—श्री देवराय।

(६) जितल—
एक ओर—हाथी। दूसरी ओर—राय-गज-गड-भेरुंड

(७) जितल
एक ओर—बाये ओर देखते हुए नन्दी की आकृति,
दूसरी ओर—श्रीप्रताप देवराय।

मल्लिकार्जुन

पगोदा—सोने का सिक्का
एक ओर—हाथी की आकृति। दूसरी ओर—श्री मल्लिकार्जुन

द्वितीय राज्य वंश—तुलुव-वंश

कृष्णदेवराय

कृष्णदेवराय के शासनकाल मे सबसे अधिक (चौदह) सिक्के मिले हैं, परन्तु इनमे कोई विभिन्नता नही है[1]।

---

१ स्मिथ—कैटलाग आफ कायन्स इन इंडियन म्यूजियम पृ० ३२३।

(१) पगोदा—सोने का सिक्का।
एक ओर—मेहराब के नीचे विष्णु की खड़ी मूर्त्ति।
दूसरी ओर—श्रीकृष्णराय।
(२) पगोदा
एक ओर—शिव-पार्वती की मूर्ति। दूसरी ओर—श्री प्रतापकृष्णराय
(३) जितल—ताँबे का सिक्का
एक ओर—झुके हुए गरुड की आकृति। दूसरी ओर—श्रीकृष्ण(देव)राय।
(४) एक ओर—नन्दी, दूसरी ओर—श्री कृष्ण (देव) राय

अच्युत

(१) पगोदा—सोने का सिक्का।
एक ओर—एक पक्षी (ईगल) के पंजे में हाथी की आकृति बनी है और 'गड भेरुण्ड' लिखा है। दूसरी ओर—श्रीप्रतापाच्युतराय लिखा है
(२) एक ओर—घोड़े की आकृति। दूसरी ओर—श्रीप्रतापाच्युतराय

सदाशिव

(१) पगोदा—सोने का सिक्का।
एक ओर—विष्णु तथा लक्ष्मी की आकृति।
दूसरी ओर—श्रीप्रताप सदाशिवराय।
(२) एक ओर—देव तथा देवी (बैठी आकृति)।
दूसरी ओर—श्री सदाशिवराय।
(३) पगोदा
एक ओर—शेर की आकृति। दूसरी ओर—श्री सदाशिवराय।
इस वंश के अधीनस्थ नायकों ने श्रीकृष्णदेवराय तथा सदाशिव के नाम से ही सिक्के चलाए।

आरविदु-वंश—रामराय

पगोदा—सोने का सिक्का।
एक ओर—छत्र के नीचे खड़ी विष्णु की आकृति।
दूसरी ओर—श्री रामराजा।

तिरुमल

(१) पगोदा—सोने का सिक्का

एक ओर—लक्ष्मी (खड़ी आकृति)

दूसरी ओर-श्री तिरुमल रायुलु (राय)

(२) पगोदा-

एक ओर-सीता राम (बैठी आकृति)

दूसरी ओर-श्री तिरुमल रायुलु

(३) पगोदा—

एक ओर-वाराह (तलवार और सूर्य के साथ की आकृति)

दूसरी ओर-श्री तिरुमल राय

(४) जितल—ताँवे का सिक्का

एक ओर-वाराह की आकृति

दूसरी ओर—सालुव तिरुमल राय

वेंकट पतिदेव

(१) पगोदा—सोने का सिक्का

एक ओर—खड़ी विष्णु की आकृति

दूसरी ओर—श्री वेंकटेश्वरायनमः (लिखा है);

(२) पगोदा—

एक ओर—हनुमान की आकृति

दूसरी ओर—श्री वेंकटपति राय

(३) जितल—ताँवे का सिक्का

एक ओर—विष्णु की आकृति

दूसरी ओर—श्री वेंकटपति राय

आरविदु-वंश के अन्तिम समय में विजयनगर राज्य की शक्ति कम हो जाने से इकेरी तथा मदुरा के नायकों ने स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी थी और अपने नाम से सिक्के प्रचलित किये थे[1]।

---

1 क्वा० जर० आफ मिथिक सोसाइटी भा० १३

सिक्को के अध्ययन से प्रकट होता है कि सर्व प्रथम कृष्णदेवराय के समय मे सिक्कों पर नागरी लिपि का प्रयोग किया गया। इससे पूर्व सब लेख तेलुगु मे अङ्कित किये जाते थे। कृष्णदेव राय के पश्चात् नागरी-लिपि को प्रधान स्थान मिल गया। सब राजाओं के सिक्को पर नागरी मे लेख लिखे जाने लगे। इसका कारण व्यापार की वृद्धि ही ज्ञात होती है। सिक्कों पर सर्वसाधारण—विदेशी, मुसलमान आदि—को तेलुगु पढने मे कठिनाई होती होगी, अतएव भारतीय—संस्कृति के रक्षक विजयनगर शासकों के लिए नागरी लिपि के अतिरिक्त दूसरी कोई लिपि इस कार्य लिए समुचित न ज्ञात हुई। संस्कृत का प्रचार बढ़ रहा था। तेलुगु साहित्य के समान संस्कृत मे भी ग्रथ लिखे जाने लगे, अतएव नागरी का प्रयोग सरल समझ कर तथा अन्य लोगो के लिए भी सरल होने के कारण ऐसा परिवर्तन किया गया होगा।

इसके अतिरिक्त विजयनगर के सिक्कों के अध्ययन से निम्नलिखित विषयों पर प्रकाश पडता है। हमे सर्व प्रथम देश की धार्मिक अवस्था का ज्ञान होता है। सगम-वश के राजा वीर शैव थे क्योंकि सिक्कों पर शिव तथा नन्दी की आकृतियाँ पाई जाती हैं। आरविदु-वंश के शासकगण परम वैष्णव थे। उनके सिक्को पर उत्कीर्ण विष्णु, लक्ष्मी, वाराह आदि की आकृतियाँ उनकी धार्मिक भावना को प्रकट करती हैं। ध्यान देने योग्य दूसरी बात हाथी की आकृति तथा 'गजगडभेरु ड' का लेख है। इससे देवराय द्वितीय तथा अन्य राजाओं का आखेट-प्रेम प्रकट होता है। सिक्कों पर उत्कीर्ण घोडे की आकृति बतलाती है कि विजयनगर-राज्य मे इस पशु की कितनी महत्ता थी। सैनिक कार्य के लिए घोडा महत्त्वपूर्ण पशु समझा जाता था।

सिक्कों के तैयार करने का कार्य उत्तरदायी राज-कर्मचारी को ही सुपुर्द किया जाता था। अब्दुर रज्जाक ने लिखा है कि राजमहल के समीप ही सिक्कों का निर्माण-गृह (टकसाल) वर्तमान था[1]। इस गृह को राजमहल

---

१ इलियट—हिस्ट्री आफ इंडिया भा० ४ पृ० १११

के समीप रखने का तात्पर्य यही हो सकता है कि शासक उसका स्वयं निरीक्षण कर सके और कर्मचारी तैयार सिक्के को सरलता से राजकोष में ले जा सके। इसके

टकसाल

अतिरिक्त अन्य संस्थाओं को भी सिक्के तैयार करने का अधिकार दिया गया था। 'पराशर-माधव' में वर्णन मिलता है कि राजा हरिहर ने सिक्कों को बनाने वाली संस्थाओं पर कर लगा दिया था। इस प्रमाण से उपर्युक्त बात की पुष्टि होती है। जैसा कि बतलाया जा चुका है, माधव के परामर्श से विजयनगर सम्राट् ने सिक्कों की बनावट में अधिक सुधार किये और नागरी-लिपि का प्रयोग सिक्कों पर होने लगा। यदि संगम वंश के सिक्कों का अध्ययन किया जाय तो यह प्रकट होता है कि विभिन्न शासकों ने अपने सिक्कों पर भिन्न-भिन्न चिन्हों का प्रयोग किया था। वैष्णव राजाओं ने गरुड, लक्ष्मी-नारायण और सरस्वती आदि की, शैव सम्राटों ने नन्दी तथा उमा-महेश्वर की और रामभक्त शासकों ने हनुमान तथा श्रीरामचन्द्र की आकृतियाँ उत्कीर्ण कराई। यह कहा जाता है कि किष्किन्धा के समीप सिक्कों के तैयार किये जाने के कारण हनुमान की आकृति को स्थान मिला। कुछ विद्वान् कहते हैं कि कदम्ब-वंश के शासकों से मैत्री स्थापित करने के लिए हनुमान की आकृति को सिक्कों पर स्थान दिया गया। कारण यह था कि उनके झण्डे पर हनुमान का चित्र बना था। देवराय द्वितीय के आखेट-प्रेम के स्मारक में हाथी की आकृति को सिक्कों पर चिन्हित किया गया। विजयनगर के दूसरे तथा तीसरे वंश के राजाओं ने भी अपनी धार्मिक-भावना के अनुसार वैष्णव तथा शैव-धर्म के प्रतीक स्वरूप चिन्हों को सिक्कों पर स्थान दिया। कृष्णदेव राय, तिरुमल राय तथा वेंकट आदि अपने सिक्कों पर धार्मिक चिह्नों को रखने का आग्रह करते थे। यहाँ तक कि विजयनगर राज्य के पतन होने पर भी श्रीरंग राय ने ईस्ट इंडिया कम्पनी को सिक्के चलाने की आज्ञा इस शर्त पर दी कि कम्पनी के मालिक अपने सिक्कों पर शिव-पार्वती का चिन्ह सदा अंकित रखेंगे।

जैसा कहा गया है कि विजयनगर राज्य-काल मे सोने, चान्दी तथा ताँबे के सिक्के बनाये जाते थे। सिक्के विभिन्न आकार तथा वजन के होते थे और इसी आधार पर उनका नाम स्थिर किया जाता था। राजाओं के लेखो मे तथा विदेशियो के यात्रा-विवरणों मे सारे सिक्कों के नाम पाये जाते हैं। सोने के सिक्के वाराह, गद्याण, पगोदा, प्रताप, पण तथा हाग के नाम से प्रसिद्ध थे। कोई सिक्का वजन में हलका तथा कोई भारी हुआ करता था। रज्जाक ने लिखा है कि दस पण के बराबर (मूल्य मे) एक गद्याण समझा जाता था[1]। परन्तु लेखों मे आठ पण के मूल्य के बराबर एक गद्याण बतलाया गया है[2]। सिक्को पर विभिन्न चिह्नो के कारण उनके कई नाम मिलते हैं। प्रताप आधे पगोदा के मूल्य के बराबर होता था। चालीस प्रताप सिक्कों के बराबर वाराह समझा जाता था। प्रताप तथा काठी नाम के नये सिक्के विजयनगर मे प्रचलित हुए थे। पगोदा का चौथाई भाग काठी के नाम से पुकरा जाता था। कृष्णदेव राय तथा देवराय के लेखो से पता चलता है कि गद्याण का मूल्य घट गया था और पाच पण के मूल्य के बराबर उसकी गिनती होने लगी थी[3]। हाग नामक सोने का सिक्का सर्व प्रसिद्ध था। इसका मूल्य एक पण के चौथाई भाग के बराबर था। इसका दूसरा नाम 'काकिनी' भी था। शिव-तत्त्व रत्नाकर मे 'सा काकिनी ताश्वपणः चतुःसु' का उल्लेख पाया जाता है। दक्षिण भारत के एक लेख से भी पता चलता है कि एक पण का मूल्य-चार 'काकिनी' के बराबर था[4]। ये सोने के सिक्के—जो पृथक्-पृथक् तौल के थे—विभिन्न नाम से विजयनगर-राज्य मे प्रचलित थे।

चाँदी का एक प्रकार का सिक्का चलता था जिसे 'तारा' कहा जाता

---

१ इलियट—हिस्ट्री भा० ४ पृ० १०६।

२ सा० इ० इ० भा० ७ नं० ३४८।

३ मद्रास आ० रि० १३२ पृ० २०६।

४ एपि० कर० भा० ४ पृ० ३१।

था। तांबे के तीन प्रकार के सिक्के चलते थे जिन्हें 'पण', 'जितल' या 'कासु' के नाम से पुकारते थे। अब्दुर रज्जाक ने जितल का उल्लेख किया है। 'पराशर-माधव' तथा 'मिताक्षरा' में पण सिक्के (तांबा) का नाम आता है। कासु भी एक प्रकार के तांबे का सिक्का था। इस प्रकार सोने, चांदी तथा तांबे के सिक्के राज्य में प्रयोग में लाये जाते थे।

विजयनगर में मुद्रा-गृह (टकसाल) के निरीक्षण के लिए एक कर्मचारी नियुक्त किया गया था। वह सरकारी टकसाल तथा खानगी टकसालों का निरीक्षण करता था[1]। गैर-सरकारी टकसालों से यह कर्मचारी कर वसूल करता था। कभी कभी स्थान के नाम पर (जहां टकसाल थी) सिक्कों का नाम रख दिया जाता था। बाराकास तथा मंगलूम दक्षिणी कनारा देश के नगर थे। उन स्थानों में तैयार किये गये सिक्कों के नाम में इन स्थानों के नाम के साथ गद्याण और जोड़ दिया जाता था। किसी किसी सिक्के पर 'म' तथा 'न' अक्षर खुदा मिलता है। मुद्रा-शास्त्र के पंडितों ने इन अक्षरों से मदुरा तथा नेलोर नामक नगरों का अर्थ निकाला है। अतः इन सिक्कों पर अंकित अक्षर स्थान-विशेष के बोधक हैं। विजयनगर के ह्रास के समय भिन्न-भिन्न स्थानों में कई प्रकार के सिक्के तैयार किये जाने लगे। मध्यप्रांत के अकोला जिले में विजयनगर के बहुत से सिक्के मिले हैं। नायकों ने भी अपने सिक्के चलाये थे।

ऊपर प्रस्तुत किये गये वर्णन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि विजय-नगर की आर्थिक-अवस्था बहुत ही अच्छी थी। प्रजा सुखी तथा वैभव-सम्पन्न थी। सोने के सिक्कों की प्रचुरता के कारण यह पता चलता है कि राज्य में धन की प्रचुरता थी। राजकोश चाँदी, सोना, हीरा, मोती तथा अन्य बहुमूल्य पदार्थों से भरा रहता था। विदेशियों ने अपने यात्रा-विवरणों में विजयनगर की अनुपम शोभा तथा असंख्य धन का बड़े ही सुन्दर शब्दों में वर्णन किया है।

---

१ सिलोनीज कायन एण्ड करेन्सी पृ० ६१

: १० :

सामाजिक-अवस्था

भारतवासियों का सामाजिक जीवन वर्णाश्रम-व्यवस्था पर अवलम्बित है। इसी के बल पर हिन्दू-समाज का भवन टहरा हुआ है। प्राचीनकाल से ही भारत मे वर्ण-व्यवस्था अक्षुण्ण रूप से वर्तमान है। इसकी उत्पत्ति तथा विकास पर कुछ लिखना यहाँ अप्रासंगिक होगा। केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि वैदिक काल के पश्चात् वर्ण का अर्थ जाति समझा जाने लगा। हिन्दू शास्त्रकारों ने चार वर्णों से, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शद्र का अर्थ लिया है। समाज मे चारों वर्णों के पृथक् पृथक् कार्य थे।

वर्णाश्रम का पालन

विजयनगर सम्राट् भारतीय-संस्कृति के रक्षक थे। इन्होने आदर्श हिन्दू-जीवन को अपनाया था। इनके राज्य मे चारों वर्णों के रहने का उल्लेख मिलता है। 'ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्रा.' 'चत्वारो वर्णाः ब्राह्मणक्षत्रिय वैश्यशूद्राः' का उल्लेख शास्त्रों में पाया जाता है[1]। वर्णों का यही चार विभाजन विजयनगर काल मे भी था, परन्तु इसके अतिरिक्त अनेक उपजातिया उत्पन्न होगई थी जिनका वर्णन यथा स्थान किया जायेगा। विजयनगर सम्राटों ने वर्णाश्रम की संस्था का समुचित रूप से पालन किया। लेखों मे इसके उदाहरण भरे पड़े हैं। यही कारण है कि हरिहर द्वितीय के लेख में उसे वर्णों का पालन करने वाला कहा गया है[2]। नेलोर की प्रशस्ति में वह 'सर्ववर्णाश्रमाचारप्रतिपालनतत्परः' बतलाया गया है[3]। महाराज बुक्क भी 'वर्णाश्रमधर्मपालिता' की उपाधि से

---

१ मनु० ६, ३२०, गौतम ११।२७, पराशर १।२६

२ चतुर्वर्णाश्रमपालक.।

३ एपि० इंडि० भा ३ पृ० ११७

उल्लिखित है[1]। इसी प्रकार देवराय द्वितीय भी 'सकलवर्णाश्रमधर्मानुपालिसुत' कहा गया है[2]। मल्लिकार्जुन सब वर्णों से उचित काम लेता था। सदाशिव के एक लेख मे 'पुरराज्य प्रशासनि वर्णाश्रमसदाचार परिपालनपूर्वकम्' की बात कही गई है[3]। कृष्णदेव राय ने चारो वर्णो को अपने कार्य मे लगे रहने के लिए बाध्य किया। इस प्रकार यह प्रामाणित होता है कि विजयनगर के सम्राट् वर्ण-व्यवस्था के पालन करने वाले थे। प्रत्येक व्यक्ति अपने वर्ण के नियमों का पालन किया करता था। चार वर्णों के साथ ही साथ चार आश्रमो का भी उल्लेख लेखो मे मिलता है। कृष्णदेव राय के कथनानुसार गृहस्थाश्रम सर्व प्रधान समझा जाता था[4]। विद्याभ्यासी ब्रह्मचारी पाठशाला मे अध्ययन करते थे। गृहस्थाश्रम की प्रधानता थी। गृहस्थ जीवन को प्राय सभी आनन्द पूर्वक व्यतीत करते थे। वानप्रस्थ आश्रम का वर्णन बहुत कम मिलता है। परन्तु बहुत से व्यक्ति वृद्धावस्था मे सन्यासी हो जाते थे। धर्म के प्रचारक सदा सन्यासी ही होते रहे। मदिरो मे भी यतियो या साधुओं के निवास का उल्लेख मिलता है।

ब्राह्मण तथा उसके कर्त्तव्य

समाज में ब्राह्मणों का सबसे अधिक आदर होता था। कृष्णदेवराय ने 'आमुक्तमाल्यम्' मे लिखा है कि राजा राज्यप्रबन्ध, पूजा तथा ब्राह्मणों की सेवा करने के लिए प्रजा से कर ग्रहण किया करता है[5]। अब्दुर रज्जाक ने लिखा है कि विजयनगर मे ब्राह्मणो की सबसे अधिक प्रतिष्ठा थी[6]। पेई ने भी यही लिखा है कि ब्राह्मण पुजारी का काम करते थे और उनका

---

१ एपि कर० भा० ८ पृ० १४४
२ वही ,, ७ ,, २७
३ वही ,, ८ पृ० ४१८
४ एपि० कर० भा० ३ भूमिका
५ आ० मा० श्लोक २६२
६ इलियट-हिस्ट्री भाग ४ पृ० १०५

अधिक सत्कार किया जाता था[1]। मनु आदि स्मृतिकारों ने ब्राह्मणों के अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान तथा प्रतिग्रह; ये छः कर्म बतलाये हैं[2]। माधवाचार्य ने भी 'पराशर-स्मृति' की टीका में 'षट्कर्माभिरतोविप्र' का उल्लेख किया है[3]। विजयनगर राज्य के एक 'अग्रहार' लेख में[4] ब्राह्मण की योग्यता का वर्णन किया गया है, जिसमें ब्राह्मण यम नियम, स्वाध्याय, ध्यान, धारणा, मौन, अनुष्ठान, जप, समाधि और शील आदि गुण-सम्पन्न, चारों वेदों तथा वेदांग का पण्डित (ज्ञाता) बतलाया गया है। इससे यह प्रकट होता है कि ब्राह्मण वैदिक ग्रन्थों के अध्ययन एवं अध्यापन में लगे रहते थे। वे षड्कर्म का पालन नियमपूर्वक करते थे। मनुष्य का धर्म समय के साथ ही परिवर्तित होता रहता है। अतः विजयनगर राज्य में ब्राह्मण षड्कर्म के अतिरिक्त अन्य कार्य भी अवश्य करते थे। स्मृतिकारों ने भी 'षड्कर्म निरतः विप्रः कृषिकर्म च कारयेत्' की बात कही है[5]। पुर्तगाली यात्री पेई ने लिखा है कि ब्राह्मण विभिन्न व्यवसाय—खेती, व्यापार, नौकरी (मंदिर में अथवा सेना में) आदि कार्यों से अपना जीवन निर्वाह करते थे[6]। लेखों में वर्णन मिलता है कि माधव ने सेनापति के पद पर आरूढ़ होकर कई देश जीते[7]। राजगुरु सदा युद्ध क्षेत्र में जाया करता था। हरिहर द्वितीय के शासन काल में अनेक ब्राह्मण मंत्री तथा सेनापति के पद पर नियुक्त थे[8]। भारद्वाज गोत्र में उत्पन्न कई व्यक्ति नायक के पद से शासन करते थे[9]। राज्य में अनेक

---

१ सेवेल—ए फारगाटेन इम्पायर पृ० २६०

२ मनु० १०।७५ । ३ पराशर स्मृति १।३८

४ एपि० कर भाग ५ पृ० १६०

५ पराशर २।२. ६ सेवेल-ए फारगाटेन इम्पायर

७ एपि० कर० भा० ७ पृ० १४६

८ आ० स० रि० १६०७—८ पृ० २३८

९ एपि० कर० भा० ६ पृ० ८६

ब्राह्मण सैनिक का कार्य करते थे[1]। इन सब कार्यों के अतिरिक्त धर्म-प्रचार का कार्य ब्राह्मण को ही सौंपा गया था। विजयनगर काल में मुसलमान तथा ईसाई मत का भी प्रचार हो रहा था। राजा धर्म सहिष्णु था। राजधानी मे ईसाईयो को चर्च बनाने की आज्ञा दी गई थी। वहा वे निवास करते थे। वेंकट पतिदेव ईसाई मत से सहानुभूति रखता था। ब्राह्मणो ने वेंकटपति की राजसभा से ईसाइयों को निकलवा दिया। इस विवरण से यह प्रतीत होता है कि राज्य में ब्राह्मणों का अधिक महत्त्व था। विजयनगर के सैकड़ों लेखो मे ब्राह्मणों को अग्रहार दान देने का वर्णन मिलता है। राजा उनको ग्राम तथा द्रव्य आदि दान में दिया करता था। विद्वान् ब्राह्मण कर से भी मुक्त कर दिये जाते थे। इसका कारण यह था कि वे राजा द्वारा प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखे जाते थे। राजाओं की दान-प्रशस्तियों में ब्राह्मणों के गोत्र, वेद तथा शाखाओं के भी नाम मिलते हैं। देवराय द्वितीय के लेख में ब्राह्मणों के हारीत, कौशिक, काश्यप, श्रीवत्स, गौतम तथा शाण्डिल्य आदि गोत्रों के नाम मिलते हैं[2]। अन्य लेखों में भी इसी प्रकार से गोत्रों का उल्लेख पाया जाता है[3]। इससे प्रकट होता है कि राज्य में विभिन्न गोत्र के ब्राह्मण वर्तमान थे। उस समय ब्राह्मणों का एक विशेष पहनावा होता था। न्यूनिज ने लिखा है कि वे पतले मलमल के वस्त्र पहनते थे। वे कन्धे पर चादर तथा सिर पर पगड़ी रखते थे। कानों मे कुण्डल पहिनते थे। ब्राह्मण लोग शास्त्रोक्त रीति से पूजा पाठ करते थे[4]।

क्षत्रिय समाज में ब्राह्मणों के सदृश क्षत्रियों को भी ऊचा स्थान प्राप्त था। उनका मुख्य कर्त्तव्य क्षात्र धर्म का पालन करना था।

---

१ नं० १२८ आफ १९१३

२ एपि० इंडि० भा० ३। ३ एपि० कर० भा० ४ पृ० ५६।

४ सेवेल—ए फारगाटेन इम्पायर पृ० ३९३।

क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानां परिपालनम् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन रक्षयेत् नृपतिः सदा ॥[१]

ऐसा उल्लेख स्मृति-ग्रन्थों में पाया जाता है। राज-प्रबन्ध में प्रायः क्षत्रियो का ही हाथ रहता था। परन्तु विजयनगर राज्य मे यह बात नही थी। ब्राह्मणो ने भी राज्य-प्रबन्ध मे पर्याप्त भाग लिया। उस समय प्रात-अधिपति तथा ऊँचे राजकर्मचारी प्रायः क्षत्रिय ही होते थे[२]। अपने धर्म का पालन करते हुए क्षत्रिय लोग जीवन यापन करते थे।

वैश्य तीसरा वर्ण वैश्यों का था जिनका प्रधान कर्म वाणिज्य था। पराशर ने ऐसा ही उल्लेख किया है[३]।

"कृषिकर्म च वाणिज्यं वैश्यवृत्तिरुदाहृता"

विजयनगर-राज्य मे कृषि तथा वाणिज्य की प्रधानता थी। राज्य को अतुल वैभव तथा असख्य श्री व्यापार से ही मिली थी। विजयनगर-साम्राज्य में खेती बड़े पैमाने पर होती थी। कृषि की उन्नति के लिए नहरे निकाली गई थीं। वैश्य पुर्तगालियों के साथ व्यापार करते थे। राज्य में मार्ग आदि की सब सुविधाए थीं जिनका वर्णन यथा स्थान किया जायेगा। यहा के व्यापारी (वैश्य) अधिकतर मूल्यवान् पदार्थों का व्यापार करते थे। मोती, मूंगा, सोना, जवाहिरात आदि का व्यापार अधिक होता था। पुर्तगालियो के हाथ मसाला आदि भी बेचा जाता था। घोडों का व्यापार प्रधान था। सेटी जाति की गणना वैश्यों में होती थी। सब सेठी मिलकर सस्था के रूप में रहते तथा कार्य करते थे। यह नहीं कहा जा सकता कि व्यापार करने से वैश्यों में विद्या का अभाव था। विजयनगर में वैश्य भी विद्वान् हुआ करते थे और वेद, तर्क, व्याकरण और कला में निपुण होते थे। गणित-शास्त्र तो उनके अध्ययन का मुख्य विषय रहता था।

इन वैश्यों की एक विशेष प्रकार की वेश-भूषा होती थी। व्यापारी

---

१ विष्णुस्मृति ५।२। २ एपि० कर० भा० २ पृ० ८८.

३ पराशर-स्मृति १।६८

लोग कमर से गले तक कोई वस्त्र धारण न करते थे। सिर पर लम्बे बाल तथा लम्बी पगड़ी बाधते थे। दाढ़ी घुटी होती थी। ललाट पर त्रिपुण्ड (भस्म) या तिलक लगाते थे। कानो में हीरा से जटित कुण्डल, अगूठी, तथा कमर मे सोने की करधनी पहनते थे। वैश्य-बालक गणित मे निपुण होते और पिता के साथ व्यापार में लगे रहते थे। ये अँगुली पर हिसाब लगाते थे[1]।

वर्ण व्यवस्था मे अतिम वर्ण शूद्रों का था जिनका मुख्य कर्त्तव्य द्विजो—ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य—की सेवा करना था। स्मृतिकारो ने शूद्रों के कर्तव्य के विषय मे लिखा है कि—

शूद्र

पशूना रक्षणं चैव दास्यं शूद्रं द्विजन्मनाम्[2]।
शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा परमो धर्म उच्यते[3]॥

अर्थात् सर्व प्रथम शूद्र का सेवा-कार्य माना गया है। विजयनगर-राज्य में ऐसे शूद्रों का वर्णन कम मिलता है जिनको आजकल शूद्र कहा जाता है। तत्कालीन वर्णो का विवरण विदेशी यात्रियों ने किया है। उस समय 'कम्बलतर' नामक एक जाति थी जो चपरासी का कार्य किया करती थी। दूसरी 'केकिकोलर' नामक जाति थी जो कपडे बुनने का काम करती थी। 'डम्बर' नामक जाति नट का काम करती और खेल दिखाया करती थी। इनका निवास स्थान अधिकतर तेलुगु या कर्नाटक प्रात मे था[4]। पिटारी मे सॉप रखना और उसका प्रदर्शन करना डम्बर लोगों का प्रधान पेशा था।

चारो वर्णों के अतिरिक्त अन्य जातिया भी राज्य में बसती थीं। कृष्ण-देव राय के समय में 'रेड्डी' नामक जाति व्यापार करती थी तथा इससे असख्य धन कमाती थी। देवराय द्वितीय के समय मे रेडी लोगों की प्रधानता थी[5]।

अन्य जातियां

विजयनगर राज्य में नाई-जाति के लोग अधिकता से मौजूद थे।

---

१ बारबोसा—डेमस भाग २ पृ० १२५

२ मनुस्मृति ८।४१०। ३ पराशर-स्मृति १।६६

४ इ ए भा. ६३ पृ. १३६। ५ बटरवर्थ—नेलोर लेख भा १ पृ. १५३

राज्य मे उनको कर देना पड़ता था क्योकि वे राज्य मे शाति-पूर्वक द्रव्य उपार्जन करते थे। रामराय ने उनके कार्य से प्रसन्न होकर सभी नाईयों को कर से मुक्त कर दिया[1]। राज्य मे उसी समय से उनसे कर-ग्रहण नही किया जाता था। अच्छे कार्य के करने के लिए द्रव्य या जमीन इनाम मे दी जाती थी। उनको प्रत्येक प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की गई थीं। इसके अतिरिक्त गोप (अहीर, ग्वाला) जाति का भी नाम अनेक लेखो मे मिलता है। कृष्णदेव राय ने गोपो को ग्राम दान मे दिया था[2]।

बारबोसा ने लिखा है कि विजयनगर मे योगी नामक एक जाति थी। वे नगे रहा करते थे। वे निर्धन होते थे। भीख मागते थे। विभूति शरीर मे लगाये रहते थे। जब मन्दिरों में बकरों की बलि दी जाती थी तब शख बजाकर ये इसकी घोषणा किया करते थे कि देव ने बलि ग्रहण कर ली। वे एक गिरोह मे फिरते थे तथा भीख माँगते थे। सम्भवतः यह जाति वर्तमान 'गोस्वामी' लोगो के समान थी। अन्यथा साधु की कोई पृथक् जाति नही होती थी। साधु (यति) तो प्रत्येक जाति के लोग हो सकते थे। प्राचीन काल मे मध्य भारत मे 'गोस्वामी' जाति के लोग रहा करते थे। शायद मुसलमानों के आक्रमण से वे दक्षिण भारत में चले गए। विजयनगर के हिन्दू राज्य मे पुनः उनकी उन्नति हो गई। इस प्रकार विभिन्न जातिया विजयनगर साम्राज्य मे अपने अपने कार्य मे लगी रहती थी तथा वर्णाश्रम-व्यवस्था का पूर्णतया पालन करती थी।

दास-प्रथा

भारतीय समाज के सम्पूर्ण अग उन्नत अवस्था में होते हुए भी दास-प्रथा किसी न किसी रूप में अवश्य वर्तमान थी। विजयनगर से पूर्व के एक लेख मे वर्णन मिलता है कि गुलाम लड़ाई पर भेजे जाते थे और वे युद्ध करते थे[3]। तामिल इतिहास मे दास को मंदिर के कार्य के निमित्त देने वाले व्यक्ति का उल्लेख

---

१ एपि. कर. भा १२ पृ ६६। भा ११ पृ० ११७

२ बटग्वर्थ—भा १ पृ. ३१६। ३ एपि० कर० भा० ८ पृ० ३१

मिलता है[1]। निकोलो ने लिखा है कि विजयनगर राज्य में ऋण लेने वाला यदि ऋण नही चुका सकता था तो वह स्वामी का गुलाम बन जाता था[2]। वेंकट पतिदेव के समय में ऋण के कारण परिवार के कई आदमी मालिक के हाथ बेच दिये गये थे। परन्तु गुलामी की प्रथा होते हुए भी दासों की अवस्था बहुत गिरी हुई न थी। गाव मे खेती करने का उनको अधिकार था। दास मालिक को अनाज का अधिक भाग दिया करता तथा स्वय कुछ भाग रख लेता था। उसी गाव की पचायत मे वह दास नौकरी कर सकता था जहा उसका मालिक रहता था।

देश-प्रेम

जनता में देश-प्रेम की मात्रा अधिक थी। विजयनगर शासको द्वारा भूमि, द्रव्य तथा पदवी (टाइटिल) देश-सेवा के लिए प्रदान की जाती थी। अपने निवास-स्थान (ग्राम) से चोरों को भगाने तथा मुसलमानों से हिन्दू-धर्म की रक्षा करने के लिए जमीन दी जाती थी। सदाशिव राय ने महीपति नायक को ग्राम-वासियो को डाके से बचाने के कारण धान्य तथा द्रव्य देने की आज्ञा प्रदान की थी[3]। कुछ लोगों को चोरों को भगा देने के लिए इनाम दिये जाते थे[4] अथवा कर-रहित भूमि दी जाती थी[5]। ऐसी भूमि को 'भाट-अग्रहार' कहा जाता था[6]। कभी-कभी भूमि के स्थान पर गायें इनाम में दी जाती थी[7]। युद्ध-क्षेत्र में मरने वाले व्यक्ति की सन्तान को प्रति मास कुछ द्रव्य भत्ता या पेंशन के रूप मे दिया

---

१ एपि० रि० १६०५ पृ० ४६

२ सेवेल-ए फारगाटेन इम्पायर पृ० ८७

३ कैटलाग आफ इन्सक्रपशनस इन मद्रास म्यूजियम् नं० २६

४ एपि० कर० भाग ७ पृ० ११४

५ वही भाग १२ पृ० १०६। वही भाग १० पृ० ३१

६ बटरवर्थ—नेलोर इन्सक्रपशन भाग २ पृ० ६६१

७ एपि० कर० भाग १२ पृ० ७३

जाता था[1]। देश के लिए अन्य काम करने पर भी राज्य की ओर से पदविया प्रदान की जाती थीं तथा ऐसे व्यक्तियों को कुछ सुविधाये मिलती थीं। एक लेख में वर्णन मिलता है कि जिस व्यक्ति ने मदिरों से मुसलमानों को हटाया उसे राग-भोग मे पर्याप्त भाग दिया जाने लगा[2]। उस व्यक्ति को पवित्र जल मदिर से सदा मिलता था। किसी किसी समय उसको पालकी अथवा भगवान् की चॅवर पुरस्कार में दी जाती थी। कभी वह शहर का कोतवाल बनाया जाता था[3]। देश मे अच्छे दस्तकारी के काम करने वाले कारीगर को मकान या जमीन इनाम में दी जाती थी[4]। विजयनगर सम्राटों ने अपने अधीनस्थ नायकों को भी देश-प्रेम के लिए पदविया दीं। काञ्ची के नायकों को 'समस्तभुवनाश्रय', 'काञ्चीपुराधीश्वर' अथवा 'पाण्ड्यकुलस्थापनाचार्य' की पदविया दी गई थीं[5]। इसके अतिरिक्त देश के प्रति लगन तथा इच्छापूर्वक कार्य करने वाले व्यक्ति को 'आचार्य, मुनि, आर्य या योगीन्द्र' की पदवियों से विभूषित किया जाता था[6]। इस विस्तृत विवरण से यही तात्पर्य निकलता है कि विजयनगर राज्य मे जनता के देश-सेवा के कार्यो पर शासक की ओर से विशेष ध्यान रक्खा जाता था और उपहार भी दिये जाते थे। ये कार्य तत्कालीन लोगों के ऊचे तथा पवित्र चरित्र का दिग्दर्शन कराते हैं। देश-भक्तों को राजा के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों से भी पुरस्कार मिलता था। लेखों में इस प्रकार का वर्णन मिलता है[7] कि जनता द्वारा किये गये कार्यों का पुण्य शासक को मिलता था।

---

१ वही भाग ८ पृ० ८३

२ नं० ७० आफ १६१५; रंगाचार्य—टोपो० लिस्ट भाग १ पृ० १६८

३ एपि० इंडि० भाग ६ पृ० १३०

४ एपि० कर० भाग १० पृ० १५६

५ एपि० इंडि० भाग ६ पृ० ३३०; मैसूर आ० रि० १६२० पृ० ३७

६ सा० इ० इ० भाग १ पृ० १५६

७ एपि० कर० भाग ४ पृ० ३५; नं० ३५८ आफ १६१८

विजयनगर शासनकाल मे स्त्रियों को उच्च स्थान प्राप्त था। स्मृतिकार भारतीय समाज में स्त्रियों के स्थान के विषय मे एक मत नहीं हैं[1]। उनकी महत्ता तथा अधिकार के विषय में सदा मतभेद बना रहा। मनु ने 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' का उल्लेख कर इनकी महत्ता प्रदर्शित की है। विजयनगर दरबार तथा समाज मे इनका अत्यन्त आदर होता था। विद्यारण्य ने 'पराशर-माधव' के दाय-विभाग (व्यवहार काण्ड) मे इस बात का विवेचन किया है। उनके कथनानुसार स्त्रियाँ पिण्ड-दान कर सकती हैं। वे राजा की नौकरी कर सकती हैं। व्यापार, कारबार तथा कृषि मे भी पर्याप्त भाग ले सकती हैं।

स्त्रियों का स्थान

उस समय राजकुमारियों को बालकपन से ही शिक्षा दी जाती थी। उनको गाना बजाना तथा नृत्य सिखलाया जाता था। राजमहल में ऐसी अध्यापिकायें नियुक्त की गई थीं जो उनको सब कला सिखलाती थीं। अब्दुर रज्जाक का कथन है कि स्त्रिया तथा रानिया विदुषी होती थीं। वे गणित जानतीं थी। ज्योतिष सम्बन्धी गणना करतीं तथा फलित-ज्योतिष से परिचित थीं[2]।

स्त्रिया शक्तिशालिनी होती थीं। वे कुश्ती लड़ा करती थी। पति के साथ रानियाँ युद्ध-क्षेत्र मे जाया करती थी[3]। और युद्ध-सचालन मे भाग लिया करती थीं[4]। स्त्रियाँ राजकीय महल मे नौकरी भी करती थी। देवराय द्वितीय ने मन्दिरों मे देवदासियों की नियुक्ति के लिए ग्राम दान में दिया था[5]। विजयनगर काल मे ऐसी स्त्रियो के नाम मिलते हैं जिन्होने

स्त्रियों की रचनायें

---

१ मनु ९।१९४। याज्ञ- १।८२। शुक्र ४।४।५९५

२ सेवेल–ए फारगाटेन इम्पायर पृ० २७१

३ आ० स० रि० १९०८–९ पृ० १७८

४ मैसूर आ० रि० १९२३ पृ० ९०। ५ इपि० रि० १९२३

साहित्य सेवा से अपना नाम अमर बनाया है तथा बड़े-बड़े कवियों से उनकी तुलना की जा सकती है। कुमार कम्पण की पत्नी गंगदेवी का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है जिसने 'मधुरा-विजयम्' या कम्पण चरितम्' नामक महाकाव्य लिखा है। इस महाकाव्य मे उसने अपने पति द्वारा मदुरा-विजय का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। दूसरी विदुषी तिरुमलम्बा का नाम तामिल-साहित्य मे अमर रहेगा। इस रानी ने 'वरदाम्बिका-परिणयम्' नामक ग्रन्थ की रचना की[1]। रामराय की पत्नी एक प्रसिद्ध कवियित्री थी। मदुरा के रघुनाथ नायक की पत्नी 'घटिका-शतक' थी अर्थात् वह एक घण्टे मे सौ श्लोको की रचना करती थी। वह सस्कृत तथा तेलुगु दोनो भाषाओं मे 'घटिका-शतक' होने के लिए प्रसिद्ध थी[2]। इन स्त्रियों के अतिरिक्त अहमदनगर की रानी चादवीबी का नाम अत्यन्त विख्यात था। मुगल सम्राट् अकबर के साथ उसका युद्ध इतिहास प्रसिद्ध है। विजयनगर राज्य के अन्तिम दिनों मे राजाओं की रानिया ही शासन-प्रबन्ध करती थीं।

पर्दे की प्रथा का अभाव

विजयनगर में सर्वदा बहुत विवाह करने की प्रथा प्रचलित थी। राजाओ की कई स्त्रियाँ होती थी। वे राजा के साथ यात्रा तथा युद्ध में साथ जाया करती थी। सर्व साधारण लोग भी अनेक विवाह कर सकते थे। स्त्रियों के पति के साथ युद्ध तथा यात्रा मे जाने से यह प्रकट होता है कि विजय-नगर-काल मे पर्दे की प्रथा न थी[3]। स्त्रिया स्वतन्त्रता पूर्वक पति के साथ यात्रा करती थीं और सामाजिक कार्यों मे भाग लेती थीं। कृष्णदेव राय की धातु-मूर्त्ति, उसकी दो रानियों के साथ, मिली है। अनेगुडी के चित्रों मे स्त्रिया जुलूस में सम्मिलित दिखलाई गई हैं जिससे पर्दे की प्रथा का प्रचार न होने की बात प्रकट होती है।

---

१ वही। २ सालातोर—विजयनगर हिस्ट्री भा० २ पृ० ९६४

३ एपि० कर० भा० ६ पृ० १०२

बाल-विवाह तथा शूद्रों द्वारा बेटी-बेचने का उल्लेख लेखों मे पाया जाता है। उस समय विवाह मे तिलक या दहेज लेने का अधिक रिवाज था। वर को गाव तक दहेज में दिया जाता था। द्रव्य की तो कोई गणना ही नहीं की जाती थी। जो लोग जाति के इन नियमों का पालन नहीं करते थे वे जाति से वहिष्कृत कर दिये जाते थे। कहने का तात्पर्य यह है कि वैवाहिक नियम बहुत कठोर थे और बाल-विवाह तथा दहेज की बुरी प्रथा प्रचलित थी।

दहेज की प्रथा

दक्षिण-भारत में विजयनगर से पूर्व सती की प्रथा प्रचलित थी। उस समय के लेखों मे इसे 'सहगमन' कहा गया है[1]। विजयनगर में विधवा-विवाह की प्रथा न होने के कारण अधिकतर स्त्रिया सती हो जाती थीं। बारबोसा ने लिखा है कि राजा तथा नायक लोग अपने पुत्रों को राज्य-भार देकर युद्ध मे चले जाते थे। युद्ध मे उनकी मृत्यु के बाद उनकी पत्नियाँ सती हो जाती थीं[2]। उस समय की धार्मिक भावनाए स्त्रियों को इस कार्य के लिए बाध्य करती थीं। न्यूनिज ने इस बात की पुष्टि की है कि पति के मर जाने पर उनकी स्त्रिया रोती थी और सती होने के लिए तैयार हो जाती थीं जिससे उनके वश मे कलक न लगे। फ्रेडमरिक ने भी विजयनगर मे सती होते हुए स्त्रियों को स्वय देखा था[3]। स्त्रियाँ प्रत्येक दशा मे पति के—युद्ध, घेरा, आक्रमण अथवा गृहयुद्ध मे मर जाने पर सती हो जाती थीं। उच्च वर्ण के लोगो में इस प्रथा के प्रचार होने से यह सर्वसाधारण मे भी फैल गई[4]। हरिहर के समय के लेखों मे गौड़ की पत्नी के सती होने का वर्णन मिलता है[5]। इस लेख मे भेलगोड के स्वर्ग-गामी होने की बात लिखी है

सती-प्रथा

---

१ मैसूर आ० रि० १९२० पृ० ४२, एपि० कर० भा० ७

२ बारबोसा-डेमस भा १ पृ० २१२

३ पिलग्रिमस भा० १० पृ० ९४

४ इलियट—हिस्ट्री भा० ७ पृ० १३९

५ एपि० कर० भा० ८ पृ० १५

तथा उसकी पत्नी के 'सहगमन' का उल्लेख किया गया है। बुक्कराय के समय मे सती होने के अनेक उल्लेख पाये जाते हैं। हरिहर द्वितीय के समय मे सती होने का उल्लेख मिलता है[१]। तत्कालीन युद्ध में मृत पति की सती स्त्रियों की प्रस्तर-मूर्तिया आज तक सुरक्षित मिलती है जिन्हें 'महासती-मूर्ति' कहा जाता है[२]। इस प्रकार विजयनगर के लेखों मे 'सहगमन' के सैकड़ों उल्लेख पाये जाते हैं[३]। विदेशी यात्रियों ने वेंकटपति राय की रानियों के सती होने की बात को विशेषरूप से लिखा है[४]। उनके कथानुसार राजा के मरने के बाद उसकी तीन रानिया सती हो गईं। सहगमन के समय वे उत्साह पूर्वक मृत शरीर के पास आईं। वे सुन्दर वस्त्र तथा सोने और जवाहिरात के आभूषण पहन कर तैयार थी। उस समय राजा का मृत शरीर वाटिका मे सुन्दर लकड़ियो तथा सुगन्धित पदार्थों—चन्दन तथा घी—के साथ जलाया गया। रानियाँ सब उपस्थित लोगों की आज्ञा लेकर ऊँचे स्थान से चिता मे कूद गई और दिव्य-गति को प्राप्त होगईं[५]।

गणिका

सार्वजनिक स्त्रियों को वेश्या या गणिका कहते थे। भारत मे गणिका की सत्ता प्राचीन काल से चली आती है। ये पढी लिखी तथा काम-शास्त्र में कुशल होती थीं। विजयनगर से पूर्व चालुक्य राजाओं की प्रशस्तियों मे इनका उल्लेख मिलता है[६]। विजयनगर राज्य मे वेश्याओं के लिए गाना तथा नृत्य एक दैनिक कार्य था[७]। राजमहल मे राजकुमारियो को गान विद्या सिखलाने के लिए गणिकाएँ नियुक्त की जाती थीं। मन्दिरों मे इनका नाच, तथा गाना प्रत्येक शनिवार को हुआ करता था[८]। विदेशी लोग इनकी कला-कुशलता को देख कर दंग रह जाते थे। बडे-बडे उत्सवों—राम-नवमी तथा विजया-

१ मैसूर आ० रि० १६२३ पृ० १० । २ सालातोर भा० २ पृ०८८

३ एपि० कर० भा० ३, ७, ८, ६, ११

४ सेवेल-ए० फा० इम्पा० पृ० २२४ ।५ हेरास-आरविडु पृ० ५०८

७ एपि. इंडि. भा. १३ पृ. ३७। ६ सा इ. इ. भा. २ पृ. २६६

८ सेवेल—ए फा. इम्पा. पृ. २४१ ।

दशमी आदि-पर गणिकायें नृत्य किया करती थी। अब्दुर रज्जाक ने वर्णन किया है कि राजधानी मे मुद्रानिर्माणगृह (टकसाल) के समीप मे गणिकाओं के लिए एक स्थान निश्चित कर दिया गया था[1]। कृष्णदेव राय के समय मे अधिक वेश्याएँ थीं। उसने एक 'गणिका-नगर' बसाया था। मन्दिरों में नाचने के लिए भूमि दान मे दी जाती जिससे उत्सव के दिन नृत्य का व्यय उसी भूमि की आय से किया जाय[2]। फिरिश्ता के कथनानुसार वेश्याओं के लिए राजधानी मे एक अलग मार्ग था। बारबोसा ने लिखा कि राजनैतिक, धार्मिक तथा सामाजिक उत्सवों पर गणिकायें सुन्दर वस्त्र तथा आभूषण धारण करके नृत्य के लिए आती थी। उनका सिर खुला रहता था। वे सिर मे एक विशेष आभूषण तथा गले में मोती और हीरे का हार पहनती थीं। कानो मे कुण्डल तथा नाक में बेसर (झुलनी) पहनने की प्रथा थी। वे पैरो मे चमडे का जूता पहनती थीं[3]। विजयनगर-काल मे नृत्य करती हुई गणिकाओ की आकृति प्रस्तर पर खुदी हुई मिलती है। ये मूर्त्तियाँ उस समय की नृत्य-कला का एक जीता-जागता चित्र सामने उपस्थित करती हैं[4]। उनमे होली के त्योहार पर गणिकायें सुन्दर वस्त्राभूषण और केश-न्यास से सुसज्जित होकर नृत्य करती हुई दिखलाई गई हैं। इस प्रकार वेश्यायें जनता के आमोद-प्रमोद मे योग दान दिया करती थी।

ऊपर के वर्णन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि विजयनगर काल में भारतीय समाज कितना उन्नत था। राजा वर्णाश्रम-धर्म का पालन करने वाला था तथा प्रजा अपने कर्तव्यों के पालन करने मे प्रयत्नशील रहती थी। चारों वर्ण 'स्व-धर्म' मे निरत थे तथा समाज मे किसी प्रकार का राग-द्वेष नही था। इस समय मे गणिकाओं की सत्ता यह भी प्रमाणित करती है प्रजा सुखी होने के साथ ही विलासी भी थी।

---

१ इलियट—हिस्ट्री भा ४ पृ १११।

२ सेवेल—ए फा. इम्पा पृ २०७।

३ डेमस भा० १ पृ० २०७

४ खानडेलवाला—इण्डियन स्कल्पचर प्लेट ७६

: ११ :

भौतिक-जीवन

गत पृष्ठों में विजयनगर-साम्राज्य की सामाजिक-अवस्था का वर्णन किया जा चुका है। अब हम इस अध्याय में संक्षेप में यह दिखलाने का प्रयत्न करेंगे कि विजयनगर-काल में लोगों का भौतिक-जीवन कैसा था? उस समय के लोग किस प्रकार का भोजन करते थे, उनका पहनावा किस ढंग का था तथा उनके मनोरंजन के साधन क्या थे? कौन-कौन से ऐसे उत्सव तथा त्योहार थे जिन्हें विजयनगर की जनता मनाती थी तथा इनके मनाने का क्या प्रकार था? तत्कालीन राजाओं की दिनचर्या क्या थी तथा वे किस प्रकार काल-यापन करते थे? जनता किस प्रकार मन्दिरों में जाकर देवता के दर्शन के साथ ही श्रवण-सुखद संगीत का भी आनन्द लेती थी? इन सब बातों का वर्णन अगले पृष्टों में पाठकों को मिलेगा। इसमें सन्देह नहीं कि विजयनगर-काल में जनता का भौतिक-जीवन अत्यन्त आनन्दपूर्ण तथा सुखदायी था, जिसका उल्लेख विदेशी यात्रियों ने भी अपने यात्रा-विवरणों में किया है।

विजयनगर-राज्य में भौतिक-जीवन उन्नति की सीमा को पहुँच गया था। लोग सुख-पूर्वक अपना समय व्यतीत करते थे। फिरिश्ता ने

भवन

विजयनगर के राजमहल तथा साधारण भवन का सुन्दर वर्णन किया है। राजा का महल चारों तरफ से दीवालों से घिरा रहता था। महल के अन्दर जाने के लिए मार्ग बने थे। प्रत्येक द्वार पर द्वारपाल रहता था। सेनापति तथा नायकों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों को अन्दर प्रवेश करने का निषेध था। कोई-कोई भवन स्तम्भों से सुसज्जित होते थे तथा उनमें मूल्यवान् पत्थर जड़े रहते थे। स्तम्भों पर दस्तकारी के काम बने होते थे। कोई कमरे हाथी दांत के बने होते थे। सोने से जड़े हुए पलग प्रयोग किये जाते थे। राजा की

आज्ञानुसार महल में विदेशियो द्वारा चित्रकारी की जाती थी। महल मे कमरो के चारों तरफ बरामदा बना हुआ था। राजमहल कई मजिल का होता था। राजा तथा नौकरो के आने-जाने का मार्ग पृथक्-पृथक् बना था। राजा तथा साधारण जनता मे पारस्परिक प्रेम था[१]। गरीब लोगों की झोपड़िया फूस की बनी होती थीं परन्तु गोबर-मिट्टी से पुती होने के कारण सुन्दर लगती थीं। सिमेंट से बने मकान की भाति उनकी झोंपड़ी पुतने से सुन्दर तथा मजबूत हो जाती थी[२]।

राजधानी में महल तथा राजसभा के भवन पृथक् हुआ करते थे। एक कमरा २०×६ फीट या २०×१२ फीट के माप का हुआ करता था और उसकी बनवाई मे प्रायः तीन सौ बाराह (मुद्रा) व्यय किया जाता था[३]। जो भवन राजसभा के लिए तैयार किया जाता वह चारो तरफ से खुला होता था। केवल खम्भो पर ऐसी इमारतें तैयार की जाती थीं[४]। वहा सेनापति, नायकों तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियो के लिए पृथक्-पृथक् भवन निर्मित थे[५]।

मनुष्यों के मनोरंजन के लिए संगीत-गृह, चित्रशाला तथा नाट्य-गृह तैयार किए गये थे[६]। मदिरों मे भी गाना बजाना होता तथा नाटक खेले जाते थे[७]। इन कार्यों के लिए अनेक व्यक्ति द्रव्य दान दिया करते थे। केन्द्रीय स्थान के अतिरिक्त प्रांतों में भी नाट्य-शालाए बनी हुई थीं। 'रघुनाथाभ्युदयम्' में ऐसे नाट्य-गृह का वर्णन मिलता है[८]। राजा तीर्थ-यात्रा करने या राज्य

आमोद प्रमोद की सामग्री

---

१ सेवेल—ए० फारगाटेन इम्पायर पृ० २६३, २८६--७

२ वेले—ट्रैवेल्स भा० २ पृ० २३०

३ कैटलाग आफ मद्रास म्यूजियम भाग १ पृ० ४२

४ एपि० कर० भाग १० पृ० ५३

५ बारबोसा—भाग १ पृ० २०२। ६ एपि० कर० भाग ११ पृ० ३६

७ सा० इ० इ० भा० ३ पृ० २६०

८ कृष्णस्वामी—सोर्सेज़ पृ० २६४

में भ्रमण करने जाया करता था। उद्यान तथा वाटिकाओं की स्थिति उस पर्वतीय प्रदेश मे अधिक नहीं हो सकती थी। विजयनगर मे पक्षियों का पालन कर लोग मनोविनोद किया करते थे। बाज तथा कबूतर अधिक सख्या में पाले जाते थे। पहला तो शिकार मे प्रयोग किया जाता था तथा दूसरा पक्षी भोजन के काम आता था। राज्य में मुसलमानों के निवास करने से मुर्गों की अधिकता थी। इन्हें द्वन्द्व-युद्ध मे प्रयोग किया जाता था क्योंकि मुर्गों की लड़ाई एक मनोरजन की चीज समझी जाती थी।

वाहन

विजयनगर-साम्राज्य की स्थिति दक्षिण-भारत की पथरीली भूमि-भाग (प्लेटो) में थी। ऐसी अवस्था मे सबसे प्रिय तथा उपयोगी वाहन घोड़ा था। यद्यपि लडाई में हाथी और रथ का भी प्रयोग किया जाता परन्तु भौगोलिक स्थिति के कारण घोडों को अधिक महत्त्व दिया गया था। विजयनगर के शासक प्रत्येक वर्ष लाखों रुपये घोड़ों के खरीदने मे व्यय करते के। पुर्तगाली लोगों से व्यापारिक-सन्धि मे घोडों के खरीदने तथा रखने का अधिकार विजयनगर-शासक को ही था। पहाड़ पर चलने के लिए अरब के घोडे ही अधिक उपयुक्त समझे जाते थे। यही कारण था कि पुर्तगाली अरब के घोडे खरीद कर राजा के हाथ बेचते थे या कोई विदेशी व्यापारी गोआ मे घोडे बेचने के लिए ले आता तो वे सब विजयनगर के लिए खरीदे जाते थे।

वस्त्र

विजयनगर में विदेशी लोगों के वर्णन से विभिन्न वस्त्रों के प्रयोग का पता लगता है। सर्वप्रथम बात तो यह है कि विजयनगर मे कर की वसूली कपड़ों के कारखानों तथा बुनने वालों से की जाती थी। कपड़ों के गट्ठर पर कर लगाया जाता था। बाजार में कपड़ों पर चुङ्गी लगती थी। इन सब बातों से यही अर्थ निकलता है कि विजयनगर राज्य में वस्त्र अधिकता से बनते थे। उस भाग की भौगोलिक अवस्था पर विचार करने से इसकी सार्थकता मालूम पड़ती है। इससे यही ज्ञात होता है कि राज्य मे कपास की खेती अधिक होती थी अतः सूती कपडे प्रचुर मात्रा में तैयार किये जाते थे। देश के इस भाग में गर्मी

की अधिकता रहती थी अतः वस्त्र धारण करने की अधिक आवश्यकता न समझी जाती थी। वैश्य लोग कमर से कन्धे तक कोई वस्त्र धारण नहीं करते थे। राजा तथा अन्य मन्त्रीगण रेशमी तथा मलमल का पतला वस्त्र पहना करते थे। पुर्तगालियों के व्यापार में चीन के रेशम का बहुत बड़ा भाग रहता था। राजा सूती कपड़ा पहनता था परन्तु उसके ऊपर कामदार जाकेट भी होता था। अब्दुर रज्जाक का कहना है कि सम्राट कृष्णदेव राय ऐसे ही वस्त्र पहन कर राजदूतो से मिलता था[१]। दक्षिणी-भारत मे राजा की प्राप्त धातु-मूर्तियों से प्रकट होता है कि कृष्ण-देवराय कमर से घुटने तक वस्त्र पहनता था। उसका पैर नगा तथा सिर लम्बी तुर्कीनुमा टोपी होती थी। मूर्ति में शरीर नगा है परन्तु आभूषण पहने हुए दिखलाई पड़ते हैं प्रायः समस्त धातु-मूर्तिया ऐसी ही तैयार की जाती थीं[२]। राजा जो वस्त्र एक बार पहन लेता था, उसे दूसरी बार धारण न करता था। उन्हे गरीबों को या महल के किसी नौकर को दे दिया जाता था[३]। मूर्तियों को देखने से राजा का बदन नगा मालूम पड़ता है परन्तु बात ऐसी नहीं है। रेशम तथा मलमल का अधिक प्रयोग होता था। इसी कपडे के बने लम्बे वस्त्र स्त्री तथा पुरुष घुटने तक धारण करते थे। स्त्रियों के वस्त्र तो कभी एड़ी तक पहुच जाते थे। राजा लम्बी टोपी (कामदार) पहनता था तथा सर्व साधारण लोग सिर पर पगड़ी बाँधते थे। औरते मूल्यवान् वस्त्र सिर पर रखती थीं[४]। साधारण व्यक्ति नगे शरीर तथा नगे पैर अपना काम किया करते थे। राजा भी अधिकतर जूता नहीं पहनता था। केवल स्त्रिया कामदार जूता पहना करती थीं। इससे यह सिद्ध किया जा सकता है कि कामदार जूता भी उस समय बनता था। विजयनगर राज्य में मोचियों पर कर लगाया गया था[५]।

---

१ सेवेल—वही पृ० २४६

२ ओ० सी गागूली—सा० इ० ब्रोजेज़ पृ० २२, प्लेट १२४

३ एपि० इडि० भाग १३ पृ० १२१

४ मेजर इण्डिया पृ० २२। ५ एपि० कर० भा० १० पृ० २६२

वेश्याओं का वस्त्र सर्वथा भिन्न प्रकार का होता था। वे सुन्दर रेशमी वस्त्र धारण करती थी। उनका सिर सदा खुला रहता था। वे चमडे का जूता पहनती थीं। नाचते समय वे अपना वस्त्र सदा बदला करती थीं[1]। वे कन्धे से लेकर नीचे तक वस्त्र पहनती थीं। कहने का तात्पर्य यह है कि ऊँची श्रेणी के पुरुष तथा स्त्रिया लम्बा वस्त्र धारण करती थीं। सर्व साधारण लोगो का शरीर कमर से कन्धे तक नग्न रहता था। सिर पर लोग पगडी या कोई अन्य वस्त्र रखते थे। ब्राह्मण मलमल की एक बारीक चादर लिए रहता तथा सिर पर पगडी बाधे रहता था[2]। ललाट पर भस्म या चन्दन का तिलक लगाना साधारण बात थी। सभी लोग इसका प्रयोग करते थे। जो विदेशी मुसलमान या पुर्तगाली वहा निवास करते थे उनका वस्त्र अन्य प्रकार का होता था। वे चूडीदार पायजामा तथा सफेद वस्त्र शरीर मे पहना करते थे। वे लम्बी तुर्की टोपी तथा पैरों मे जूता पहिनते थे[3]। इस प्रकार पद के अनुसार तरह-तरह के वस्त्र विजयनगर राज्य मे पहने जाते थे।

शरीर को सुन्दर बनाने के निमित्त आभूषण का प्रयोग प्रचुर मात्रा मे किया जाता था। विजयनगर की समृद्धि के ज्वलन्त उदाहरण पहने जाने वाले आभूषण भी हैं। पुरुष गले मे हार पहनते थे। राजा तो जवाहिरात (हीरा) की एक पट्टी गले मे बाँधता था जिसके मूल्य का अनुमान नही किया जा सकता था[4]। वह सिर पर सोने की टोपी धारण करता। कानो मे कुण्डल पहिनने की प्रथा सर्व साधारण थी। कोई भी व्यक्ति कुण्डल के बिना नही रहता था। ब्राह्मण सोने का कुण्डल रखता था तो वैश्य तथा ऊँचे राज-कर्मचारी हीरे का बना हुआ कुण्डल धारण करते थे। कमर मे करधनी पहिनने की

आभूषण

---

१ एपि० कर०। भा० २ पृ० १०८

२ सेवेल—पृ० ३६३। ३ पिग्रिम्स भा० १० पृ० ९७३

४ इलियट-हिस्ट्री आफ इण्डिया भा० ४ पृ० ११३

रीति भी प्रचलित थी ।।राजा से लेकर साधारण व्यक्ति करधनी रखता था। धातु की मूर्त्तियों में कृष्णदेव राय तथा वेंकटपतिदेव राय मूल्यवान् चौड़ी करधनी पहने दिखलाये गये हैं[1] । हाथों में भी आभूषण पहिनने की चाल थी । भुजदण्ड की तरह राजा आभूषण पहिनता तथा अगुलियों में अगूठी पहिनता था। बारबोसा ने वर्णन किया है कि विजयनगर के व्यापारी हीरा जडी हुई अगूठी पहिनते थे[2] । अब्दुर रज्जाक का कहना है कि सभी लोग कानो मे कुण्डल, गले में हार, हाथो मे भुजदण्ड, कमर मे करधनी तथा अगुलियों मे अँगूठी पहिना करते थे[3] ।

पुरुषो के अतिरिक्त स्त्रिया आभूषण से पूर्ण होती थीं। सिर पर बालो मे आभूषण पहनती थीं। गले में चौड़ी पट्टी का हार धारण करतीं, हाथों मे भुजदण्ड तथा कड़ा पहना करती थीं। वे कमर मे विभिन्न प्रकार से जटित करधनी रखती थीं। अगूठियों की तो गिनती ही न थी। उनके कानों मे लम्बे लटकते हुए आभूषणों मे मूर्त्तियों का रूप दिखलाई पडता था। पैरों मे तथा हाथो मे कड़ा पहनती थी। कृष्णदेव राय की धातु-मूर्त्तियों के साथ-साथ उसकी रानियो की भी धातु मूर्त्तियाँ पायी जाती हैं[4] । विजयनगर मे जल (नदी) देवी की मूर्ति समस्त आभूषणों से सुसज्जित दिखलाई गई है[5] । जिससे तत्कालीन नाना प्रकार के आभूषणों का पता चलता है। इन मूर्तियों से तथा अनेगुण्डी के चित्रों से वस्त्राभूषण का विशेष ज्ञान होता है[6] । साधारण स्त्रियों के अतिरिक्त वेश्याए मूल्यवान् आभूषण धारण किया करती थीं। महानवमी के दिन या किसी अन्य उत्सव मे जब

---

१ गांगूली साउथ इण्डियन ब्रोन्जेज पृ० ६० प्लेट १२४ व १२५
२ डेमस भा० २ पृ० १२५। ३ इलियट–हिस्ट्री भा० ४ पृ० १०६
४ गांगूली—सा० इ० ब्रोन्जेज़ प्लेट १२४
५ खानडेलवाला–इण्डियन स्कल्पचर चित्र ७७
६ स्टेला क्राम्रश–पेन्टिग इन डेकन पृ० १०७

वेश्याएँ नृत्य करती थीं तो उनके बदन पर सुन्दर वस्त्र के अतिरिक्त मूल्यवान् गहने भी दिखलाई पड़ते थे। अब्दुर रज्जाक ने लिखा है कि उनके लिए एक पृथक् स्थान था। वहाँ से निकलने पर सिर में सोने का फूल, नाक में हीरे की झुलनी, कानों में कुण्डल तथा मोती, मूंगे और हीरे का हार पहना करती थीं[1]। नृत्य करती हुई पत्थर की मूर्तियों में इतने विभिन्न प्रकार के आभूषण नहीं दिखलाए गए[2]। परन्तु विदेशियों की आँख देखी बात पर अधिक विश्वास किया जा सकता है। विजयनगर के वैभव की उन्नत अवस्था में वेश्याओं के मूल्यवान् तथा नाना प्रकार के आभूषणों का अनुमान आसानी से किया जा सकता है।

वस्त्राभूषण के साथ केश को भी उचित ढंग से रखने की प्रणाली थी। विजयनगर-राज्य में चित्रों तथा मूर्तियों द्वारा केशों के विभिन्न प्रकार का ज्ञान होता है। इनमें केशों की ग्रन्थि दिखलाई गई है जो सिर के पीछे बड़े आकार में चित्रित किया जाता था। केशों की ग्रंथियों में आभूषण तथा फूल लगाने की भी प्रथा थी। इस प्रकार केश-विन्यास का साक्षात् नमूना मूर्तियों तथा चित्रों में दिखलाई पड़ता है। हजारा की प्रस्तर-मूर्तियों तथा अनेगुंडी के चित्रों में सिर के पीछे ग्रन्थि-युक्त केश दिखलाई पड़ते हैं[3]। पुरुषों के केश बहुत लम्बे नहीं होते थे। पगड़ी बांधने की रीति अधिक प्रचलित थी, विदेशियों ने भी इस बात की पुष्टि की है। स्त्रियों के ग्रंथि-युक्त केश की प्रथा को उन्होंने भी दुहराया है[4]।

केश

सामाजिक-जीवन में आनन्द-लाभ के निमित्त समय-समय पर बड़े

---

१ वारबोसा भा. १; पृ० २०७।

२ खानडेलवाला—इंडियन स्कल्पचर प्लेट ७६।

३ खानडेलवाला-इंडियन स्कल्पचर प्लेट ७६

४ लेजर इंडिया पृ० २२.

बड़े उत्सव हुआ करते थे। कामसूत्र में उत्सवों की महत्ता बतलाई गई है। पूजा के लिए पर्व, यात्रा, गोष्ठी आदि उत्सव मनाये जाते थे। विजयनगर शासक सैकड़ों प्रकार के उत्सवों को मनाया करते थे[१]। उनमें से धार्मिक, सामाजिक तथा राज-नैतिक उत्सवों की गणना पृथक्-पृथक् की जा सकती है। धार्मिक उत्सवों में रामनवमी, रथ-यात्रा, ग्रहण-स्नान तथा देवमूर्ति को ले आना आदि प्रधान थे। मंदिरों में साप्ताहिक, मासिक, तथा वार्षिक उत्सव मनाया जाता था और विशेष प्रकार से पूजा होती थी। भगवान् राम और कृष्ण की जन्म-तिथि बड़े समारोह से मनाई जाती थी। चैत्र मास में भगवान् की मूर्त्ति को पंचामृत से स्नान कराया जाता था[२] और वही सब को बाँटा जाता था। रात को मंदिरों में रोशनी की जाती थी। रथ-यात्रा में भगवान् की मूर्ति रथ पर बैठा कर सारे शहर में घुमाई जाती थी। इसके साथ वेश्याएँ नृत्य करती हुई शहर भर में घूमती थीं[३]। मंदिरों में प्रत्येक एकादशी को उत्सव मनाया जाता था। राजा तथा उसके दरबार के लोग व्रत करते थे[४] और राजा मंदिर में उत्सव देखने जाता था। नर्तकी मंदिरों में नाचा करती तथा समारोह-पूर्वक पूजा की जाती थी। राजा लोग उस उत्सव के व्यय के लिए ग्राम दान में दिया करते थे[५]। सोमप्पा ने सोमव्रत को विधि पूर्वक करने के लिए एक मंदिर बनवाया तथा दान दिया[६]। विजयनगर शासक ने हरिहर और लक्ष्मी के पाक्षिक उत्सव के निमित्त कई ग्राम दान दिये थे[७]। इस प्रकार मंदिरों में विधि पूर्वक पूजा, नृत्य तथा उत्सव के व्यय के लिए विजयनगर शासक और नायक दान

उत्सव

---

१ मैसूर इन्सक्रृपशन्स पृ २२३, एपि. कर० भा० ५ पृ० १४५

२ मैसूर आ० रि० १९१३ पृ० ४६

३ मेजर इंडिया पृ० २८। ४ सेवेल-ए फारगाटेन इम्पायर पृ० २६२

५ एपि० कर० भा० ५ पृ० १। ६ वही भा० १० पृ० ६४

७ मैसूर-प्रशस्ति पृ० ४२

दिया करते थे। मदिरों मे पूजा करने के लिए ब्राह्मण तथा देवदासी नियुक्त की गई थी जिनका उल्लेख लेखों मे पाया जाता है[1]। श्रावण मास की पूर्णिमा को सर्वत्र मेला लगा करता था[2]। स्त्री तथा पुरुष किसी नदी या समुद्र मे स्नान करते थे[3]। मकर-सक्राति, गोकुलाष्टमी तथा शिवरात्रि के पर्वो का वर्णन लेखो मे स्पष्टतया मिलता है[4]। इन सारे उत्सवों पर विशेष समारोह से पूजा होती थी। मदिरों मे नृत्य होता तथा रात को रोशनी की जाती थी[5]। इन मूर्त्तियो को श्रावण तथा चैत्र मास मे झूला झुलाया जाना था[6]। जैनी लोग अपने धर्म के अनुकूल अन्य प्रकार का उत्सव मनाया करते थे।

विजयनगर राज्य मे सामाजिक-त्यौहार होली तथा राष्ट्रीय-उत्सव दशहरा (महानवमी) बड़े समारोह-पूर्वक मनाया जाता था। इस महानवमी को दुर्गापूजा के नाम से भी पुकारते थे और इसका राजनैतिक महत्त्व भी था। यह उत्सव एक सप्ताह से लगाकर नव दिन तक राजधानी मे मनाया जाता था। राजा उस समय जहा कही भी हो राजधानी को अवश्य लौट आता था। इस उत्सव के समय राज्य के समस्त नायक तथा बडे कर्मचारी राजधानी मे एकत्र होते थे। सब लोग हाथी, घोडे, रथ तथा सेना से सुसज्जित होकर आते थे। इस उत्सव को मनाने के लिए कई मजिल का नया मकान तथा क्रीडास्थल तैयार किया जाता था। ये मकान बरामदे से युक्त होते थे। मकान तथा फाटक तोरण तथा फूल आदि से सजाया जाता था। चारो तरफ से पहरेदार नियुक्त किये जाते थे। सम्राट् सबसे ऊंची मजिल पर बैठता था। उसके चारा तरफ ऊंचे कर्मचारी तथा नायक लोग अपना आसन ग्रहण करते थे। तत्पश्चात् देवता की पूजा की जाती

---

१ नं० ३७४ आफ १९१९; एपि० कर० भा० १२ पृ० १०६
२ दि राइज आफ पोर्चुगीज पृ० २८२। ३ एपि० कर० भा० ५ पृ० ११
४ एपि० कर० भा० ५ पृ० १; वही भा० १० पृ० २५४
५ मैसूर इन्सक्रपशन पृ० २२४। ६ नं० २१० आफ १९१९

थी। बलि दी जाती थी जिसमें भैंसा विशेष रूप से काम में लाया जाता था। राजा सुन्दर वस्त्राभूषण से सुसज्जित, हीरे तथा मोतियों का हार पहने उस क्रीडास्थल पर आता था। सारी उपस्थित जनता तथा राज-कर्मचारी वर्ग खड़े होकर राजा को प्रणाम करते थे। उस स्थान पर नर्तकियों का झुण्ड सुन्दर वेष में नृत्य किया करता था। नट अपना खेल दिखलाते थे और हिंसक पशु तथा मनुष्यों मे द्वन्द्व-युद्ध होता था। शाम को राजा सारी सेना का निरीक्षण करता था। पुरोहित हाथियों तथा घोड़ों पर जल छिड़कता था। सारी सेना शस्त्रों से सुसज्जित होकर खड़ी की जाती थी और शासक एक ओर से दूसरी ओर तक उसका निरीक्षण करता था। रात मे उस स्थान की शोभा आतिशबाजी के कारण बढ़ जाती थी। इस प्रकार यह उत्सव नव या दस दिन तक बड़े समारोह के साथ मनाया जाता था[१]। अंतिम दिन दुर्गा के मंदिर मे बलि (भैंसे की) दी जाती थी। इसके बाद लोग अपने स्थान के लिए प्रस्थान करते थे। इस उत्सव के अवसर पर राजा को नायकों से भेंट मिलती तथा कर भी वसूल किया जाता था। यही कारण है कि महानवमी का उत्सव राजनैतिक समारोह समझा जाता था और अन्य उत्सवों से इसे अधिक महत्त्व दिया जाता था।

होली का उत्सव

विजयनगर मे होली का सामाजिक उत्सव भी बड़े ठाट के साथ मनाया जाता था। होली मे सर्व साधारण जनता से लेकर राजा तक सभी भाग लिया करते थे। लेखों मे इसका वर्णन मिलता है कि केसर के रंग से होली खेली जाती थी[२]। दूसरे लेखों से पता लगता है कि वसन्त-महोत्सव (होली) उदयगिरि मे विशेष रूप से मनाया जाता था[३]। इस स्थान पर नाटक खेले जाते थे[४]। इस

---

१ इलियट—हिस्ट्री पृ० ११७, सेवेल—पृ० ३७६-८

२ एपि० इंडि० भा० ४ परि० १ पृ० ६६, भा० ३ पृ० ८, नं० २७१ आफ १६२१। ३ एपि० इंडि० भा० १ पृ० ३७०।

४ सालातोर—विजयनगर हिस्ट्री भा० २ पृ० ३६७।

के जीते जागते प्रमाण विजयनगर के प्रस्तारो पर खुदेहुए वे अभिनय के दृश्य हैं जो अभी तक मिलते हैं। कार्तिक-मास मे दीपावली का उत्सव विजयनगर मे मनाया था[१]। दीपक दिन रात जलाये जाते थे। जनता उत्सवो को मनाने के लिए दान दिया करती थी[२]। शासक की ओर से इन व्यक्तियो को पदविया दी जाती जो रथ-यात्रा के लिए रथ या ध्वजा तैयार करते थे। जो लोग इस उत्सव के लिए दान देते थे उनकी बड़ी प्रशसा की जाती थी।

मेला

विजयनगर-राज्य मे मेले अधिक लगते थे। तीर्थयात्रा के समय तीर्थस्थान पर सभी लोग स्नान करने के लिए जाते थे। राजा स्वयं मेला देखने जाया करते थे। तिरुपति जब काञ्ची की तीर्थ-यात्रा के लिए गया तो उसने यात्रियो के लिए नदी पर घाट बनवाये। श्रीरगम् स्थान पर प्रतिवर्ष बहुत बड़ा मेला लगा करता था[३]। राजा श्रीरग के समय मे धार्मिक मेला लगा करता था[४]। वेंकट-पति देव के राज्य काल मे रथयात्रा का मेला बडे समारोह-पूर्वक हुआ करता था। श्रीरग ने तीर्थ मे मेले के यात्रियो के ठहरने के लिए धर्म-शालाओ का निर्माण कराया[५]। मेले मे निकलने वाले जलूस मे वस्त्र तथा आभूषणो से सुसज्जित हाथी तथा घोड़े भी सम्मिलित होते थे। हाथियों पर अम्बारी रखी जाती थी[६]। अपार जनता जलूस के साथ चलती थी। अब्दुर रज्जाक ने ऐसा जन-समर्द बहुत कम देखा था। उसको इस जन-समारोह से बडा आश्चर्य हुआ। सभी विदेशी विजयनगर के नाना प्रकार के उत्सवो को देखकर अचम्भित हो जाते थे। साम्राज्य मे शायद ही कोई

---

१ मेजर इंडिया पृ० २८। २ रंगाचार्य—भा० १ पृ० ४६।

३ एपि० कर० भा० १२।

४ बटरवर्थ—नेलोर इन्सक्रपशन भा० ३ पृ० ८२२।

५ एशियाटिक रिसर्चेज़ भा० २० पृ० ३५।

६ इलियट—हिस्ट्री भा० ४ पृ० १११।

ऐसा व्यक्ति हो जो इस महान् मेले को देखकर आश्चर्य-चकित न होता हो।

विजयनगर-राज्य में समय समय पर उत्सव मनाने के अतिरिक्त, नाना प्रकार के साधनों द्वारा लोग नित्यप्रति मनोरञ्जन किया करते थे।

मनोरंजन के अन्य साधन—संगीत और नृत्य

गाने तथा नाचने की प्रथा अत्यधिक प्रचलित थी। प्रजा के जीवन के साथ वाद्य, गीत व नृत्य का अभिन्न सम्बन्ध था[1]। जैन मतावलम्बी भी गाने से अधिक प्रेम रखते थे[2]। राज-सभा में गाना व नाचना नित्य हुआ करता था। वेश्यायें चारुकीर्ति पण्डिता की शिष्यायें थीं[3]। विदेशी उनकी कला-कुशलता तथा सुन्दर नृत्य-प्रणाली को देख कर दंग रह जाते थे। देवदासियां मन्दिर में सेवा करती थीं तथा प्रत्येक दिन वहां गाना, बजाना हुआ करता था। शनिवार को महल में नाच होता था तथा राजा-रानी देखा करते थे[4]। इस कार्य के लिए नृत्य-स्थान बना था। वे वेश्याएँ रानियों को भी नृत्य सिखलाया करती थीं। विजयनगर के लेखों में वाद्यों का नाम मिलता है जिससे लोगों के संगीत-प्रेम का परिचय मिलता है। भेरी, दुन्दुभी, महा-मंजीर तथा वीणा के नाम मिलते हैं[5]। 'राघवेन्द्र-विजयम्' ग्रन्थ में कृष्णदेव राय के वीणा बजाने का उल्लेख मिलता है[6]। रामराय भी वीणा बजाने से प्रेम रखता था[7]। इससे ज्ञात होता है कि संगीत मनोरंजन का सबसे बड़ा साधन था।

---

१ सा० इ० इ० भा० २ पार्ट ३ पृ० २६६, भा० ३ पृ० ३७८, आ० स० रि० १६२४ पृ० १२०

२ एपि० कर० भा० २ नं० १४१

३ एपि० रि० १६१४ पृ० ९४

४ सेवेल—ए फारगाटेन इम्पायर पृ० २४१, ३७६

५ एपि० रि० १६१० पृ० ६३, एपि कर० भा ८ पृ० २२

६ सोर्सेज़ पृ० २५२।   ७ एपि० कर० भा० १२ पृ० ८४

समय-समय पर विजयनगर मे नाटक हुआ करता था। अतएव नाट्य-शाला तैयार की गई थी। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय राजधानियो मे नाटक खेलने की वार्ता लेखो तथा साहित्य से पाई जाती है[१]। कुश्ती लड़ने की प्रथा विजयनगर मे अधिक थी। सम्राट् कृष्णदेवराय स्वय प्रातःकाल होने के पूर्व कुश्ती लडता था[२]। उसकी राजधानी मे सैकडो पहलवान रहा करते थे। राजकीय कोप से उनको समस्त व्यय दिया जाता था[३]। तजार के नायक ने व्यायाम के लिए एक व्यायाम-शाला तैयार कराई थी[४]। विजयनगर-राज्य मे विदेशी जरीक ने राजा की व्यायाम-शाला का सुन्दर वर्णन किया है। उसके कथनानुसार साधारण जनता से लेकर राजा तक सभी व्यक्ति प्रति दिन व्यायाम किया करते थ। इसके लिए सब साधन वर्तमान थे। व्यायाम-शाला सुन्दर बनी थी और वह राज-महल के समीप वर्तमान थी। कूदना, दौडना मुक्की मारना (Boxing) तथा लकडी के अन्य खेल खेले जाते थे। शरीर मे पसीना आ जाने तक खेल होता रहता था। गरम पानी से शरीर की धूल और पसीना साफ किया जाता था। इसके बाद सूखे कपडे से पोछा जाता था[५]। इस प्रकार खेल नित्य-प्रति हुआ करता था। पुरुषो के अतिरिक्त स्त्रिया भी कुश्ती लडा करती थी। लाठी तथा तलवार चलाने का काम भी औरते सीखती थी और उसका अभ्यास किया करती थी। विजयनगर राज्य मे वेश्याओ के भी कुश्ती लड़ने का वर्णन मिलता है। कुश्ती प्रायः पर्याप्त समय तक लड़ी जाती थी। कभी कभी तो अङ्ग-भङ्ग भी हो जाता था[६]।

व्यायाम–कुश्ती

तलवार से द्वन्द-युद्ध करना भी विजयनगर-राजाओं के लिए

---

१ एपि० कर भा ११ पृ० ३६। सोर्सेज पृ० ६६, २६५

२ सेवेल–वही पृ० २४६। ३ वही पृ० ३७८

४ रघुनाथाभ्युदयम् । ५ जरीक भा० १ पृ० ६८४

६ सेवेल—वही पृ० २६८, २७१

मनोरंजन का साधन था। दो व्यक्ति नगे बदन परन्तु सिर पर पगडी बाधे ढाल और तलवार लेकर तैयार हो जाते थे। राजाज्ञा प्राप्त होने पर द्वन्द-युद्ध प्रारम्भ हो जाता था। यद्यपि यह अमानुषिक कार्य था परन्तु राजा इसे बहुत पसद करता था[१] और प्रति दिन एक न एक व्यक्ति इस युद्ध में अवश्य मारा जाता था[२]।

तलवार से युद्ध

राजा को आखेट अत्यन्त प्रिय था, आखेट में कुत्ते भी साथ रहा करते थे। विजयनगर राज्य मे राजा के आखेट करने का दृश्य प्रस्तर पर खुदा मिलता है[३]। राजा को आखेट देखने का भी शौक था[४]। अत. आखेट के लिए स्थान नियुक्त थे। राजा तयारी के साथ आखेट को जाता था। देवराय द्वितीय का आखेट प्रेम प्रसिद्ध हैं। उसके लिए शिकार की जगहे निश्चित थी[५]। वह जहाॅ शिकार करता था। वहाॅ दान भी दिया करता था। इसके वर्णन लेखो मे मिलते हैं[६]। आखेट के लिए सुन्दर स्थान तेयार किये जाते थे[७]। राजा हाथी के शिकार को अधिक पसद करता था[८]। हाथी फॅसाये जाते थे। पहले जगल का हाथी छल से गड्ढे में गिराया जाता था। फिर महावत राजधानी से अन्य हाथियो को वहा ले जाता था। उस जगली हाथी को फॅसा कर महावत ले आता था। हाथी-खाने मे उसे लोहे की जजीर से

आखेट

---

१ वारबोसा—भा० २ पृ० २३६

२ हेरास—आरविदु डाइनेस्टी पृ० ४०५

३ सालातोर० विजयनगर हिस्ट्री भा० २ पृ० ४२१

४ ट्रैवलस० भा० २ पृ० १२७

५ एपि० कर० भा० १० पृ० २२४

६ एपि० इडि० भा० ६ पृ० २५

७ वारबोसा-डेमस भा० १ पृ० २२८

८ नं० ६७ आफ १६०७

बांध कर रखते थे और कई दिन के वाद उसे खाना दिया जाता था[1]। इस प्रकार के आखेट का शौक देवराय को अधिक था। यही कारण है कि विजयनगर राजाओं के सिक्को पर एक ओर हाथी की आकृति बनी है और दूसरी ओर 'राय-गजगड-भेरुण्ड' लिखा मिलता है[2]। लेखों से भी इसी बात की पुष्टि होती है[3]। राजा जगल मे चिडियों तथा सूअरों का भी आखेट करता था। विजयनगर मे मासाहारी व्यक्तियो की अधिकता से चिडियों तथा पशुओं का शिकार आवश्यक समझा जाता था। विजयनगर राज्य के नटो द्वारा भी मनोरजन की वृद्धि होती थी। वर्तमान काल के नटो की तरह ये लोग भी रस्सी पर चढकर खेल दिखाया करते थे। राजा उनके काम से प्रसन्न होकर उन्हे सोना या वस्त्र पुरस्कार मे देता था[4]।

घोडे पर सवारी करना तथा नदियो मे तैरना भी आमोद-प्रमोद का एक साधन था[5]। शतरज भी खेला जाता था। कृष्णदेव राय स्वय शतरज का अच्छा खिलाडी बतलाया गया है, जिससे प्रतीत होता है कि शतरंज के खेल से लोगो को शौक था। कृष्णदेव राय की पुत्रिया अपने पिता (राजा) से शतरंज खेला करती थी[6]। विजयनगर राज्य मे मुसलमानो तथा ईसाइयो के निवास करने से उनके भी कुछ खेल प्रचलित हो गये थे। मुसलमानी खेलों मे मुर्गों की लड़ाई सर्व प्रधान थी। ईसाई लोग गेंद खेलने का भी नया तरीका लेकर आये जिसका उन लोगों ने प्रचार किया। यद्यपि भारत मे गेद खेलने की प्रथा पुरानी है, तथापि उनका खेल कुछ नवीनता लिये हुये था।

---

१ इलियट-हिस्ट्री भा० ४ पृ० ११०

२ कैटलाग आफ कायन्स इन इंडियन म्यूज़ियम पृ० ३२४

३ एपि० कर० भा० ५ पृ० ४७,६१

४ इलियट-हिस्ट्री भाग ४ पृ० ११८

५ मै. आ. रि १६४४ पृ. ५६

६ इ. ए. भा. २७ पृ. २६६

भारत में भोज्य-सामग्री की कभी कमी न थी। प्रत्येक पदार्थ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता था। लोगों की रुचि के अनुसार खाद्य पदार्थों में परिवर्तन होता रहता था। विजयनगर-साम्राज्य में ऐसा अनाज पैदा होता था जिसपर जीवन-निर्वाह करना कठिन न था। ज्वार तथा रुई की फसल के लिए यह राज्य प्रसिद्ध था। रुई की पैदावार का समुचित उपयोग किया जाता था। ज्वार भोजन के काम में आता था। पूर्वी भाग के समुद्र के किनारे की पैदावार चावल का उपयोग विजयनगर के लोग करते थे। उत्तर में बहमनी सुल्तानों से तथा पश्चिम में पुर्तगालियों से उनका सम्बन्ध सदा बना रहा। यही कारण है कि विजयनगर के लोगों ने पवित्र एवं सात्विक भोजन के साथ तामसिक पदार्थों का भी प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया था। राजाओं के भोजन में चावल, शक्कर, मक्खन तथा मांस आदि का प्रयोग किया जाता था। विदेशियों ने लिखा है कि विजयनगर राज-दरबार में ईरानी दूत को उपयुक्त पदार्थ भोजन के लिए दिया जाता था[1]। इस से विदित होता है कि जलवायु तथा रीति-रिवाज के अनुकूल पदार्थ ही राजा के भोजनालय में प्रयोग किये जाते थे तथा अतिथि को भी दिये जाते थे। भैंस, बकरी और चिड़ियाँ पर्याप्त मात्रा में मिलती थीं, अतः इन्हीं का मांस सर्व-साधारण के खाने के काम आता था। राज्य में चावल, जव आदि भोजन के काम में लाया जाता था[2]। फलों में गोआ के आम, कटहल और इमली आदि अधिक मात्रा में प्रयोग किये जाते थे। मसाला राज्य में अधिकता से पैदा होता था, इसीलिए दक्षिण के लोग प्राचीनकाल की भाँति मसाले तथा इमली को आजकल भी अधिक पसंद करते हैं। स्थान स्थान पर साप्ताहिक बाजार लगते थे जिनमें सूअर, कबूतर, और समुद्र की जीवित मछलियां बिका करती थीं। उनके मांस भी

---

१ इलियट हिस्ट्री भाग० ४ पृ० ११३

२ ट्रैवेलस भा० २ पृ० २२४।

बिकते थे परन्तु जीवित जानवरों को खरीदना लोगों को अधिक पसंद था। उसी स्थान पर अन्न भी बिकता था। फलों मे बाहर से आये हुए अंगूर, संतरे, नीबू, बादाम आदि बड़े सस्ते दाम पर बिका करते थे[1]। बारबोसा ने लिखा है कि विजयनगर मे चावल, शक्कर, मक्खन, मधु, दाल तथा दूध का प्रयोग भोजन मे किया जाता था[2]। समुद्र के किनारे रहने के कारण वहां के लोगो को नमक अत्यन्त सुविधा से मिल जाता था। पेईं ने लिखा है कि हिन्दू-मुसलमान की एकता को ध्यान मे रखकर मांस का प्रयोग किया जाता था। न्यूनिज का कथन है कि प्रत्येक चिड़िया तथा छोटे-छोटे जानवरो का मांस खाया जाता था[3]। राज्य मे पान खाने की प्रथा बहुत प्रचलित थी। रज्जाक ने लिखा है कि सर्वसाधारण पान खाया करते थे। उसने यहां के पान की बड़ी प्रशंसा की है[4]। राजा के हाथ मे दिया गया पान एक गौरवास्पद वस्तु समझी जाती थी। जब कभी सेना शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने जाती तो राजा सैनिकों को अपने हाथ से पान खिलाया करता था, जिससे उनकी प्रतिष्ठा होती थी और युद्ध मे वे अपनी पूरी शक्ति लगाते थे। देश की समृद्धि को देखते हुए यह अनुमान सहज ही मे किया जा सकता है भोजन-सामग्री का मूल्य कम होगा। जनता थोड़े खर्च मे ही अपना जीवन निर्वाह करती होगी।

राजाओं की दिनचर्या

राजा प्रति-दिन ब्राह्म-मुहूर्त मे उठ कर दैनिक कार्यो से निवृत्त होकर व्यायाम करता था। उसके बाद राज-सभा मे बैठकर लोगो से बारी बारी से भेंट करता था। सभी लोग जाकर राजा को झुककर प्रणाम करते और बैठ जाते थे। प्रश्न करने पर सब लोग उचित उत्तर देते थे[5]। राजा प्रतिदिन धर्म की बाते सुना करता था। राजा का समय विद्वान् पुरुषों

---

१ सेवेल—ए फारगाटेन इम्पायर पृ० २५६, ३७५।

२ डेमस भा०१ पृ० २१७। ३ सेवेल—वही पृ० ३७५

४ इलियट—हिस्ट्री भा० ४ पृ० ११४। ५ सेवेल—वही पृ० २५०

के साथ व्यतीत होता था। सोमनाथ ने अपनी पुस्तक 'व्यासयोगि-चरितम्' में वर्णन किया है कि विजयनगर के राजा नरेश नायक, वीर नरसिंह तथा कृष्णदेवराय प्रतिदिन धर्म की बात वैष्णव साधुओं से सुना करते थे[1]।

इसके अतिरिक्त धर्म पर राजाओं की अधिक आस्था थी। तीर्थ-यात्रा करना साधारण बात थी। राजा जिस तीर्थ पर पहुंच जाते थे वहां ही तुलादान करते तथा अग्रहार दान दिया करते थे। गया में पिण्ड-दान और काशी तथा प्रयाग में भूमि दान देने का वर्णन लेखों में पाया जाता है[2]। राजा शास्त्रोक्त बातों पर अधिक विश्वास करता था। मरने पर श्राद्ध किया जाता तथा मृत व्यक्ति का फूल (जलाने के पश्चात् शरीर की राख) काशी भेजा जाता था। रामराय के दत्तक पुत्र आदिलशाह ने पिता के फूल को काशी भेजवाया था। तीर्थ स्थान पर हवन और यज्ञ किया जाता था। पर्वों पर उत्सव मनाने तथा उसके व्यय के लिए राजा के दान देने का वर्णन सर्वत्र पाया जाता है[3]।

सब लोग मित्र, धन और पुत्र इन तीनों को सुख के नाम से पुकारते थे। जिस व्यक्ति के पास ये तीनों वर्तमान थे वही परम सुखी समझा जाता था। पंच सूना अथवा पांच कार्य—काटना, पीसना भोजन-बनाना, ले जाना तथा गृह को स्वच्छ करना—स्त्रियों के कर्तव्य थे। स्त्री-प्रेम भी सुख के साधनों में सम्मिलित किया गया था[4]। अन्य लेखों में सुख के आठ साधनों का वर्णन मिलता है[5]।

पारिवारिक जीवन

---

१ 'एवमेव भक्त्या सभावयन्तं रहस्येन धर्मपदोपदेशेन प्रत्यहमनुगृह्णन्' (व्यासयोगि-चरितम् श्लो० ५६)। पुण्यकीर्तनेन वसुधाधिपेन हंसेनेव कमलाकर प्रत्यह उपसेव्यमान। वही—श्लोक ६५

२ एपि० कर० भा० १० पृ० ६७

३ मैसूर आ० रि० १६१८ पृ० ५२

४ एपि० कर० भा० २ पृ० २१। ५ वही भा० १२ पृ० ८८

पिता पुत्र को प्यार करता और पुत्र पिता की सेवा आदर एवं भक्ति से करता था। इसका उल्लेख लेखों मे मिलता है[1]। पुरुष कई स्त्रियाॅ रखता था। कभी-कभी एक व्यक्ति की सोलह सन्ताने होती थी[2]।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट प्रकट होता है कि विजयनगर राज्य मे जनता का भौतिकजीवन कितना सुखी था। उनको भोजन के लिये सुन्दर सुन्दर पदार्थ मिलते थे। राज्य मे गाय, भैसों की अधिकता के कारण दूध और घी की नदी बहती थी। जनता के मनोरजन के लिए अनेक साधन विद्यमान थे। लोगा की सगीत मे विशेष रुचि थी और नाटक देखने का भी पूरा शौक था। सामाजिक उत्सवों पर नृत्य का भी सार्वजनिक प्रदर्शन होता था। इस प्रकार विजयनगर राजाओ की शीतल छत्र-छाया मे जनता आनन्द से अपना समय बिताती थी।

---

१ वही एपि० कर० पृ० २ . २ सत्यनाथ-नायक पृ० ३२७

: १२ :

ललित कला

कला की वास्तविक परिभाषा बतलाना कठिन है। आनन्द में विभोर मनुष्य अपने आन्तरिक भावो को कला के द्वारा ही अभिव्यक्त करता है। कला का प्रधान कार्य उल्लास प्रदान करना है। कला दो भागो मे विभक्त की जाती है पहली स्थिर तथा दूसरी गतिशील। स्थित कला के अन्तर्गत-वास्तु, तक्षण तथा चित्रकलाये मानी जाती है और गतिशील कला में काव्य तथा सगीत सम्मिलित हैं। किसी देश की कला उस समय की वास्तविक स्थिति को बतलाती है। भारत ऐसे धर्म-प्रधान देश मे कला का प्रादुर्भाव धार्मिक कारणों से ही हुआ और समयानुकूल उसमे परिवर्तन होता रहा। अतएव भारतीय कला धर्म मूलक मानी जाती है। पहले ईश्वर के प्रतीक अग्नि, वरुण आदि की पूजा होती थी परन्तु भक्ति के प्रचार से पूजा का प्रकार बदल गया और मूर्तियाँ बनने लगी। वास्तु-कला मे भी धार्मिक भावनाओ का पर्याप्त प्रभाव पडा। विजयनगर राज्य मे भी धार्मिक परिवर्तन (शैव पुन॰ वैष्णव) के साथ मदिरो की बनावट तथा मूर्तियों की रचना मे परिवर्तन दिखलाई पडता है। देवताओ के प्रीत्यर्थ नृत्य किया जाने लगा तथा वाद्य बजाया जाने लगा। देवताओं के चित्र बनने लगे। इस प्रकार विभिन्न कलाओ का विकास विजयनगर राज्य मे होता रहा। धार्मिक सुधार की लहरे दक्षिण में हिलोरे मार रही थी। मुसलमानों से भारतीय सस्कृति की रक्षा करनी थी। अतएव जनता के उन्नत जीवन की स्फूर्ती ने विजयनगर राज्य मे कला को प्रोत्साहन दिया। यही कारण है कि विजयनगर राजाओं का राज्यकाल भारतीय कला का उन्नतिशील-युग समझा जाता है।

भारतवर्ष में कला के इतिहास पर दृष्टिपात करना यहा अनावश्यक प्रतीत होता है। कला के प्रत्येक विभाग का पृथक्-पृथक् लम्बा इतिहास

है। परन्तु इतना कहना अत्यावश्यक है कि कला का इतिहास तीन कालों में बाँटा गया है—(१) प्राचीन (२) मध्य (३) अर्वाचीन। विजय-नगर की कला मध्ययुग की कला का उत्कृष्ट तथा सर्व-श्रेष्ठ नमूना मानी जाती है। इस समय मे बने मंदिर या मूर्तिया मध्य-कालीन (दक्षिण भारतीय) कला के प्रतिनिधि स्वरूप हैं। भारतवर्ष मे उत्तरी तथा दक्षिणी शैली का जन्म अत्यन्त प्राचीन है। दोनों शैलियो में विशेष अन्तर है। डा० कुमारस्वामी का मत है कि तुलुव-वशी नरेश कृष्णदेव राय के समय मे विजयनगर की कला चरम सीमा को पहुच गई थी। दक्षिण-भारतीय-कला के सर्व श्रेष्ठ नमूने उसके शासन-काल मे ही मिलते हैं[1]। दक्षिण-भारत मे वास्तु, तक्षण तथा चित्रकला के नमूने विजयनगर राज्य काल मे मिलते हैं, जिनका सक्षिप्त वर्णन यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

विजयनगर-राज्य मे द्राविड़ शैली की इमारते बनी। शासकों ने अनेक मन्दिर तथा अपने निवास के लिए महल बनवाये। उन मन्दिरो तथा महलों को तालिकोट-युद्ध के पश्चात् पाच माह तक राजधानी में रहकर मुसलमानो ने नष्ट कर दिया और जला दिया। तत्कालीन दो मन्दिरों की स्थापत्य-कला को देखने से विजयनगर की वास्तु-कला का परिचय मिलता है। पहला मन्दिर विट्ठल स्वामी का तथा दूसरा हजाराराम स्वामी का है। दक्षिण-भारत में चौदहवीं शताब्दी से द्राविड शैली मे एक विलक्षण परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। इस मे भाव तथा सामग्री दोनों सम्मिलित हैं। विजयनगर-राज्य मे नाना प्रकार के महल बनने लगे थे जिनसे जीवन की पूर्णता, स्वातंत्र तथा वैभव की वृद्धि का पता लगता है। इन सब का कारण विजयनगर के राजाओं का कला-प्रेम ही था। राजधानी मे विशाल महल बने थे, जिससे एशिया में यह एक ही नगर समझा जाता था। इस वास्तु कला में सुन्दरता तथा अलकरण का प्रकार पराकाष्ठा को पहुँच चुका था।

वास्तु-कला

---

१ हिस्ट्री आफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट पृ. १२३

इससे पता लगता है कि सुन्दर, सूक्ष्म और अद्भुत कल्पना-शक्ति वाले कलाकार ही ऐसा भवन तैयार कर सकते थे।

द्राविड शैली के मन्दिर उत्तरी भारत से सर्वथा भिन्न होते थे। एक मन्दिर तीन विभिन्न भागो मे विभक्त होता था। पहला गर्भ-गृह था जिसमे देवता की मूर्ति स्थित होती थी। यह स्थान केवल पुजारी के लिए होता था, अन्य व्यक्ति वहा नहीं जा सकते थे। गर्भ-गृह द्वार के सामने (मुख-मण्डप) देवता के वाहन नन्दी या गरुड़ की मूर्ति बनी होती थी। दूसरा अर्ध-मण्डप होता, था इसको सभा-भवन भी कहते थे। इसमें जनता एकत्रित होकर पूजा में सम्मिलित होती थी। इसका मार्ग गर्भ-गृह को जाता था। प्राय. यह दो तरफ खुला रहता था। तीसरा भाग-महा-मण्डप कहलाता था। यह बहुत बड़ा कमरा होता था। विशेष उत्सवों पर देवमूर्ति को सिंहासन पर रखकर उसकी पूजा करते थे। इन विशेष कमरो की बनावट अत्यन्त सुन्दर होती थी। इन कमरों के ऊपर छत बनी रहती थी। स्तम्भो की सुन्दरता, अलकार तथा तत्सम्बन्धी प्रस्तर-मेहराब (Pier) इन कमरों की विशेषता को बतलाते हैं। ये कमरे ऊ चे स्थान पर बने होते थे। उन पर जाने के लिए सीढिया बनी होती थीं। रास्ते मे शोभा के लिए हाथियों की मूर्तियाँ बनी होती थी। उस स्थान के खम्भों की घनी बनावट, खुदाई, मूर्तियो की रचना ऐसी होती थी कि वे गृह विशाल और भव्य प्रतीत होते थे। विजयनगर के ऐसे खम्भो से युक्त कमरों की विशेष महत्ता मानी जाती थी। इनका विशेष वर्णन आगे किया जायेगा। मुख्य देव-गृह के उत्तर-पश्चिम के कोने पर एक और कमरा बना रहता था, जिसको 'अम्मान-मण्डप' कहते थे। इसमें आराध्य देवी की मूर्त्ति स्थापित की जाती थी। पूर्वी फाटक के बाईं ओर एक और भवन बना होता था जिसको कल्याण-मण्डप कहा जाता था। यह अत्यन्त सुन्दर, खुला हुआ, कमरा ऊ चे स्थान पर बनाया जाता था। इसमें देव तथा देवी का वार्षिक उत्सव मनाया जाता था। ये सब कमरे सीमा की दीवार से
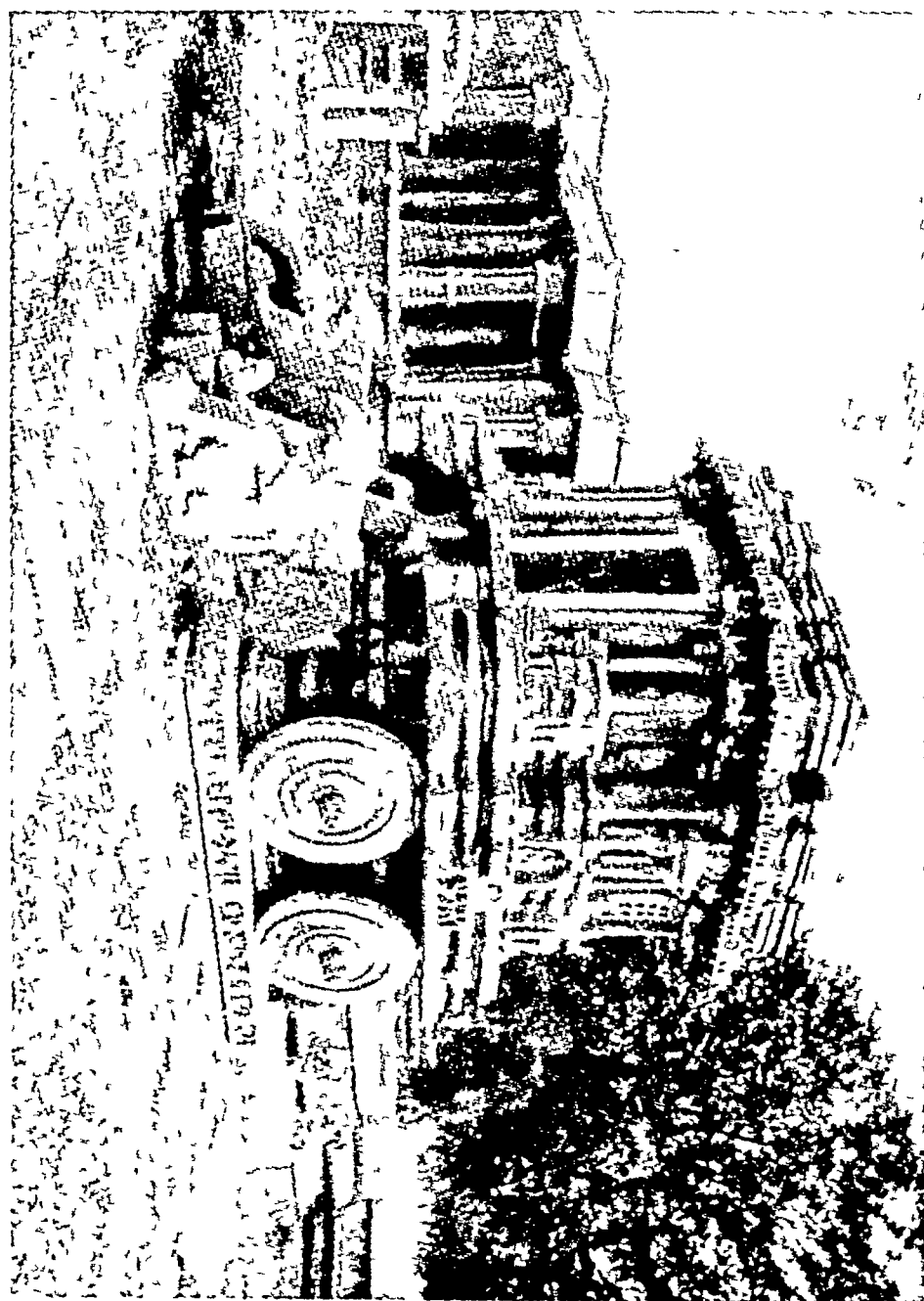
मन्दिर

घिरे रहते थे। मन्दिर में प्रवेश करने के लिए चारों ओर द्वार बने रहते थे। ये साधारण न होते थे बल्कि इन पर एक विशेष लम्बे प्रकार की प्रस्तर की आकृति बनी रहती थी जिसे 'गोपुरम्' कहते थे। यह केवल पत्थर की दीवार की भाति ही न होता था, बल्कि इसमे भिन्न-भिन्न प्रकार के सुन्दर मनुष्यों तथा जानवरों की मूर्तिया खुदी रहती थी। विजयनगर वास्तुकला की यह एक विशेषता है। जिन मन्दिरो मे गोपुरम् नही थे उन्हें कृष्णदेवराय ने स्वय तैयार कराया था। द्राविड शैली के एक मंदिर का उपर्युक्त विवरण खाका (मानचित्र) के समान है। मन्दिर की दीवारे, स्तम्भ तथा छते खुदी तथा अलकृत होती थी। इन मदिरों की अलकृति तथा देवताओ के चिन्हों से पता चलता है कि ये शैव अथवा वैष्णव मन्दिर हैं।

विजयनगर मे दो प्रकार के मन्दिर बने हुए हैं। पहला बालूदार प्रस्तर का विशाल मन्दिर तैयार किया गया है। दूसरा मदिर पर्वत पर पत्थर निकालने के स्थान से हटकर कुछ दूरी पर बना है। यह सारा मन्दिर, कमरा तथा स्तम्भ एक बहुत बडे पहाड़ को खोदकर बनाया गया है। जिसमे कहीं भी जोड नही है। एक ही चट्टान से विशाल मन्दिर तैयार करने का विचार आश्चर्य-जनक प्रतीत होता है, परन्तु विजयनगर में ऐसे ही मन्दिर तैयार किये गये थे। पहाड़ को खोदकर खाका तैयार करना, कमरे निकालना, बरामदा तैयार करना, स्तम्भों को खडा करना, और विभिन्न प्रकार के अत्यन्त सुन्दर अलकरण करना, विजयनगर-कालीन कलाकारों की अद्भुत निपुणता का परिचय देता है। पूरी इमारत को केवल एक ही विशाल प्रस्तर से तैयार करना विजयनगर के वास्तु-कलाकारो की उत्कृष्टता को प्रकट करता है। दूसरे प्रकार के मदिर हरे रग के प्रस्तर से तैयार किये जाते थे। पहले ढंग का मन्दिर सूक्ष्म तथा वास्तविक बातों को प्रकट करता है, परन्तु उसमे सफाई की कमी है। गहरे हरे रग के मन्दिर बडी दक्षता-पूर्वक तैयार किये गये हैं। वे कलाकार की निपुणता तथा अनुभव का परिचय देते हैं। इन सब बातो को देखने से प्रकट होता है कि विजय-

नगर में दो विभिन्न शैलियाँ (Schools) वर्तमान थीं । भिन्न-भिन्न सामग्रियों के कारण हरे रग तथा बालूदार पत्थर की दो प्रकार की वास्तुकला का प्रयोग किया गया था।

जैसा ऊपर कहा गया है कि विजयनगर के समस्त मन्दिरो मे विट्ठल स्वामी तथा हजाराराम स्वामी के मन्दिर प्रधान थे। विट्ठल स्वामी का मन्दिर सन् १५१३ ई० मे कृष्णदेव राय ने प्रारम्भ किया था। अच्युत के समय मे वह मन्दिर समाप्त हो सका। विट्ठल भगवान् विष्णु का दूसरा नाम है। यह विशाल मन्दिर हम्पी में तैयार कराया गया था। यह ५००×३१० फीट मे विस्तृत है। इसकी ऊचाई २५ फीट है। गर्भ-गृह स्तम्भों की तीन कतार से घिरा है। इसी में विट्ठल की मूर्ति है। इसमे अर्ध-मण्डप तथा महा-मण्डप भी हैं। महामण्डप के स्तम्भों की बनावट अत्यन्त विचित्र है। बीच के खम्भों में कई अलकरण प्रस्तर लगे हैं, जिनमें राक्षसो पर बैठी हुई मनुष्यों की आकृति है। स्तम्भ एक ही पत्थर से तैयार किये गये हैं। उन पर कारन्सि के पत्थर लगे हैं जो सुन्दर तौर से खुदे हैं । महा-मडप का भाग १००×६० फीट का है। हाथियों को रक्षक के स्थान पर बनाया गया है और मडप में जाने के लिए सीढिया हैं। प्रत्येक खम्भे पर मेहराब का प्रस्तर भी लगा है। उसकी छत खुदी हुई है और सुन्दर ढङ्ग से तैयार की गई है। अर्द्धमण्डप में दो तरफ से आने का मार्ग है। चारों कोने मे चार स्तम्भ बने हैं जिन पर आधे मनुष्य और आधे दानव की आकृति खुदी है। गर्भ-गृह में जाने के लिए एक मार्ग है। इसी सीमा के भीतर कल्याण-मण्डप भी है। महा-मण्डप के सामने एक सुन्दर भवन है जिसे रथ कहते हैं। उसमे गोलाकार प्रस्तर के घूमते हुए पहियों के साथ रथ बना हुआ है। इसकी रखवाली के लिए दो हाथी बने हैं। इस मदिर का शिखर द्राविड शैली का था परन्तु अब नष्ट हो गया है। बाहर से मदिर की सीमा में आने के लिए 'गोपुरम्' के साथ तीन द्वार बने हैं।

विट्ठल स्वामी का मन्दिर

दूसरा विशाल मदिर हजाराराम स्वामी का है । कृष्णदेव राय ने

_निगन म मी का मन्दिर (सामने से)
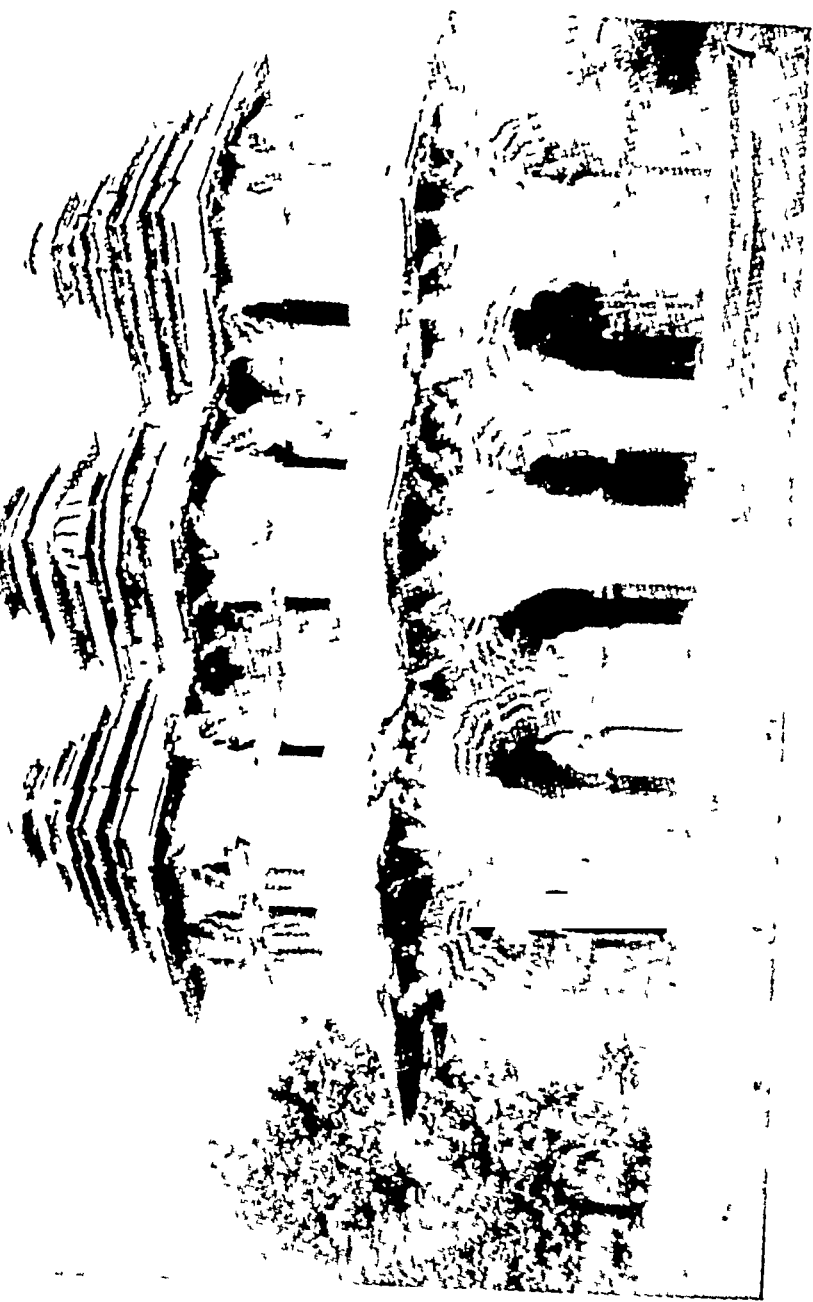
ही इसको भी बनवाया था। इस मंदिर में राजवंश के लोग पूजा करने आते थे। बड़े मंदिरों की सभी बातें इसमें पाई जाती हैं। अर्द्ध-मण्डप से गर्भगृह में जाने का एक चौड़ा मार्ग बना है। खम्भे पहले घनाकार थे फिर गोलाकार बनाये गये। सब पूरी तरह से खुदे हैं। इसमें 'अम्मान-मण्डप' (बिना शिखर का) तथा विमान या रथ मण्डप शिखर युक्त अत्यन्त सुन्दर है। मंदिर के छत में एक विशेष अलंकरण-प्रकार है। बेल बूटे बने हैं जो द्राविड शैली में नवीनता पैदा करते हैं क्योंकि ये ईंट सीमेंट तथा रंग के प्रयोग से तैयार किये गये हैं[1]। सब से बड़ी विशेषता यह है कि मंदिर की दीवारों पर राम का चरित प्रस्तर में खुदा हुआ है[2]। राम की लीला समस्त दीवार पर स्पष्टतया अंकित देखी जा सकती है। वहाँ जलूस में घोड़े और हाथियों की आकृतियाँ खुदी हैं। ये सब रामलीला को प्रस्तर खण्डों में दिखा कर मंदिर के नाम की सार्थकता प्रकट करते हैं[3]।

हजाराराम का मन्दिर

विजयनगर के अनेक सुन्दर मन्दिर वेलोर, कुम्भकोणम्, काञ्ची, ताडपत्री तथा श्रीरंगम् में पाये जाते हैं। वेलोर मंदिर में कल्याण मण्डप सर्वप्रसिद्ध है। उसके स्तम्भों पर चित्रलिपि, राक्षस और अन्य आकृतियाँ सुन्दर ढंग से बनाई गई हैं। उनका 'गोपुरम्' विशाल आकार का है। काञ्ची के वरदराज मंदिर में एक हजार स्तम्भ हैं। श्रीरंग का मंदिर द्राविड शैली का एक अद्‌भुत नमूना है[4]। गर्भ-गृह तक पहुँचने के लिए एक दिशा में छः गोपुरम् से युक्त द्वार बने हैं। इन 'गोपुरम्' पर मनुष्यों तथा विभिन्न जानवरों और राक्षसों की आकृतियां बनी हैं। इनके स्तम्भ लड़ते हुए घोड़ों की आकृति के साथ खुदे हैं। ताडपत्री का गोपुरम्

---

१ पी० ब्राउन—इंडियन आर्किटेक्चर पृ० १६८

२ फरगुसन—आर्कि० इन० धारवार एंड मैसूर प्लेट ११८, ११६

३ स्मिथ-हिस्ट्री आफ फाइन आर्ट्स प्लेट ६७

४ पी० ब्राउन—इण्डियन आर्किटेक्चर प्लेट ११५

सबसे अधिक सुन्दर और अलकार-युक्त बना है[1]। यह मन्दिर गहरे हरे रग के प्रस्तर का बना है। मन्दिर के एक प्रस्तर खण्ड पर एक स्त्री की मूर्ति पेड़ के नीचे खड़ी दिखलाई गई है[2]। जिन्जी के मन्दिर मे स्त्री की मूर्ति (१५०० ई० की) गाधार तथा मथुरा की स्त्री-मूर्ति के सदृश दिखलाई गई है। कृष्णदेवराय ने विट्ठल स्वामी का मन्दिर तैयार किया था, जिसमे गर्भगृह के चारों तरफ वर्गाकार प्रदक्षिणा-पथ बना है। यह बनावट होयसल कला से सर्वथा भिन्न है। इस प्रदक्षिणा-पथ के ऊपर मदिर का पूरा शिखर बना है। शिखर के शुरु ही मे बेल, बूटे, लता और कई तरह की दूसरी आकृतिया खुदी हैं। इस भाग को 'उपानय' कहते हैं। शिखर के बीच का भाग 'कुमुदम्' कहलाता है। यह भाग भी कई तरह से अलकृत किया गया है। ऊपरी भाग 'कण्ठम्' कहलाता है। इसमे नाचने वाली वेश्याये, जीवन की अन्य सामाजिक घटनाये, मल्लयुद्ध करते हुए योद्धा आदि की मूर्तिया खुदी हैं। सबसे ऊपर कमल का फूल उलटा बना है। विट्ठल स्वामी के प्रदक्षिणा-पथ मे उत्सव के समय काम मे लाने के लिए रथ रक्खा है। इन बातों से कृष्णदेव राय के समय मे विजयनगर की वास्तु-कला मे विशेषता दिखलाई पड़ती है।

अलंकरण

विजयनगर कालीन मंदिरो की विशेषता उनके स्तम्भों से प्रकट होती है। स्तम्भ तथा मेहराबो का अलकरण इस प्रकार घना हो जाता है कि प्रस्तर मे नाटक का भाव स्पष्ट दिखलाई पडता है, जैसे कोई नाटक खेल हो रहा हो। कमरो में स्तम्भ का निर्माण विजयनगर की वास्तुकला का एक विशेष भाग हो जाता है। बीच का भाग लम्बा होता है जिसके चारो तरफ विभिन्न अलकरण-प्रस्तर लगे हैं तथा बडी-बडी आकृतिया बनी हैं। उसमें जानवर तथा मनुष्य भी दिखलाये गये हैं। स्तम्भ के अन्य तीन तरफ नाना प्रकार

---

१ कुमारस्वामी—हिस्ट्री आफ इण्डियन एंड इंडो० आर्ट पृ० १२४

२ स्मिथ—हिस्ट्री आफ फाइन आर्ट्स चित्र नं० १६६
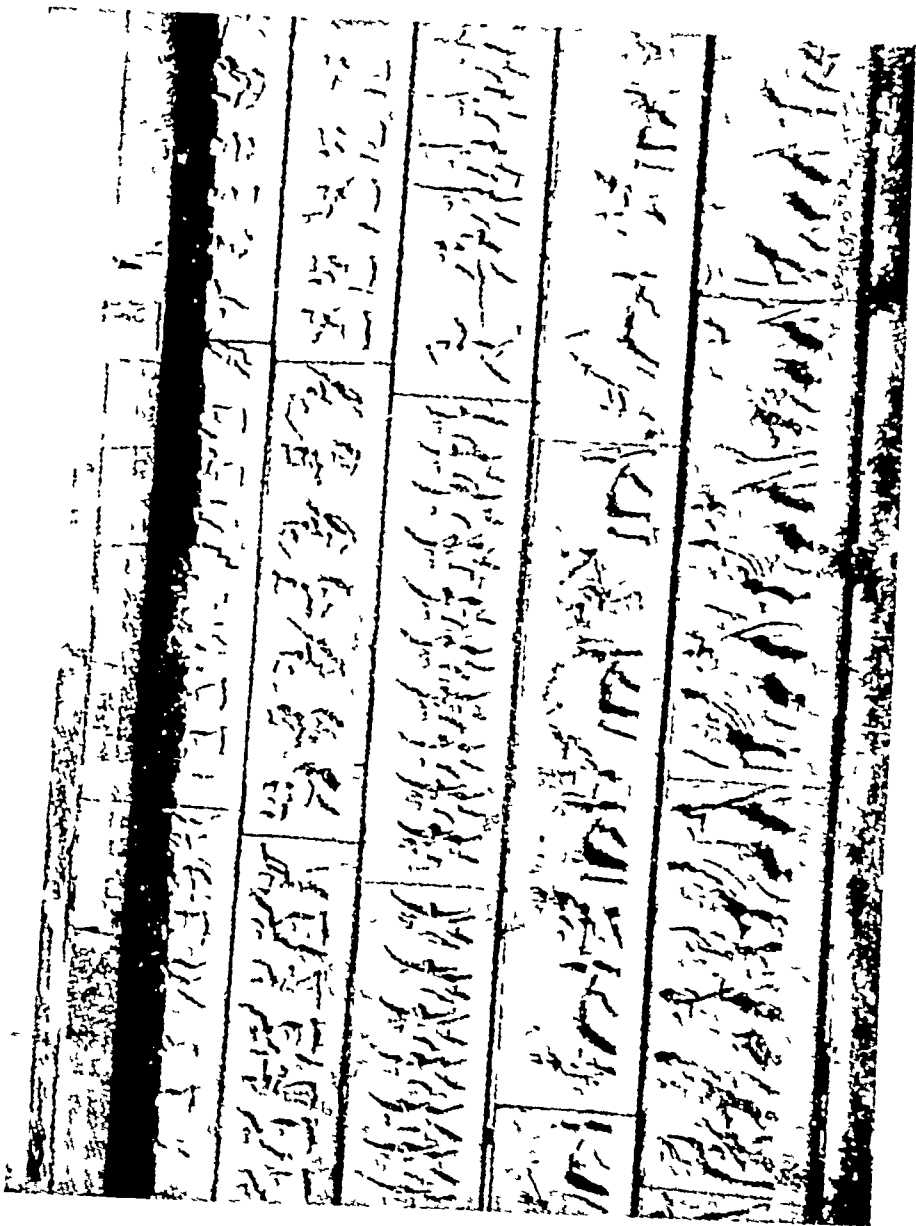
हजारराम स्वामी के मन्दिर की दीवारों पर सेना का [illegible] हुआ दृश्य

के अलंकार बने हैं। विजयनगर के स्तम्भो मे घोड़े या किसी दैवी जानवर की आकृति अधिकतर बनी है। स्तम्भ नीचे की ओर घनाकार होते हैं परन्तु ऊपर आठ या सोलह कोण वाले हो जाते हैं। उन बडी आकृतियों पर अलकरण-प्रस्तर होता है । सब से ऊपर मेहराब वाला पत्थर जुडा होता है। दो मेहराबों पर सुन्दर खुदे हुए प्रस्तर रक्खे होते हैं। उसके ऊपर चपटा छत का भाग रहता है[1]। कभी-कभी घोडे के स्थान पर औरतो की भी आकृति मिलती है[2]। किसी प्रस्तर पर शेर की आकृति बनी मिलती है[3]। इस प्रकार लगातार सभी खम्भों मे आधी सच्ची तथा आधी काल्पनिक आकृतियाँ बनाई जाती हैं। स्तम्भ के चारो ओर मिल कर एक प्रस्तर का आधार बन जाता हैं जो दोनो खम्भो पर रखा जाता है। उसके ऊपर छत बनती है । उसी मे कमल के फूल खुदे हुए रहते हैं। इस विवरण से यही ज्ञात होता है कि स्तम्भ का कोई भी भाग ऐसा नही है जो अलकार अथवा आकृति से युक्त न हो[4] । वेलोर मन्दिर मे घोडे के नीचे वामन पुरुषों को दबा हुआ दिखलाया गया है। विद्वानों का मत है कि यह किसी जगली जाति पर विजय का द्योतक है या मुसलमानो के पराजय को बतलाता है।[5]

ऊपर कहा गया है कि विजयनगर-कालीन मन्दिरों की विशेषता स्तम्भों से प्रकट होती है। विट्ठल स्वामी के मन्दिर मे गजसिंह (घोंडे पर बैठा सैनिक) और पीठिका पर बैठी अकित सिंह की आकृतिया अत्यन्त सुन्दर बनी हैं। 'कल्याण मण्डप' के स्तम्भो पर राजा-रानी की मूर्तियाँ खुदी हैं। जो वर्गाकार स्तम्भ हैं उन पर धार्मिक, सामाजिक, काल्पनिक विषयों के चित्र खुदे हैं। नीचे चारो कोने मे 'नागबन्ध' वर्तमान है। इस प्रकार

---

१ पी. ब्राउन–इंडियन आर्किटेक्चर प्लेट १०५ नं० ४

२ ब्राउन—वही ,, ,, १११

३ स्मिथ–हिस्ट्री आफ फाइन आर्ट चित्र नं० १६७

४ ब्राउन–इ. आ प्लेट ११० । ५ वही—२७३ प्लेट ११२

मन्दिर के स्तम्भ ही उसकी महत्ता को बढ़ाते हैं। सर्वत्र मन्दिरों के द्वार पर हाथियों अथवा शस्त्रयुक्त योद्धाओं (द्वारपाल) की मूर्तियाँ पाई जाती हैं।

विजयनगर के शासकों ने मन्दिरों के अतिरिक्त महल तथा दुर्ग भी बनवाया था। भवनों की सुन्दरता के कारण विजयनगर एशिया का एक प्रधान स्थान समझा जाता था। आजकल राजधानी के नष्ट हो जाने से कोई सुन्दर भवन शेष न रहा।

महल तथा किले

जो ध्वंसावशेष मिले हैं उन्हीं से वास्तु-कला का परिचय प्राप्त किया जाता है। विजयनगर के सुन्दर तथा विशाल-भवन पहाड़ों पर स्थित थे। उनको देखकर यह कहना कठिन है कि पत्थर-खण्डों को जोड़कर यह भवन तैयार किया गया था अथवा पहाड़ को ही काट कर महल या अट्टालिकायें तैयार की गई थीं। प्रस्तरों की सरलता से प्राप्ति के कारण ये भवन पहाड़ों पर ही बनाये गये थे परन्तु कलाकारों की निपुणता से ऐसा मालूम पड़ता है कि सारी इमारत एक ही चट्टान से तैयार की गई है। किलों के ध्वंसावशेष बतलाते हैं कि विजयनगर के दुर्ग विशाल थे। उनमें सभा-भवन, सिंहासन का स्थान तथा विजय-स्मारक स्थान विशेषतया सुन्दर बने थे। सभा-भवन में सैकड़ों स्तम्भ थे। उनके ध्वंसावशेष से जान पड़ता है कि ये मध्य में चौड़े (किसी में गोल) तथा सिरे पर मेहराब युक्त थे। राजमहल के कमरों का विस्तार ३२'×७८' फीट था। दीवारें खुदे हुए प्रस्तरों से बनी थीं। अलंकार युक्त पत्थरों के नमूने उस समय की कारीगरी को बतलाते हैं।

विजयनगर के सामन्तों तथा नायकों ने भी भवन तथा मन्दिर बनाने में पर्याप्त लगन दिखलाया। तंजौर के नायक शिवप्पा ने शिवगंगा नामक एक विशाल दुर्ग बनवाया था। तिरुवन्नमलाई में उसने एक सुन्दर मन्दिर बनवाया जो अत्यन्त दर्शनीय था। सुदूर प्रान्त से लोग उसे देखने के लिए आते थे। विदेशियों ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। मदुरा के नायकों द्वारा निर्मित मन्दिर भारत की स्थापत्य-कला में विशेष

स्थान रखते हैं। उनकी निर्माण-शैली स्वतन्त्र समझी जाती है। विजय नगर कला-सम्प्रदाय (स्कूल) के ये महान् द्योतक हैं। मुट्टु वीरप्पा की माता रानी मगमल्ल ने अनेक मन्दिर तैयार कराये। मदुरा की मीनाक्षी देवी का सुप्रसिद्ध मन्दिर तत्कालीन वास्तु-कला का ज्वलन्त उदाहरण है। सभी प्रादेशिक शासकों ने कला को अपनाया तथा उसे प्रोत्साहन दिया। भारतीय कला (विजयनगर शैली) की बहुत सी इमारतें मुसलमानों ने ध्वस कर दी, तो भी उस समय की कला हम्पी के खण्डहरो मे आज भी सुरक्षित है। वर्तमान समय मे भी दक्षिण मे भारत के अन्य प्रान्ता के मुकाबिले मे भवन, मन्दिर तथा किले अधिक सुरक्षित हैं जो उस समय की वास्तु-कला के उत्कृष्ट नमूने हैं।

तक्षण-कला

भारतीय-कला मे विजयनगर कालीन तक्षण-कला को एक विशेष स्थान प्राप्त है। इस कला को मध्य-कालीन तक्षण-कला का नाम दिया जाता है। इसकी एक निजी विशेषता है। मध्य-युग की मूर्त्तिकला मे शास्त्रीय बातों का अक्षरशः अनुकरण किया गया है। अन्यत्र इस प्रकार की बात नहीं दिखलाई पड़ती। इस कला मे कलाविदा की कुछ निजी भावनाये तथा हस्त कौशल दृष्टिगोचर होता है। परन्तु इस युग मे शास्त्रीय बातो के अतिरिक्त कलाकारो ने अपनी स्वतन्त्र-कला को दिखलाने का विशेष प्रयत्न नहीं किया। विजयनगर की तक्षण-कला में मनोविज्ञान तथा शृङ्गार रस की भावमयी अभिव्यक्ति की प्रधानता है। मध्य-युग की तक्षण-कला मे वास्तुकला की अनेक बातें दिखलाई पड़ती है। इसमे सर्वथा तक्षण-कला की विशेषताये नही हैं। इसका एक प्रधान कारण यह है कि मूर्त्ति-निर्माण करने वालेका विशेष सम्बन्ध उस मूर्त्ति से समझा जाता है, जिसमे भक्त अपनी भावना और भक्ति को आरोपित कर सके। देवता की पूजा से मनुष्य के मनोवाञ्छित फल तथा मोक्ष-प्राप्ति की कामना सम्बन्धित रहती है। इन सब बातों को ध्यान में रख कर मूर्त्ति-कला की शैली स्थिर की जाती थी।

विजयनगर की तक्षण-कला मध्य-युग की कला का प्रतिनिधि मानी जाती है। इसमें अलंकरण का प्रकार इतना अधिक है कि भावों की ओर ध्यान ही नहीं जाता। इसमें सब से अधिक अलंकार तथा अलंकरण सामग्री का एकत्रित भाव दर्शाया गया है। प्रायः सर्वत्र एक ही भावना का प्राबल्य है तो भी समय-समय पर इसमें कुछ भिन्नता दिखलाई पड़ती है। इसमें एक कलाकार दूसरे से बहुत अधिक विभिन्नता नहीं रखता। प्रत्येक मूर्त्ति में अलंकरण व अंगों में अनुपात दिखलाया गया है। पुरुष की मूर्त्ति कला के शास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार तैयार की जाती थी, यद्यपि स्त्री की मूर्त्ति में कुछ अशास्त्रीय बातें भी आ जाती थीं।

विजयनगर की मूर्त्तियों की सुन्दरता का एक मुख्य कारण यह है कि वे देखने में विशाल तथा चित्ताकर्षक लगती थीं। भक्त का ध्यान एकाग्र हो जाता था। भगवान् की मूर्त्ति गर्भ-गृह में स्थापित की जाती थी, जहां पर प्राकृतिक प्रकाश नहीं पहुंचता था। गर्भ-गृह में खिड़कियों का अभाव होता था। बाहरी कृत्रिम प्रकाश भीतर पहुँचाया जाता था, जिससे मूर्त्ति की विलक्षण शक्ति बनी रहे। संभवतः विजयनगर के कलाकारों ने गुफा-मूर्त्तियों से यह भाव ग्रहण किया हो। मूर्त्ति स्नान के समय नग्नावस्था में रखी जाती थी। कपड़ा पहनाना अथवा विशेष शृंगार गर्भ-गृह में ही किया जाता था। मूर्त्ति की दैवी शक्ति का ज्ञान भक्तों को सदा एक सा बना रहता था और भक्त सदा एकाग्रचित्त होकर ध्यान लगाता था।

विजयनगर की तक्षण-कला की दूसरी विशेषता यह थी कि मंदिरों की दीवारों पर अनेक प्रकार की मूर्त्तियाँ बनी रहती थीं जिनका शास्त्रीय रीति से अधिक संबंध नहीं रहता था। पार्श्व देवता की बड़ी मूर्त्ति गर्भ-गृह के मुख्य मार्ग के दोनों तरफ की दीवारों में बनी रहती थी। ऊपर दिक्पाल की आकृतियां मंदिर की दीवारों पर बनाई जाती थीं। शालभंजिका तथा शार्दूल (आधा मनुष्य, आधा जानवर) की आकृतियाँ साधारणतया सर्वत्र पाई जाती हैं। कभी-कभी गुरु-शिष्य की मूर्त्ति मंदिर

नृसिंह की मूर्त्ति

की दीवारो पर बनी मिलती है। । मिथुन की जोड़ी, सैनिक तथा जानवर आदि भी विजयनगर के कलाकारो द्वारा बनाये गये थे।

विजयनगर के राजा कृष्णदेव राय के समय मे तक्षण-कला अपनी उच्चतम चोटी को पहुच गई थी। सोलहवी शताब्दी के पश्चात् मुसलमान राजाओ ने विजयनगर पर आक्रमण कर छः मास के भीतर इसके समस्त वैभव का नाश कर दिया। उसी समय विशाल मदिर और मूर्त्तियाँ नष्ट कर दी गई। अद्यावधि हम्पी के भग्नावशेषो मे जो कुछ प्राचीन मूर्त्तियाँ मिलती हैं उन्ही से उनकी अलौकिक सुन्दरता तथा अलकरण का अनुमान किया जा सकता है। कला की इन्ही अवशिष्ट कृतियों से विजयनगर के कलाकारों के सिद्ध हस्त होने की बात सिद्ध होती है। ये मूर्त्तियाँ विठोबा मदिर और हजाराराम मदिर के ऊँचे सिंहासन पर बनाई गई थी। मदिर में थोडा-सा भी भाग ऐसा न था जिसमे किसी न किसी प्रकार की मूर्त्ति न बनी हो। ताडपत्री के मदिर मे भी विजयनगर शैली (मध्य-कालीन) की मूर्तियाँ बनी थी। हम्पी मे एक प्रस्तर पर होली के उत्सव मनाने के समय का दृश्य दिखलाया गया है। उसमे एक नर्तकी नृत्य कर रही है। उस प्रस्तर खण्ड मे नर्तकी के स्वच्छ वस्त्र, केश-ग्रथि, आभूषणों की बनावट अत्यन्त सुन्दर दिखलाई पडती है। उसके प्रत्येक अग मे समान अनुपात का ध्यान रखा गया है[1]। विठोबा तथा ताडपत्री के मदिरों मे गगदेवी की अत्यन्त सर्वांग सुन्दर मूर्त्ति बनी है। पीछे घोडो की मूर्तिया अधिकता से बनने लगी। स्तम्भों तथा मेहराबो मे जानवरों के चित्र बनाये जाने लगे। कभी तो घोडे के स्थान पर विचित्र जानवरो की आकृतियाँ पाई जाती हैं। उनकी बनावट अलकार से युक्त तथा स्वाभाविक रूप में तैयार की जाती थी। हजाराराम मदिर की दीवारो पर रामायण की सारी घटनाये प्रस्तर दिखलाई गई हैं। उनमे मनुष्य और जानवर की आकृतियाँ स्वाभाविक पर

---

१ खांडेलवाला—इंडियन स्कल्पचर चित्र नं० ७७ व ७६

ढग से बनी हैं। रथ, जलूस तथा आखेट आदि के दृश्य स्वाभाविक हैं। ये कृतियाँ पर्याप्त अनुभव प्राप्त कलाकार की कला को बतलाती हैं। यदि ये मदिर अपनी पूर्वावस्था मे होते तो विजयनगर की कला अपने पूर्ण विकास के साथ हमे देखने को मिलती। सक्षेप मे यही कहा जा सकता है कि दक्षिण मे विजयनगर की कला-शैली किसी समय की कला से घट कर नही है। कला के ऐसे सुन्दर उदाहरण अन्यत्र नहीं मिलते। जैसा कहा गया है कि यहा की तक्षण-कला का विषय एक न था। कहीं रानी नृत्य देख रही है और कही राजा के पास दूत आ रहे हैं। कहीं स्त्री घोड़े पर सवार या धनुष-बाण के साथ दिखलाई गई है। किसी स्थान पर मृगया का अथवा राजा के सम्मुख नृत्य का दृश्य खुदा है। बादशाह के सामने खडे कैदियों की मूर्तियाँ बनी हैं। हिरन, कुत्ते, घोडे या सिपाही की आकृतियाँ सजीव मालूम पडती हैं। उनमे जीवन, शक्ति और स्फूर्ति दिखलाई पडती है।

धातु-मूर्त्तिया

विजयनगर-कालीन तक्षण-कला के सुन्दर उदाहरण केवल प्रस्तर पर ही नहीं मिलते बल्कि विशिष्ट धातु की निमित मूर्त्तियों मे भी पाये जाते हैं। चोल राजाओं के समय से ही तावे की मूर्त्तियाँ ढाली जाती थीं। शैव सम्प्रदाय वालों ने नटराज शिव की धातु-मूर्त्ति अत्यन्त सुन्दर ढग से तैयार की। विजयनगर राजाओं ने भी उस ढग को अपनाया। इन धातु-मूर्त्तियों मे मध्यकालीन कला के गुण मुख्यतया दिखलाई पडते हैं। शास्त्रीय ढग के समावेश के कारण उनमे गम्भीरता आ जाती है, परन्तु अलकारो की सघनता से कला नष्ट-प्राय होगई है। विजयनगर काल मे मिश्रित धातु की मूर्तिया बनती थीं। राजा देवराय द्वितीय ने जस्ता (धातु) का एक मन्दिर तैयार कराया[१]। इस मन्दिर को राजा ने अगणित दान तथा असख्य द्रव्य व्यय करके तैयार किया था। यह मन्दिर इतना सुन्दर बना हुआ था कि गोआ का

---

१ सेवेल—ए फारगाटेन इम्पायर पृ० ८८

पुर्तगाली गवर्नर इसे देखने के लिए तिरुपति आया। इसी स्थान पर कृष्णदेवराय तथा उसकी दो रानियों की धातु मूर्त्तिया मिली हैं[1]। वेंकटपति राय की भी धातुमूर्त्ति तिरुवन्नमलाई से प्राप्त हुई है। उसमे कलाकारो ने पूर्व मूर्त्तियो के अनुकरण करने का प्रयत्न किया है परन्तु प्रयोग की कमी के कारण इस शैली का अधिक प्रचार न हो सका[2]। उस समय मे मदुरा के नायकों के यहॉ भी धातु-मूर्त्तियॉ बनती थी। ऐसी मूर्त्तियों के ढालने का केन्द्र तजोर, त्रिचनापल्ली, सलेम, रामनाड तथा उत्तरी आरकाट था। गागूली का कथन है कि दक्षिणी तिरुपनि प्रात मे जस्ता तथा ताबे की मूर्त्ति बनाने वाले कारीगर अब भी वर्तमान हैं जो प्राचीन कलाकारो के प्रतिनिधि स्वरूप हैं[3]।

विजयनगर-युग मे जिस प्रकार स्थापत्य-कला तथा तक्षण-कला की उन्नति हुई थी, उसी प्रकार चित्र-कला भी अभ्युदय की चोटी पर पहुच गई थी। दक्षिण भारत मे चित्र-कला की जितनी उन्नति हुई उसका अधिकाश श्रेय विजयनगर-काल को प्राप्त है। उस समय की प्रारम्भिक चित्रकला के उदाहरण नही मिलते। इसका कारण यह है कि मुसलमान आक्रमणकारियों ने चित्रो को नष्ट कर दिया। तो भी बचे हुए नमूनों से उस काल के चित्रकारों की हस्त-कुशलता और निपुणता का परिचय मिलता, है। दुर्भाग्यवश उस समय के कोई भी चित्र आज कागज अथवा केनवास पर नही मिलते परन्तु मन्दिरों, मठो तथा भवनों की दीवारों पर दिखलाई पड़ते हैं। भारतियों मे ज्ञान-पिपासा के साथ सौंदर्य पिपासा की कभी कमी न थी। इन चित्रों की रचना केवल स्मरण और कल्पना के आधार पर ही होती थी। उस समय के चित्रों के नमूने अनेगुडी में स्थित उचमप्प मठ की छतों में मिलता है। छतो में अनेक प्रकार के चित्र

चित्र-कला

---

१ ओ० सी० गांगूली—सा० इ० ब्रोन्जेज़ पृ० २२ प्लेट १२४
२ वही पृ० ५६ प्लेट १२५। ३ सा० इ० ब्रोन्जेज पृ० ६०

दिखलाई पडते हैं जिनकी एक विशेष शैली प्रचलित थी। विजयनगर की प्रारम्भिक अवस्था के अनुसार चित्रों का स्थान तथा रग भरा गया है। रग भरने का प्रकार पुराना था। कृष्णदेवराय आदि राजाओं की धातु-मूर्तियों मे जिस प्रकार का मुकुट मिलता है वैसा ही मुकुट चित्रों मे भी पाया जाता है। आभूषण उसी प्रकार तथा उसी स्थान पर दिखाये गये हैं जिस प्रकार कि विजयनगर शैली में प्रचलित थे। स्त्रिया घोडे पर सवार चित्रित की गई हैं। शरीर मे तग वस्त्र तथा साड़ी दिखलाई पड़ती है। सिर तथा नाक की बनावट का अनुपात शरीर की तुलना मे बडा मालूम पडता है। नाक तथा कान मे आभूषण है। लक्ष्मी देवी परिचारिका के साथ चित्रित हैं। चित्रो मे नोकीलापन अधिक आ गया है। समस्त दक्षिण मे विजयनगर शैली प्रचलित थी। अनेगुडी के मठ मे चित्रो के काले रग मे लाल रग की लाइने दिखलाई पडती हैं। कई प्रकार के फूल पत्तो को भी चित्रकारो ने स्थान दिया है। कमल के फूल की लाल पखड़ियों तथा पीले पराग का भाग दिखलाई पडता है। इसके अतिरिक्त काची मे इरुगप्प द्वारा निर्मित सगीत-मण्डप भी वर्तमान है। इसका सम्बन्ध विजयनगर से बतलाया जाता है। इसमे की गई चित्रकारी इसी काल की द्योतक है। परन्तु अनेगुडी की चित्र-कला विशेष महत्त्व रखती है। चित्र के किनारों पर बेल बूटे तथा कमल के फूल बने हैं। स्त्रिया वस्त्रा-भूषण से सुसज्जित दिखलाई पडती हैं। हाथी तथा ऊटों के चित्र भी प्राय मिलते हैं। उनपर सवारी करते हुए पुरुष चित्रित हैं। बरामदे की छतों में एक ही समान चित्र दोनों तरफ बनाये जाते थे। जिससे देखने वालों को एक-सा प्रतीत हो। कोई भाग खाली न रहता था। भूमिति की शक्लें, पुष्पों के सहित अनेक लताए, अत्यन्त सुन्दर प्रकार से दिखलाई गई हैं। मनुष्यों की विभिन्न अगों की बलवान् तथा चचल आकृतियाँ सजीवता के साथ चित्रित हैं। मनुष्यों की बराबरी मे स्त्रियों के पैर उचित रीति से नहीं दिखलाये गये हैं। उनकी आँखे लम्बी हैं और ललाट तथा नाक एक सीध में दिखलाई पड़ती है। वक्षस्थल उभरा हुआ दिखलाया

गया है। वस्त्रो मे टेढी लकीरें एक दूसरे को आच्छादित कर रही हैं जिसके कारण कपडे की लाइनें गोलाकार बनकर आगे चलती हैं। चित्रों मे खाका-चित्रों को विशेष महत्त्व दिया जाता था। चित्रों मे ऊचाई, निचाई का पूरा ध्यान रक्खा जाता था। दूर स्थित वस्तुओ का चित्र इस बारीकी से खीचा जाता कि सभी अगों का चित्र ठीक-ठीक उतर जाय। चित्र के साथ प्राकृतिक दृश्य की भी प्रथा यत्र-तत्र प्रचलित थी।

विजयनगर की चित्रकला उपर्युक्त विशेषताओं के साथ दक्षिण-भारत मे प्रचलित थी। उस भाग मे प्रायः प्रत्येक चित्र विजयनगर की शैली पर ही तैयार किये जाते थे। उस काल के चित्रो के अधिक नमूने इस समय नही मिलते। विदेशी यात्रियों ने लिखा है कि वेकटपति द्वितीय विद्वान् राजा था तथा कलाकारों का आश्रयदाता था। चन्द्रगिरि मे चित्रकार अधिक सख्या मे रहा करते थे। योरप की चित्रकला से वेकट बहुत प्रभावित था, अतएव उसने ईसाई चित्रकारों को अपने यहा नियुक्त किया था। राजा ने उनके काम से प्रसन्न होकर नई सौ मुद्राये रग खरीदने के लिए दी थी। कृष्णदेव राय के समय मे विजयनगर की कला चरमसीमा को पहुच चुकी थी। अतएव यह अनुमान किया जाता है कि कृष्णदेव राय से लेकर वेकट के समय तक प्रत्येक कला अभ्युदय को प्राप्त थी।

विद्वानों की यह धारणा निराधार है कि दक्षिण भारत मे चित्रकला चोल राजाओं के साथ समाप्त हो गई, प्रत्युत इसके विपरीत इसकी परम्परा अविच्छिन्न रूप से विजयनगर काल तक पायी जाती है। जैसा कहा गया है कि विजयनगर के चित्रकारों को आकृति तथा मुद्राओं का अच्छा ज्ञान था। चित्र को आकर्षक बनाने के लिए रग भरने की कला की वे पूरी जानकारी रखते थे। पेई ने ऐसे ही सुन्दर चित्र कृष्णदेव राय के महल मे देखा था। चित्र का विषय सर्वथा पौराणिक था। समुद्र-मन्थन, कामदेव का नाश, नलदमयन्ती का विवाह और विष्णु आदि के चित्र अकित थे। यही नही, सुन्दर चिड़ियों—हस, शुक, मयूर आदि के चित्र खीचे गये थे। इसके अतिरिक्त प्रेम-लीला, रम्भा, उर्वशी, कृष्ण

और गोपियो के चित्र पेई ने स्वय देखे थे। विजयनगर के चित्रकारों में इतनी कुशलता होने पर भी वेकट द्वितीय ने अपने समय मे विदेशी चित्रकारो की नियुक्ति की थी।

बाद की विजयनगर-कला का नमूना लेपाक्षी मदिर मे पाया जाता है। यद्यपि यह मदिर छोटी सी जगह मे बना है पर वहाँ पापनाशेश्वर शिव का भी मदिर है। अच्युत राय का एक लेख भी वहाँ मिला है। परन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि अच्युत ने उस मदिर का निर्माण कराया था। उस मदिर का मुख्य भाग 'मण्डप' है जिसमें विशाल स्तम्भ नाना प्रकार से खुदे हैं। इसी के अन्दर मण्डप की छत मे चित्र खीचे गये हैं। इनमें महाभारत तथा पुराण की घटनाये चित्रित हैं। चित्रकारों ने अपने हस्त-कौशल का सुन्दर परिचय दिया है। अर्धमण्डप देखने योग्य है। इसकी छत में चित्रकला के सुन्दर और उत्कृष्ट नमूने पाये जाते हैं। इनकी विशेषता यह है कि इन चित्रो मे शिव के विभिन्न रूप शिव-ताण्डव, दक्षिणामूर्त्ति, गंगाधर तथा हरिहर आदि दिखलाये गये हैं। ये चित्र शिल्पशास्त्र के अनुकूल बने हैं। अतएव यह कहा जा सकता है कि अर्धमण्डप के चित्र विजयनगर काल की चित्र-कला का प्रतिनिधित्व करते हैं।

विजयनगर कालीन साहित्य तथा कला का विवेचन किया जा चुका है। अब सगीत और अभिनय का कुछ वर्णन किया जायेगा। विजय-

संगीत

नगर के राजा स्वय विद्वान् थे और पण्डितों के आश्रयदाता थे। उनके दरबार मे विद्वानों का जमघट लगा रहता था। वे साहित्य, कला तथा सङ्गीत की चर्चा मे अपने समय को बिताते थे क्योंकि—

साहित्य-सगीत-कलाविहीन साक्षात् पशु. पुच्छविषाणहीन।

साहित्य तथा कला की उन्नति के उपरान्त सङ्गीत की ओर शासको का ध्यान जाना नितान्त स्वाभाविक था। सामाजिक तथा आध्यात्मिक कारणों से ही

सङ्गीत का प्रादुर्भाव हुआ करता है। यह तो सब को विदित ही है कि सामवेद से सङ्गीत का जन्म हुआ (सामवेदादिद गीत सजग्राह पितामहः)। परन्तु इसके बाद सङ्गीत-शास्त्र पर ग्रथ लिखने का प्रथम श्रेय भरत को ही है। समस्त भारत मे इनकी शैली का विस्तार हुआ पर दक्षिणी भारत में 'दाक्षिणात्य-पद्धत्ति' का प्रचार था। भरत ने इसका स्पष्ट उल्लेख किया है। अतएव दक्षिण मे विजयनगर-राज्य से पूर्व सङ्गीत की पद्धति प्रचलित थी जिसकी उन्नति इस काल मे हुई।

विजयनगर के शासक और नायक लोग भी सङ्गीत के प्रेमी थे। कृष्णदेव राय और रामराय स्वय सगीत के ज्ञाता थे। उनके लेखों मे वर्णन मिलता है कि राजा गान-विद्या मे अद्वितीय था[1]। पेई ने भी लिखा है राज दरबार मे नाना प्रकार के बाजे वर्तमान थे[2]। इन सब उल्लेखों से राजाओ के सगीतज्ञ होने की बात सिद्ध होती है। बारबोसा का कथन है कि राजा के स्नान करते समय राजमहल की स्त्रियॉ गाने गाकर उसका विनोद किया करती थी। उसके दरबार मे सगीत-शास्त्र के आचार्य रहा करते थे। इम्मादी देवराय के समय मे संगीत-विद्या चरम-सीमा को पहुँच गई थी। उसी की आज्ञानुसार कल्लिनाथ तथा अण्ठाना पंडित ने 'सगीत-रत्नाकर' पर टीकाये लिखी। यद्यपि भरत की सगीत-पद्धति पर अनेक विद्वानो ने टिप्पणी लिखी थी, पर कल्लिनाथ की टीका महत्त्वपूर्ण समझी जाती है। इसी टीका से सबको भरत के भाव ज्ञात होते हैं। भरत-पद्धत्ति के अतिरिक्त दक्षिण-भारत मे 'कर्नाटक-शैली' का भी प्रचुर प्रचार था। विजयनगर-शासको ने उत्तरी और दक्षिणी भारतीय-सगीत-पद्धत्ति को अपनाया और प्रोत्साहित किया। विशेषतः 'ध्रुव' तथा 'ख्याल' की अधिक प्रसिद्धि थी। इसे उत्तर मे फैलाने का श्रेय गोपाल नायक को है। रामराय के समय मे कर्नाटक-पद्धत्ति को लोग अधिक पसद करते थे। उसी की आज्ञानुसार कल्लिनाथ

---

१ इ. आ. आ. पृ. ४०१। २ सेवेल पृ० २५१।

के पौत्र रामामात्य ने 'स्वरमेलकलानिधि' नामक पुस्तक लिखी। इस प्रकार सगीत का प्रसार विजयनगर काल में अधिक हुआ। कल्लिनाथ के समय में सगीत द्वारा जनता मे धार्मिक और सामाजिक भावनाये जागरित की की गईं। श्रीपाद स्वामी ने माधवाचार्य के शिष्य नरहरितीर्थ की परम्परा को आगे बढाया। इन्होने सगीतमय सैकड़ो छदों की रचना की। सस्कृत न जानने वालों के लिए कन्नड भाषा में गीत लिखे गये। इस प्रकार जनता में सगीत का प्रचुर प्रचार हुआ। ये सालुव नरसिंह के गुरु थे। इनकी शिष्य परम्परा में ऐसे ही सगीतज्ञ होते आये हैं। इनके सभी शिष्य विजयनगर के राजगुरु थे। राजा कृष्णदेव राय के गुरु श्रीव्यासरामस्वामी सन् १५२६ ई० में बानवे वर्ष की आयु में मरे। इनके तीन प्रधान शिष्य थे। पुरन्दर दास ने पढरपुर को अपना केन्द्र बनाया। कीर्तन के द्वारा सगीत का अच्छा प्रचार किया गया। इन लोगो ने कर्नाटक शैली का प्रचार किया। आचार्यों का मत है कि सगीत मे 'ठाट' का समावेश विजयनगर दरबार मे हुआ था। इस हिन्दू-राज्य के अतिरिक्त तत्कालीन मुसलमान सुल्तानो ने भी सगीत को प्रोत्साहित किया। अहमदनगर सुल्तान के दरबार मे पुण्डरीक विट्ठल नामक संगीताचार्य रहा करता था। वह कर्नाटक का पडित था। परन्तु वह अहमदनगर सुल्तान के यहाँ अपनी कला का प्रदर्शन किया करता था। उसने 'रागमाला', 'राग मंजरी' तथा 'नर्तक-निर्णय' आदि ग्रन्थों की रचना की है। सगीत के आचार्यो मे 'मेल' के प्रस्तार और निश्चित सख्या के विषय में मत-भेद है। कल्लिनाथ तथा विट्ठल ने 'मेल' की विभिन्न संख्याये निश्चित की हैं। परन्तु यहा पर इसका गूढ विवेचन करना अनुचित होगा। यह सगीतज्ञों के विवाद का विषय है। साराश यह है कि भारतवर्ष में भरत और दक्षिणात्य-पद्धति का प्रचार साथ-साथ ही हुआ। विजयनगर शासकों ने दोनों को अपनाया। इस प्रकार सगीत की विशेष उन्नति इस समय में हुई।

सगीत के साथ नृत्य तथा वाद्य का अभिन्न सम्बन्ध है। जहा गीत

वसन्तोत्सव का दृश्य (चित्र में नर्तकियाँ नाच रही हैं

है, वहां नृत्य तथा वाद्य का होना स्वाभाविक है। विजयनगर-राज्य मे

नृत्य तथा वाद्य

नृत्य का प्रचुर प्रचार था। राज-सभा मे नित्य गाना तथा नृत्य हुआ करता था। वेश्याये मन्दिरो में नाचा करती थी। लेखों मे वर्णन मिलता है कि प्रत्येक शनिवार को महल मे नृत्य होता था तथा राजा-रानी उसे देखा करते थे। वेश्याये रानियो को सगीत (नृत्य, वाद्य व गाना) सिखलाया करती थी। जैन लोग भी गाने व नाचने से अधिक प्रेम रखते थे। विजयनगर के लेखों मे वाद्य-सामग्री ढोल, भेरी, मजीर आदि का नाम मिलता है। 'राघवेन्द्र-विजयम्' मे ऐसा वर्णन मिलता है कि राजा (कृष्णदेवराय) स्वय वीणा बजाया करता था। रामराय के समय मे वाद्य की बडी उन्नति हुई। बारबोसा के कथनानुसार वेश्याये नाच के प्रसार मे खूब दिलचस्पी लेती थी। वृद्ध वेश्याये अपनी दस वर्ष की लडकियो को शृङ्गार कर मन्दिरो मे ले जाती थी। वे वहा देवदासी के रूप मे रहा करती थीं। उस समय नर्तकी को आजकज की वेश्याओं के समान निन्दनीय नही समझा जाता था। वे राजमार्ग पर रहा करती थी। सभ्य विद्वान् व्यक्ति भी गाने तथा नाच देखने के लिए उनके पास जाया करते थे। वे राजमहल मे बिना सकोच के चली आती थी और राजा-रानी के साथ पान खाया करती थी। इससे मालूम पडता है कि उनको आदर की दृष्टि से देखा जाता था। राजा कृष्णदेव राय के समय मे वेश्याये महानवमी उत्सव मे खूब भाग लेती थी। राजा ने नृत्य के प्रचार के लिए नृत्य-शाला तैयार कराई थी। नाच सिखाने वाले को कृष्णदेव राय ने दो गॉव दिये थे[1]। नृत्य-मण्डप की इमारत बडी सुन्दर थी। स्तम्भो से युक्त बडा कमरा था जिस पर नाना प्रकार की आकृतियॉ खुदी थी। जानवर (हिरन), मनुष्य और पक्षियों की आकृति प्रस्तर पर खुदी थी। हाथियो पर ढोल लेकर बैठी हुई वेश्याओं की मूर्त्तियॉ स्तम्भ पर खोदी गई थी। इस मण्डप की

---

१ रंगाचार्य—टोपो-लिस्ट भा० २ पृ० १२२

विशेषता यह थी कि खम्भों पर जितने प्रस्तर लगे थे उन पर सुन्दर खुदाई की गई थी। उनमें नृत्य की विभिन्न मुद्रायें दिखलाई गई थीं। नाचने वाले को इन्हें देख कर काम करना पड़ता था। यदि नर्तकी कहीं कोई मुद्रा भूल जाती तो शीघ्र ऊपर आंख उठा कर देख लेती और पुन उचित रीति पर नाचने लगती थी। नाच सिखलाने के लिए किसी आदमी की आवश्यकता सदा न थी। उस मण्डप में भरत नाट्य-शास्त्र मे बतलाई हुई सभी मुद्राओं के चित्र थे। कृष्णदेव राय की विशेष आज्ञा से नृत्य-मण्डप के मध्य मे एक युवती नर्तकी की सोने की मूर्ति बना कर खड़ी की गई थी। खेद है कि इस मण्डप की केवल कथा ही शेष रह गई। अब वह स्थान नष्ट हो गया है। हाल ही मे विट्ठलस्वामी-मन्दिर मे एक पत्थर का सिंहासन मिला है जिस पर गाने वाला, नाचने वालों और बाजा बजाने वालो की आकृतियाँ खुदो हैं। सम्भवत राजा इसी पर बैठता था। इन सब के वर्णन करने का साराश यही है कि राजा नृत्य मे अधिक दिलचस्पी रखता था। गाने के साथ नाचने का कार्य अच्छे ढग पर चलता था। हजाराराम मन्दिर की दीवारों पर नर्तकी की मूर्त्तिया इस कथन की पुष्टि करती हैं।

अभिनय

सगीत के साथ नाटक का भी इस काल में प्रचार था। समय-समय पर राज्य मे नाटक हुआ करते थे। इसके लिए नाट्यशालायें तैयार की गई थीं। रगस्थल के नाम से कई लेखों में इसका उल्लेख पाया जाता है[1]। मदिरो में नाटक खेला जाता था अतएव जनता नाटक की कला से प्रेम रखती थी[2]।

अभिनयकर्ता विजयनगर से दूसरे स्थानो पर भी नाटक खेलने जाया करते थे। मल्लिकार्जुन के समय मे गगाधर नामक व्यक्ति ने 'गगादास 'प्रताप-विलासम्' नामक ग्रथ की रचना की। उसमे यह वर्णन आता है कि

१ एपि० कर० भा० ११ पृ० ३६

२ सा० इ० इ० भा० ३ पृ० २६०

विजयनगर के नाटक खेलने वाले अन्य शासक के पास भेजे गये थे। इसका कारण यह था कि वहा के राजा ने एक नाटक लिखा था जिसका अभिनय करने के लिए विजयनगर से अभिनयकर्ता निमन्त्रित किये गये थे[1]। सालुव नरसिह के शासन काल मे ज्योतिरीश्वर ने 'धूर्त-समागम' नामक प्रहसन का अभिनय किया था। कृष्णदेव राय ने भी 'जाम्बवती-कल्याण' नामक नाटक की रचना की थी। वह वसत के उत्सव पर जनता के सम्मुख खेला गया था[2]। इससे यह प्रकट होता है कि राजा तथा प्रजा नाटक मे विशेष प्रेम रखती थी। प्रातीय नायको के यहा भी नाट्य-शाला तैयार की गई थी। 'रघुनाथाभ्युदयम्' मे वर्णन मिलता है कि तजौर के शासक विजयराघव नायक ने नाट्यशाला तैयार कराई थी[3]। इकेरी के नायक ने भी अभिनय के लिए 'सुन्दर-शाला' का निर्माण कराया था। अतएव लेखों तथा साहित्यिक विवरण के आधार पर यह ज्ञात होता है कि केन्द्रीय तथा प्रातीय राजधानियों मे नाटक खेलने का प्रबंध था तथा नाट्य शालाये वर्तमान थी। पात्र-गण अपने कला-पूर्ण अभिनय से सब का मनोरञ्जन किया करते थे।

---

१ सोर्सेज़ आफ विजयनगर हिस्ट्री पृ० ६६

२ सोर्सेज़ पृ० १४२। ३ सोर्सेज़ पृ० २६५

: १३ :

विजयनगर की महत्ता

गत पृष्ठों मे विजयनगर-साम्राज्य के राजनैतिक तथा सास्कृतिक इतिहास का विवेचन किया गया है। विभिन्न ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा राजाओं के शासन तथा तत्कालीन सभ्यता का वर्णन हो चुका है। इस सबध मे यही बतलाना शेष है कि मध्ययुग के भारतीय सम्राटो मे विजयनगर शासकों को क्यो विशेष महत्ता दी जाती है तथा इनका ऐतिहासिक महत्त्व क्या है ? सर्व प्रथम इस बात पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है कि दक्षिण भारत मे कोई भी ऐसा राजा अथवा हिन्दू राज-वश न था जिसकी समता विजयनगर से की जाय। मध्य-युग मे केवल यही राज्य था जिसने हिन्दू-गौरव की रक्षा की। इस काल मे हिन्दू-सस्कृति की सर्वाङ्गीण उन्नति हुई। उत्तरी भारत मे जब पठान सुलतान निर्विघ्न अपना राज्य बढा रहे थे, उस समय दक्षिण मे मुसलमान बहमनी शासकों को पराक्रमी विजयनगर राजाओं साथ संघर्ष मे अपना समय बिताना पड़ता था। प्राचीन भारत की सारी संस्कृति को मध्ययुग मे सुरक्षित रखने का श्रेय विजयनगर सम्राटों को ही है। मुगल बादशाहों के अभ्युदय से पूर्व विजयनगर का ह्रास प्रारम्भ हो गया था। जब दक्षिण-भारत मे उनका राज्य फैला तो कोई भी हिन्दू-शासक (शिवाजी के अतिरिक्त) उनके मार्ग मे बाधक न हो सका। महाराष्ट्र मे शिवाजी ने विजयनगर के बाद हिन्दू-साम्राज्य को स्थापित किया था। पर यह अत्युक्ति न होगी कि महाराज शिवाजी के मार्ग को विजयनगर सम्राटों ने सरल बना दिया था। तालकोट के युद्ध के बाद बहमनी सुल्तानों की प्रधानता हो गई। हिन्दू जनता त्रस्त हो गई थी। वह ऐसे नेता की खोज मे थी जो पुन. देश मे हिन्दू-सत्ता को स्थापित कर सके। यही कारण है कि शिवाजी को

चारो तरफ से सहायता मिलने लगी। दक्षिण की हिन्दू जनता के हृदय में विजयनगर सम्राटो ने पर्याप्त मात्रा मे आर्य सस्कृति के प्रति प्रेम पैदा कर दिया था। यद्यपि वे सुल्तानों के शासन मे, समय के फेर से मौन बने बैठे थे, पर उनकी रगो मे आर्य-सस्कृति का रुधिर वर्तमान था। शिवाजी की साम्राज्य स्थापना के उद्योग से उनको सहारा मिल गया और पुनः हिन्दू-साम्राज्य की भावना जाग उठी। इसीलिए यह कहा गया है कि पूर्वगामी विजयनगर शासक शिवाजी के पथ-प्रदर्शक थे।

यों तो दक्षिण भारत मे मुसलमानो का आवागमन बहुत पहले से प्रारम्भ हो गया था परन्तु मुगल बादशाहो के अतिरिक्त कोई भी सुल्तान वहाँ अपना साम्राज्य स्थापित न कर सका। दक्षिण-भारत का इतिहास यह बतलाता है कि मध्य-युग मे मुगलो से पूर्व विजयनगर की प्रधानता थी। आठवी शताब्दी के पश्चात् हिन्दू-सभ्यता तथा सस्कृति का केन्द्र उत्तर से हटकर दक्षिण भारत मे चला आया। इसी भाग मे प्रायः सभी महापुरुषों का जन्म (आविर्भाव) हुआ। शङ्कर और रामानुज आदि दक्खिन मे ही पैदा हुए। तुकाराम और रामदास ने धर्म का प्रचार दक्षिण मे ही किया। इस सम्बन्ध मे यह भी कहना न्याय-सङ्गत प्रतीत होता है कि विजयनगर के हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना विन्ध्य के दक्षिण मे हुई और आर्य-सस्कृति के रक्षक राजा कृष्णदेवराय विजयनगर मे ही शासन करते थे। सुदूर मदुरा मे अरब वालो का राज्य था। विन्ध्य के दक्षिण मे बहमनी सुल्तान राज्य करते थे। परन्तु इस बीच मे स्थित रह कर हिन्दू धर्म की रक्षा का महान् भार विजयनगर सम्राटों पर ही था। प्राचीन-भारत के शासक गुप्त-सम्राटो के सदृश विजयनगर राजाओ ने भारतीय-सस्कृति की सर्वाङ्गीण उन्नति की। इस प्रकार इन तीन सौ वर्षों के सुशासन मे इन सम्राटों ने दक्षिण-भारत मे मुसलमानो के पैर नही जमने दिये। इन सब बातों की विवेचना यही बतलाती है कि विजयनगर साम्राज्य का भारतीय-इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसकी ऐतिहासिक महत्ता का अनुमान उसके प्रधान कार्यो से किया जा सकता है।

विजयनगर-सम्राटों ने प्राचीन-भारतीय-शैली को अपनाया। उनका सारा शासन आदर्श कार्यो से भरा पड़ा है। विजयनगर का शासन-प्रबंध एक निजी विशेषता रखता है। यह कहा जा चुका है कि इन तीन सौ वर्षों में चार विभिन्न वंशों ने राज्य किया। एक वंश के अन्त होने पर दूसरे वंश का शासक शासन की बागडोर अपने हाथ में लेता गया। परन्तु सब से विचित्र बात यह है कि किसी वंश के राजा ने पूर्वगामी राज-वंश को निर्मूल करने का कभी विचार तक नहीं किया। यहाँ तक कि उनके रहने का प्रबन्ध स्थानापन्न राजा ही करते रहे। उनका मुख्य ध्येय यही रहता था कि साम्राज्य की अवनति न होवे तथा शासन-प्रबंध में बुराई न आये। नरसिंह सालुव ने संगम-वंश के हाथों से विजयनगर की अवनति न होने दी। प्रभाव-शाली होने के कारण अच्युत के स्थान पर रामराय ने शासन को अपने हाथों में ले लिया। इस प्रकार शक्ति-हीन शासक के स्थान पर प्रतापी व्यक्ति शासन करने लगता था। यदि राजनैतिक सिद्धान्त को लेकर विचार किया जाय तो विजयनगर के चारों वंशों के राजाओं का केवल यही ध्येय था कि साम्राज्य का शासन आदर्श ढंग से किया जाय। इस कार्य में प्रजा भी राजा का साथ देती थी। बहमनी सुल्तानों के आक्रमण को रोकने का पूरा भार प्रजा पर था। हिन्दू सैनिकों ने अन्य लोगों से रण-कौशल को सीख कर राजा की सहायता की।

आदर्श-शासन

अन्त में विजयनगर की सेना के बारे में कुछ कहना आवश्यक ज्ञात होता है। सेना में अनेक विभाग थे। सबका संचालन पृथक्-पृथक् होता था। लाखों की सेना सदा तैयार रहती थी। उस समय मुगल सम्राट् के सिवा किसी के पास ऐसी विशाल सेना न थी। आक्रमण के समय पड़ाव एक नगर बन जाता था। पेई ने इसका वर्णन सुन्दर शब्दों में किया है।

विजयनगर के शासकों ने प्रजा के सुख तथा शान्ति के लिए सब वस्तुओं का प्रबंध किया था। प्रजा के इहलौकिक तथा पारलौकिक सुखों

का सदा ध्यान रक्खा जाता था। विजयनगर के राजाओं ने वैदिक मार्ग की स्थापना की। स्वधर्म तथा स्वभाषा की नीति निर्धारित की। इनके शासन मे प्रजा की नसों मे आर्य-सस्कृति का रुधिर बहता था। अतएव सब ने आर्य-सभ्यता की रक्षा की। विजयनगर नरेशों ने देववाणी (सस्कृत) तथा मातृभाषा तेलुगु को अपनाया जिसके कारण तत्कालीन लेख तथा साहित्यिक ग्रथ इन्ही भाषाओं मे लिखे गये। समाज का कोई भी ऐसा अग न था जिस पर विजयनगर के शासकों का ध्यान न रहा हो। ईश्वर के भक्तो से लेकर साधारण मनुष्यों तक के लिए मनोरजन की सामग्री का आयोजन किया गया था। इस प्रकार इन राजाओं ने प्रत्येक प्रकार से प्रजा की उन्नति का मार्ग निर्धारित किया था। विजयनगर मे सदा विदेशी यात्री आते रहे। उन्होंने साम्राज्य की हर एक बातों का वर्णन किया है और भूरि-भूरि प्रशसा की है। सक्षेप मे यही कहना पर्याप्त प्रतीत होता है कि विजय-नगर के सुशासन मे प्रजा की सर्वाङ्गीण श्री-वृद्धि हुई और उनका जीवन सुख व शाति के साथ व्यतीत होता रहा।

सस्कृति की रक्षा

सस्कृत में एक सुभाषित है कि 'शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्र-चिन्ता प्रवर्तते' अर्थात् जब देश की रक्षा पूर्ण रूप से होती है तब शास्त्रो के अध्ययन मे लोग प्रवृत्त होते हैं। शात वातावरण मे जनता साहित्य के कार्य में लीन होती है। यह कहावत विजयनगर राज्य मे अक्षरशः चरितार्थ होती है। बुक्क तथा हरिहर ने विजयनगर मे शाति स्थापित कर शास्त्र का चिन्तन आरम्भ किया था। इस काल की एक विशेपता—जो प्राचीन काल मे भी नहीं पाई जाती—यह है कि हरिहर के अनुरोध से आचार्य सायण ने वेदो पर भाष्य लिखे। इन्होंने अगम्य वेदार्थ को गम्य बनाया। वेद के ज्ञान को सब के लिए सुलभ बनाया। प्राचीन भारत मे गुप्त सम्राटों का काल 'स्वर्ण-युग' माना जाता है, उस समय साहित्य की—विशेपतया सस्कृत की—असाधारण उन्नति हुई। उस काल मे ऐसा कोई व्यक्ति न था जो

साहित्य की उन्नति

देव-वाणी को न जानता हो । यह कहा जाता है कि संस्कृत इस समय राष्ट्र-भाषा थी। साहित्य के ऐसे उन्नत-काल में भी वेदों पर टीका ग्रन्थ नही लिखे गये। इसके प्रतिकूल विजयनगर काल मे वैदिक साहित्य पर अधिक जोर दिया गया। सायण के वेद-भाष्य अभी तक प्रामाणिक माने जाते हैं। वेदभाष्यो की रचना करा कर विजयनगर के शासकों ने प्रशंसनीय कार्य किया। सायण के भ्राता माधवाचार्य ने इस काम मे अधिक सहायता पहुंचाई। राजा स्वय विद्वान् थे। विद्वानो का वे आदर करते थे। भारतीय इतिहास मे ऐसा कोई काल विभाग नहीं है जिस समय वैदिक-साहित्य के भण्डार को इस प्रकार भरा गया हो अन्त मे यही कहना पर्याप्त होगा कि विजयनगर के शासक इस क्षेत्र मे भी किसी से पीछे न रहे।

धार्मिक-सहिष्णुता

भारतवर्ष धर्म के पालन मे सदा अग्रसर रहा है। यहाँ के शासक एक ही समय मे कई धर्मों को प्रोत्साहन दिया करते थे। उनकी इच्छा थी कि सभी धर्मों की वृद्धि हो। इस कारण वे धर्म-सहिष्णु कहे जाते थे। विजयनगर-काल मे राजा शैव तथा वैष्णव मत को मानते थे। कुछ राजाओं ने शैव मत को अपनाया, तो किसी ने वैष्णव-धर्म को राजधर्म बनाया। इन राजाओं ने जैनियों को भी शरण दी। अपनी सेना मे मुसलमानो की नियुक्ति की। राजधानी मे मसजिद बनाने की आज्ञा दी तथा इसके लिए आर्थिक सहायता भी की। ईसाई लोग राज्य मे सब जगह फैले हुए थे। स्थान-स्थान पर उन्होंने अपना केन्द्र बना लिया था। कई गिरजाघर बन गये थे। परन्तु विजय-नगर के शासको ने इसका विरोध नहीं किया। एक बार जैनियों के झगडे को नीति-पूर्वक सुलझा दिया था। राज्य मे जैन, ईसाई, मुसलमान आर्य-धर्मावलम्बियों के साथ शांति पूर्वक रहते थे। यह किसी को कहने का अवसर न मिलता था कि अमुक राजा शैव या वैष्णव होकर अन्य धर्मा-वलम्बियों पर अत्याचार करता है। शासक के सामने सभी बराबर थे। आर्य-संस्कृति के संरक्षक के नाते विजयनगर के सम्राट अपने धार्मिक कृत्य मे सदा संलग्न रहते थे। वर्षा मे समय-समय पर उत्सव मनाया

जाता था। महानवमी का उत्सव सर्व प्रधान माना जाता था। उस समय राजा यज्ञ करता था और हवन में हीरे, मोती आदि मूल्यवान् द्रव्यों की आहुति दी जाती थी। पेई ने इस कथन की पुष्टि की है[1]।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

मध्ययुग के आरम्भ मे दक्षिण-भारत ही व्यापार का केन्द्र हो गया था। यों तो अरब वाले भारत के पश्चिमी किनारे पर व्यापार काफी समय से करते थे परन्तु योरप से पुर्त्तगालिया के आ जाने से प्रतिस्पर्धा बढ गई। इनकी प्रतियोगिता का फल बुरा हुआ। पुर्तगाली अरब वालो को दबाने मे और उनके व्यापार को नष्ट करने में लगे थे। भारत का व्यापार कुछ शिथिल पड़ गया था। विदेशी लोग अपना जहाज लेकर समुद्र तट पर आने लगे। वास्कोडिगामा ने अफ्रीका होकर भारत मे आने का मार्ग ढूंढ निकाला था। अतएव पुर्तगाली यहॉ व्यापार करने मे तन मन धन से लग गये। गोआ मे रहकर ये धीरे-धीरे फैलने लगे। अरब-सागर मे इनका बोल-बाला हो गया। उन्होंने अपना राजदूत विजयनगर मे भेजा। शासक स्वय व्यापार के महत्त्व को समझता था, अतः दोनों मे व्यापारिक सन्धि हुई जो अन्तर्राष्ट्रीय ढग की पहली सधि कही जा सकती है। भारत में इस प्रकार की यह पहली सन्धि थी। रामराय का दूत गोआ गया और उसका स्वागत वहा के गवर्नर ने किया। अरब वालों की जगह पर पुर्तगाली ही प्रधान व्यापारी हो गये। लंका को भी जीतकर विजयनगर-सम्राटो ने अन्तर-राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित किया था। इस प्रकार दोनों की संस्कृति का आदान प्रदान हुआ। वृहत्तर भारत मे हिन्दू-सभ्यता के साथ ही विजयनगर के शासको का प्रभाव व्याप्त हो गया। विजयनगर शासकों का विदेशी राज-प्रतिनिधि से सन्धि करने का यह पहला अवसर था। यह उनकी दूर-दर्शिता थी। आगे चल कर मुगल सम्राटों ने देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने तथा देशी व्यापार की उन्नति के लिए

---

१ सेवेल—ए फार० इम्पा० पृ० २६७

योरप वालों को भारत में व्यापार की करने की अनुमति दी। सम्भवतः विजयनगर तथा पुर्तगालियों की व्यापारिक सन्धि ने उनके लिए मार्ग-दर्शक का काम किया हो।

कला की वृद्धि

भारतीय इतिहास में किसी राजवंश की महानता तब तक नहीं आकी जा सकती जब तक कि तत्कालीन कला की उन्नति का विवरण न उपस्थित किया जाय। इसी बात को ध्यान में रख कर विजयनगर कालीन कला के विषय में दो शब्द कहना आवश्यक हो जाता है। भारतीय कला-शैली के दो विभाग किये गये हैं। पहली उत्तर शैली या आर्य शैली और दूसरी दक्षिण-भारतीय अथवा द्राविड शैली। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि विजयनगर-कालीन कला भी अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण समझी जाती थी। इसकी अपनी पृथक् शैली हो गई थी। विजयनगर के भवनों में यही शैली अधिक प्रयोग की गई है। इस समय कला की सर्वाङ्गीण उन्नति हुई। विजयनगर की कला मध्य-कालीन कला का प्रतिनिधि स्वरूप है। वास्तुकला की उत्तमता का अनु-मान हजाराराम तथा विट्ठल स्वामी के मन्दिरों के देखने से किया जा सकता है। इस कला की विशेषता यह है कि विजयनगर शैली में भाव और सामग्री का सम्मिश्रण पाया जाता है। इस शैली की सुन्दरता पराकाष्ठा को पहुँच गई थी। विजयनगर में दिव्य राजमहलों के निर्माण के कारण यह एशिया में एक विशिष्ट नगर समझा जाता था। यहाँ के मन्दिर, दुर्ग तथा राजमहल देखने योग्य थे। तक्षण-कला में अलङ्करण की प्रधानता थी। मूर्तियां विशाल बनाई जाती थीं जिससे वे चित्त को आकर्षित कर सकें। उस समय के सुन्दर चित्र तत्कालीन कलाकारों की निपुणता और हस्त-कुशलता का परिचय देते हैं। स्यात् सङ्गीत की उन्नति तो किसी काल में भी ऐसी नहीं हुई थी। कृष्णदेव राय ने नृत्य-मण्डप का निर्माण कराया था और उसने एक युवती नर्तकी की सोने की प्रतिमा बनाकर मानों नृत्य को सशरीर खड़ा कर दिया था।

गत पृष्ठों में विजयनगर साम्राज्य के राजनैतिक तथा सांस्कृतिक

इतिहास प्रस्तुत करने के बाद, भारतीय इतिहास मे इसकी महत्ता को

उपसहार

सक्षेप मे समझाने का प्रयत्न किया गया है। सच तो यह है कि इतने स्वल्प स्थान मे इस साम्राज्य की महत्ता का प्रतिपादन हो ही नही सकता। जब भारत के सुदूर दक्षिण में विधर्मी मुसलमानों के आक्रमण हो रहे थे, जब हिन्दू-राज्य तथा धर्म को समूल नष्ट करने के लिए यवनो की विजयवाहिनी 'दक्षिण की मथुरा' मदुरा तक पहुॅच गई थी, जब बहमनी रियासते छोटे-छोटे हिन्दू शासकों को निगलने के लिए तुली बैठी थी ऐसे सङ्कट के समय मे हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना कर विधर्मियों को मार भगाना विजयनगर-शासकों का ही काम था। स्थिति के विपरीत होने पर भी लगातार तीन सौ वर्षो तक दक्षिण भारत मे हिन्दू-साम्राज्य को जीवित रखने का श्रेय इन्ही राजाओ को है। यदि विजयनगर के शासक न होते तो कौन कह सकता है कि दक्षिण भारत की क्या दुर्दशा हुई होती? ये राजा परम वैष्णव थे तथा हिन्दू सस्कृति के पोषक और रक्षक थे। इनके समय मे सस्कृत, कन्नड तथा तेलुगु साहित्य की अलौकिक उन्नति हुई। सायण ने तो अपना वेद-भाष्य लिखकर इस काल को सदा के लिए अमर बना दिया है। माधवाचार्य ने वेदान्त-दर्शन पर अनेक ग्रन्थो की रचना कर जनता को शाश्वतिक शान्ति का मार्ग दिखलाया। इन दोनो भाइयो की जोडी अपूर्व थी। एक उद्भट वैदिक था तो दूसरा गभीर वेदान्ती। इनके अतिरिक्त कन्नड तथा तेलुगु भाषा के कवियो ने इस काल मे सरस कविता कर जनता को आनन्द सागर मे डुबो दिया।

इस समय मे ललित-कला की भी अपूर्व उन्नति हुई। क्या वास्तु-कला, क्या तक्षण कला तथा क्या चित्रकला सभी अपनी अपूर्व कलाये दिखला रही हैं। विजयनगर की राजधानी मे बने हुए विशाल राजमहल तथा दुर्ग विजयनगर की वास्तु-कला के अनुपम उदाहरण हैं। इन सुन्दर राजमहलो को देखकर विदेशी यात्री भी दग रह जाते थे और म कण्ठ से इनकी सुन्दरता की भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे। तक्षण

विजयनगर के कारीगर अपना सानी नहीं रखते थे। उनके द्वारा बनाई गई मूर्तियों मे वह सजीवता पाई जाती है जिसका दर्शन अन्यत्र होना कठिन है। कृष्णदेवराय की धातुमूर्ति उस समय की तक्षण-कला का एक उत्कृष्ट नमूना है। इन मूर्तियों मे अंगों का अनुपात तथा वस्त्र और आभूषणों की बनावट इतनी सुन्दर हुई है कि मनमुग्ध हो जाता है। विजय-नगर-कालीन चित्रकला भी अपनी अलग विशेषता रखती है। इस काल की चित्रकला मे अलंकरण की विशेषता पाई जाती है जिससे वास्तविक भाव दबा सा जान पड़ता है। यह हमारे लिये बड़े दुर्भाग्य की बात है कि चित्रकला की ये अलौकिक कृतियाँ आज केनवास या चित्रपट पर उपलब्ध नहीं है बल्कि हम्पी के उन खंडहरों मे मिलती हैं जो अपनी सत्ता को मिटाने के लिए काल की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इन रमणीय चित्रों को देखकर तत्कालीन चित्रकारों की तूलिका को बरबस चूम लेने का जी करता है। इस काल में धार्मिक-सहिष्णुता भी कुछ कम न थी। राजा शैव या वैष्णव मत को मानते थे परन्तु जैन, ईसाई तथा मुसलमान सभी धर्मों के अनुयायियों के साथ समान व्यवहार करते थे।

इस प्रकार विजयनगर-राज्य हिन्दू-साम्राज्य तथा हिन्दू-संस्कृति का रक्षक था। मध्ययुग मे यह सबसे विशाल हिन्दू-साम्राज्य था। अतः गुप्त साम्राज्य से यदि इसकी तुलना की जाय तो कुछ अनुचित न होगा। अन्त मे पुण्यश्लोक, आर्य-संस्कृति के प्रतिष्ठापक इन राजाओं का अभिवादन करते हुए कविराज धोयी के शब्दों में हम यही प्रार्थना करते हैं कि—

"यावच्छम्भुर्वहति गिरिजासंविभक्तं शरीरं,
यावज्जैत्र कलयति धनु कौसुमं पुष्पकेतु।
यावत् राधारमणतरुणीकेलिसाक्षी कदम्ब,
तावज्जीयात् विजयनगरीराजकानां विलासः॥

परिशिष्ट

(१) दक्षिण-भारत के नायक नरेश

विजयनगर के शासको के इतिहास को जानने के पश्चात् यह आवश्यक हो जाता है कि उनके आधीनस्थ नायको के विषय मे भी कुछ परिचय दिया जाय। दक्षिण-भारत में विजयनगर साम्राज्य के अन्तर्गत कई प्रात के अधिपति थे जिनको नायक कहा जाता था। शासन की सुविधा के लिए विजयनगर नरेशों ने प्रातों मे नायक-शासन स्थापित किया था। अन्य राजाओं के राज्य को जीत कर उस विजित भू-भाग का प्रबध एक नायक के आधीन कर दिया जाता था। नायक सदा केन्द्रीय शासन की आज्ञानुसार काम करते थे। परन्तु यह आवश्यक न था कि नायक शासक केन्द्रीय-सरकार की आज्ञा से दान आदि दे अथवा भवन तथा मदिर आदि का निर्माण विजयनगर राजा के कथनानुसार करें। नायक बहुत से मामलो मे स्वतत्र थे। अतः यही कहा जा सकता है कि प्राचीन 'भुक्ति-शासक (प्रान्त-अधिपति) की तरह, ये नायक शासन करते थे। किसी-किसी विद्वान् का मत है कि नायक अपने प्रात मे पूर्ण स्वतन्त्र थे। परन्तु यह बात माननीय नही है। आधी स्वतत्रता उनको नायक होते ही मिल जाती थी। विजयनगर के नायको मे मदुरा, तजोर जिन्जी तथा इक्केरी के नायक मुख्य थे। सोलहवी शताब्दी के मध्य में तालिकोट के महायुद्ध के बाद नायक नरेश धीरे धीरे स्वतत्रता की घोषणा करने लगे। उनको विजयनगर राजाओ ने अपनी शक्ति से वश में रखने का प्रयत्न किया, परन्तु नायको ने दक्षिण-भारत के सुल्तानों से मदद ली। इन मुसलमान सुल्तानों ने पहले तो नायकों को सहायता दी परन्तु विजयनगर की शक्ति क्षीण हो जाने पर इन्होंने समय देख कर इन्हीं नायकों को भी परास्त किया और इनके राज्य को अपने शासन में सम्मिलित कर लि

प्राचीन समय में मदुरा का प्रांत पाण्ड्य लोगों के हाथ में रहा। ईसवी सन् के बाद से भिन्न-भिन्न वंश के हिन्दू-नरेश वहाँ राज्य करते थे। उत्तर-भारत का प्रभाव वहाँ पर्याप्त समय तक न रहा। चौदहवीं सदी में मलिक काफ़ूर ने इस प्रांत पर आक्रमण करके वीर पाण्ड्य को परास्त किया था। काफ़ूर के चले जाने के पश्चात् मुसलमानी सेना वहाँ रह गई थी। होयसल-वंश के राजा वीर बल्लाल ने मदुरा पर चढ़ाई की और उसको परास्त किया। विजयनगर के राजा बुक्क ने भी बल्लाल के मार्ग का अनुसरण किया। उसके पुत्र कम्पण ने मुसलमानों को वहाँ से भगा दिया और सारे भाग को अपने राज्य में मिला लिया। गंगदेवी ने 'मधुरा-विजयम्' में इसका पूरा वर्णन किया है। पाण्ड्य वंश के शासक नायक बनाये गये। सोलहवीं शताब्दी के मध्य में चोल देश के राजा वीर शेखर ने मदुरा के नायक को हटा कर शासन अपने हाथ में ले लिया। इससे पूर्व बहुत समय तक पाण्ड्य लोग विजय-नगर के अधीन होकर राज्य करते रहे। वीर शेखर के आक्रमण के कारण विजयनगर के राजा अच्युत राय को बड़ा क्रोध आया अतएव उसने अपने सेनापति को भेज कर पाण्ड्य शासन का अन्त कर दिया। अच्युत के प्रतिनिधि विश्वनाथ को मदुरा का प्रबन्ध सौंपा गया और चन्द्र-शेखर पाण्ड्य ने इच्छा-पूर्वक अपना शासन विश्वनाथ के हाथों में दे दिया। इस प्रकार विश्वनाथ मदुरा प्रान्त का राजा बन गया। पाण्ड्य में इसका वर्णन मिलता है कि विश्वनाथ ने दो वर्षों तक मदुरा में शासन किया। परन्तु 'कर्नाटक के शासक' नामक इतिहास ग्रन्थ में उसका राज्य-काल छब्बीस वर्ष उल्लिखित है। यह कहा जा सकता है कि विजयनगर के राजा अच्युत राय ने विश्वनाथ को योग्य समझ कर नायक नियुक्त किया था। विश्वनाथ शासन-सम्बन्धी कार्य में बड़ा चतुर था। उसने अरिअन्नमुडली नामक व्यक्ति को अपना मन्त्री बनाया। इस मन्त्री ने दक्षिण-भारत में रक्षा की एक नई पद्धति निकाली जिसे 'पालीगर' प्रणाली कहते हैं। इसके अनुसार देश को अनेक भागों में बाँट दिया गया था।

(क) मदुरा के नायक

इस प्रणाली को 'पालीगर' कहते थे और शासक 'पलैयम' नाम से प्रसिद्ध होता था। प्रत्येक 'पलैयम' नियमतः वीर योद्धा हुआ करता था। रक्षा के निमित्त सेना का सब प्रबन्ध इसी के ऊपर रहता था। जब आवश्यकता पड़ती तो मदुरा के विशाल दुर्ग की रक्षा इसी को करनी पड़ती थी। अतः 'पालिगर' पद्धत्ति से देश की रक्षा सरल हो गई थी। मदुरा की रक्षा के लिए नायक को परेशानी नहीं रहती थी। विश्वनाथ नायक एक प्रबल शासक समझा जाता था। वेंकट द्वितीय के ताम्रपत्र मे वर्णन मिलता है कि मदुरा के नायक वंश-परम्परा से विजयनगर के प्रतिनिधि होते थे। विश्वनाथ नायक ने केन्द्रीय सरकार की राज्य-सीमा बढ़ाने में अत्यधिक सहायता की थी। रामराय के समय मे ट्रावनकोर के शासक ने विद्रोह किया था। राजा के पुत्र विट्ठल के साथ मे विश्वनाथ ने ट्रावनकोर पर आक्रमण किया और वहा के राजा को परास्त किया। विजयनगर का प्रभुत्व वहा स्थापित कर, ट्रावनकोर नरेश को वार्षिक कर देने के लिए बाधित किया गया। वहा के शासक केरल वर्मा ने कर देना स्वीकार कर लिया और विश्वनाथ नायक की संरक्षता मे रहने लगा। इस प्रकार विश्वनाथ समस्त चोल और पाड्य प्रदेशो का स्वामी बन गया। पालिगर प्रणाली से उसे बड़ी सुविधा थी और सुचारु रूप से वह शासन करता रहा।

उसके पश्चात् कृष्णप्पा नायक सन् १५६४–७२ ई० तक शासन करता रहा। वह विजयनगर का आज्ञापालक तथा स्वामिभक्त नायक था। उसने कई मन्दिर बनवाये तथा नगर बसाये। उसके पुत्र वीरप्पा के समय मे मदुरा मे अशान्ति रही। लेखों तथा विदेशी यात्रियों के वर्णन से पता चलता है कि वीरप्पा नायक ने केन्द्रीय सरकार का विरोध किया तथा विद्रोह खड़ा करके विजयनगर सम्राट् को कर देना बद कर दिया। विजयनगर का सम्राट् वेंकट बहुत क्रोधित हुआ और उसने वीरप्पा को दण्ड देने की प्रतिज्ञा की। त्रिक्कराय-वशावली मे वर्णन मिलता है कि वेंकटराय ने मदुरा को एक बड़ी सेना लेकर घेर लिया था। फ्रासीसी

यात्री ने भी ऐसा ही लिखा है कि वीरप्पा को विजयनगर की सेना ने परास्त कर दिया। इससे प्रकट होता है कि वेङ्कटराय ने मदुरा के विद्रोह को शांत कर दिया और विजयनगर का प्रभुत्व पुनः स्थापित हो गया। वीरप्पा को हार माननी पड़ी और उसने वार्षिक कर देना स्वीकार कर लिया। तत्कालीन लेखों[1] से ज्ञात होता है कि सन् १५६५ ई० (वीरप्पा की मृत्यु) तक वेंकट का प्रभुत्व मदुरा पर बना रहा। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि वीरप्पा ने अपनी शक्ति के घमंड में विजयनगर के प्रति विद्रोह किया था, परन्तु थोड़े ही समय में वह दबा दिया गया। वीरप्पा को लाचार होकर विजयनगर की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। वेंकट राय इसी आक्रमण के सिलसिले में तंजोर भी गया था। वहाँ का नायक शिवप्पा बड़ा स्वामिभक्त था। अतः वेंकट राय को युद्ध नहीं करना पड़ा। सन् १५६५ ई० में वीरप्पा की मृत्यु हो गई और उसका पुत्र विश्वप्पा मदुरा का नायक नियुक्त किया गया। परन्तु इसका शासन सम्भवतः कुछ ही महीनों के लिए रहा। इसका प्रमाण यह है कि सन् १५६६ ई० के एक लेख में विश्वप्पा का छोटा भाई कुमार कृष्णप्पा द्वितीय मदुरा का नायक कहा गया है। सन् १५६७ ई० के एक ताम्र-पत्र में कुमार कृष्णप्पा पाड्य का राजा कहा गया है। कुमार कृष्णप्पा के समय की विशेष घटना उस वंश के मंत्री आर्यनाथ की मृत्यु मानी जाती है। वह कई नायकों के समय में ३८ वर्षों तक मंत्री तथा सेनापति का काम योग्यता से करता रहा। वास्तव में राज्य का सारा अधिकार उसी के हाथ में था। कुमार कृष्णप्पा बड़ा दानी नायक था। उसने रथ यात्रा के अवसर पर कई ग्रामों, वाटिकाओं तथा नाना प्रकार के आभूषणों को दान में दिया था। उसने मंदिरों में दीपक का प्रबंध करवाया। वह तुला-दान करके ब्राह्मणों को

---

१ रंगाचार्य भा० २ पृ० १३८६

सोना बाटा करता था । उसका शासन सद्व्यवहार तथा दान के लिए प्रसिद्ध था ।

इसके पश्चात् विश्वप्पा का पुत्र मुट्टू कृष्णप्पा मदुरा का शासक नियुक्त हुआ । पाण्ड्य इतिहास मे वह पाड्य देश का राजा कहा गया है । मुट्टू कृष्णप्पा ने अपने राज्य की आर्थिक अवस्था को सुधारने के लिए तूतीकोरिन प्रात मे मछली के व्यापार करने वाले ईसाईया से अधिक कर वसूल किया । लेखो में वर्णन आता है कि ईसाईयों को बाध्य होकर मदुरा के नायक को कर देना पडा । मुट्टू कृष्णप्पा बडा प्रभावशाली शासक था । इसने अपना राज्य कुमारी अन्तरीप तक विस्तृत किया था । उस भाग (मारव देश) में लका के मछली मारने वाले लोग रहा करते थे । मुट्टू कृष्णप्पा ने मारव प्रात मे सेतुपति वश की स्थापना की । ये लोग रामेश्वरम् नगर के रहने वाले थे । रामेश्वरम् के यात्रियो को कष्ट हुआ करता था । सेतुपति वश के सस्थापक मुट्टू कृष्णप्पा ने इसके निवारण करने का विचार किया । उसी की आज्ञानुसार मदुरा-नायको के गुरु को सेतुपति शासक ने रामेश्वरम् की यात्रा कराई और इन्हे सकुशल मदुरा पहुँचा दिया । इस कार्य से मुट्टू अत्यन्त प्रसन्न हुआ और सेतुपति को भूमि वस्त्र तथा आभूषण प्रदान किया । सेतुपति उदियन ने अन्य लोगो को परास्त कर मदुरा के प्रभुत्त्व को बढाया और उनको कर देने के लिए बाध्य किया । मुट्टू कृष्णप्पा ने उदियन को अपना प्रतिनिधि (वायसराय) घोषित कर दिया । वह जहा से कर वसूल करता था वहाँ के कर का आधा भाग मदुरा के नायक को भेज देता था और आधा स्वय रख लेता था । उदियन ने रामेश्वरम् मे एक दुर्ग बनवाया और राजा की तरह शासन करने लगा । उसने छः मत्री नियुक्त किये और रामेश्वरम् के पवित्र नगर मे 'यज्ञ' के लिए दान दिये ।

मुट्टू-कृष्णप्पा

मदुरा मे मुट्टू कृष्णप्पा के बाद तिरुमल नायक ने राज्य-प्रबंध अपने-

अपने हाथ में लिया। पर उसके लेखा मे विजयनगर के राजाओं का उल्लेख नहीं मिलता। इससे प्रकट होता है कि सन् १६२३ ई० में तिरुमल ने स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। इसका कारण यह था कि तिरुमल का सहायक रमापैय्या नायक सेनापति का काम कर रहा था। उसकी सहायता से तथा विजयनगर राज्य की दुर्बलता के कारण तिरुमल ने मदुरा को स्वतन्त्र राज्य बना दिया। जैसा पहले कहा जा चुका है कि सोलहवीं सदी के मध्य भाग मे बहमनी के सुल्तानों तथा विजयनगर के बीच तालिकोट के स्थान पर महान् युद्ध हुआ था। उसी युद्ध के पश्चात् विजयनगर का पतन आरम्भ हो गया। यही कारण था कि शनैः शनैः समस्त नायक-गण स्वतन्त्र हो गये। मदुरा का तिरुमल नायक ही सर्व प्रथम प्रांत-अधिपति था जो स्वतन्त्र हुआ। इसके बाद अन्य नायक भी स्वतन्त्रता की घोषणा करने लगे। तिरुमल का राज्य बहुत विस्तृत था और मदुरा, रामनद, तिनेवेली, कोयम्बटूर, सलेम, त्रिचनापल्ली तथा ट्रावनकोर के कुछ भाग उसमे सम्मिलित थे। विजयनगर के राजा तिरुमल ने श्रीरंग के विरुद्ध जिंजी के नायक की सहायता की। सुल्तानो की सहायता से उसे बचाने का प्रयत्न किया परन्तु वह असफल रहा। इस राजा ने मदुरा में विशाल मन्दिर तैयार कराये जिससे उसका नाम अमर हो गया है। मदुरा के नायकों के द्वारा निर्मित भवन तथा मन्दिर भारतवर्ष की स्थापत्य-कला मे विशेष स्थान रखते हैं। उनकी निर्माणशैली स्वतन्त्र समझी जाती है। वर्तमान समय में भी इन भवनों को देखने लिए दूर-दूर से लोग आते हैं। विदेशियों ने इन की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। ये भारत की स्थापत्य-कला के जीते जागते उदाहरण हैं। तिरुमल के पश्चात् उसका पुत्र मदुरा का राजा हुआ परन्तु उसके समय की कोई विशेष घटना उल्लेखनीय नहीं है।

तिरुमल नायक

उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके वंशज मुट्टु वीरप्पा का शासन मदुरा

में था, परन्तु नाबालिग होने के कारण राज्य का कार्य-भार रानी मंगमल्ल के हाथों मे रहा। मुद्दू वीरप्पा की माता रानी मगमल्ल बडे शान के साथ कई वर्षो (सन् १६८६ ई० से १७०६ ई०) तक शासन-कार्य करती रही। दक्षिण-भारत के लोग उसका नाम बडे गर्व के साथ स्मरण करते हैं। उसने अपने समय मे राज्य में अनेक भवन तथा मन्दिर निर्माण कराये। प्रजा के आने जाने की सुविधा के लिए राजमार्ग (सडके) तैयार कराई। कृषि की उन्नति के निमित्त तालाब खुदवाये। ऐसा कहा जाता है कि तिरुमल के समय मे जो कमी थी उसकी पूर्ति रानी ने की। मदुरा अत्यन्त वैभव पूर्ण और सुन्दर स्थान हो गया।

रानी मंगमल्ल

इतना होते हुए भी रानी मङ्गमल्ल के समय से ही राज्य की अवनति होने लगी। मुसलमानों की शक्ति दक्षिण-भारत मे बढ़ती जा रही थी। विजयनगर के पतन के बाद सुल्तानों की आखे नायक-रियासतों पर पडी। ज्यों ही मुसलमान दक्षिण की ओर बढे, त्यों ही सारे नायक लोग धीरे-धीरे उनके अधीन हो गये। मैसूर-राज्य की शक्ति बढती चली जा रही थी। इस राज्य के शक्तिशाली नरेशों ने नायक-राज्यो को मुसलमानों से छीन कर अपने कब्जे में कर लिया। विश्वनाथ नायक के समय में स्थापित ‘ पालिगर ’ प्रणाली का फल बुरा ही रहा। नायक लोग अपनी शक्ति स्थिर न रख सके। मदुरा के नायकों के अन्तिम काल में रानी मीनाक्षी का राज्य था। कर्नाटक के नवाब चान्दा साहब ने रानी मीनाक्षी को सन् १७३६ ई० में पकड कर कारागार में डाल दिया। फ्रासीसियो की सहायता से चान्दा साहब मदुरा प्रात का नवाब हो गया। इस प्रकार मदुरा के नायक राज्य का अन्त हो गया।

तजौर का प्रात सन् १५४१ ई० मे विजयनगर-राज्य में मिला लिया गया। कहा जाता है कि कम्पण ने इस भाग को चोल राजा से छीनकर अपने राज्य मे सम्मिलित कर लिया था। शिवप्पा नायक ही सर्व प्रथम व्यक्ति था जिसके हाथों में विजयनगर राजा ने इस प्रात का शासन-प्रबन्ध

दे दिया। शिवप्पा का विवाह अच्युत राय की बहन से हुआ था। अतः तंजौर का राज्य इस नायक को स्त्रीधन (पत्नी की सम्पत्ति) के रूप में मिला और उसी समय से शिवप्पा को राजा से 'नायक' का पद मिला। शिवप्पा के शासन की विशेषता यह थी कि वह सार्वजनिक कार्यों में बड़ी दिलचस्पी लेता था। उसका राज्य काल प्रजा के हित में ही व्यतीत हुआ। इसने तंजौर में शिवगङ्गा नामक एक विशाल दुर्ग तैयार कराया। खेतों की सिंचाई के निमित्त इसने शहर से बाहर एक लम्बा चौड़ा तालाब बनवाया जिससे लोगों को पर्याप्त पानी मिल सके। तिरुवन्नमलाई में शिवप्पा ने एक मन्दिर निर्माण कराया, जो अत्यन्त दर्शनीय था। शैव होते हुए भी शिवप्पा में अन्य धर्मों के प्रति सम्मान तथा सहिष्णुता का भाव भरा था। मुसलमान फकीरों की जीविका-निर्वाह के लिए इसने जमीन का एक हिस्सा दान में दिया था। यही नहीं, शिवप्पा के समय में पुर्तगालियों से गहरी मित्रता थी। देश में विदेशी व्यापार करते थे। व्यापार की अत्यन्त उन्नति थी। शिवप्पा में धार्मिक सहिष्णुता थी। अतएव वह अन्य धर्मावलम्बियों की भी सहायता किया करता था। अपनी राजधानी में ईसाईयों को उसने दो गिरजाघर बनाने की आज्ञा प्रदान की और उन्हें कुछ आर्थिक सहायता भी दी। तंजौर में ईसाईयों के सुन्दर भवन थे। वे राज्य में शांतिपूर्वक रहा करते थे। शिवप्पा के शासन-काल में ईसाईयों को यह ज्ञात न हुआ कि वे किसी अन्य धर्मी राजा के राज्य में निवास करते हैं। नेगापट्टम् में ईसाईयों की बस्ती थी। वे बड़ी संख्या में वहां रहा करते थे।

(ख) तंजौर के नायक-शिवप्पा

शिवप्पा का उत्तराधिकारी अच्युत नायक था। सम्भवतः उसके लम्बे शासन काल के पश्चात् इसने सन् १५७७ ई० में नायक के पद को सुशोभित किया। अच्युत के मंत्री का नाम गोविन्द दीक्षित था। वह कन्नड ब्राह्मण था और बहुत बड़ा विद्वान् था। अच्युत भी विद्वानों का आश्रयदाता था और बड़ा विद्या-

अच्युत

व्यसनी था। अच्युत नायक का शासन थोडे समय के लिए रहा। उसके बाद उसका पुत्र रघुनाथ तजौर का नायक हुआ। रघुनाथ ने विजयनगर राज्य से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। स्वतत्र होकर तजौर के नायको ने राज्य बढाने की इच्छा से अन्य राजाओ पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। बीजापुर के सुल्तान ने तजोर पर आक्रमण कर दिया और विजय-लक्ष्मी उसी के हाथ आई। बाधित होकर नायको ने बीजापुर के सुल्तान को कर देना स्वीकार कर लिया। फलस्वरूप दोनो राज्यों मे सन्धि हो गई; परन्तु तजौर तथा मदुरा मे बराबर विरोध चलता रहा। दोनो आपस मे लडते रहे। यही कारण है कि बीजापुर के सुल्तान ने तजोर को अधीनस्थ राज्य बना लिया। शिवाजी के पिता शाहजी ने सुल्तान की आज्ञानुसार तजौर को अपनी जागीर बना ली। शाहजी के पश्चात् व्यानकोजी (शिवाजी के भ्राता) तजौर पर शासन करते रहे। शिवाजी ने वहॉ चढाई कर पिता की जागीर मे से अपना भाग लिया। इस प्रकार १६७३ ई० के लगभग तजौर मे नायक शासन समाप्त हो गया और यह राज्य मरहठों के आधीन हो गया।

विजयनगर-राज्य मे जिञ्जी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। यह प्रात पलार नदी तक विस्तृत था। उत्तरी प्रात होने के कारण विजयनगर नरेश सदा उसके शासन पर ध्यान रखते रहे। सदाशिव राय के शासनकाल (सन् १५४२–६७ ई०) मे जिञ्जी की प्रधानता रही। उस प्रात के शासन के लिए सदा योग्य नायक नियुक्त किये जाते थे। विजयनगर के राजाओ ने यहा एक अभेद्य दुर्ग बनवाया था, जिससे शत्रु उसे साधारणतया ध्वंस न कर सके और दक्षिण मे उनका प्रवेश न हो सके। सदाशिव राय के समय मे जिंजी मे किसी प्रकार का विद्रोह नही हुआ। परन्तु तालिकोट के युद्ध के बाद ही वहा विप्लव की अग्नि प्रज्व-लित हो गई। जिजी के नायकों ने विजयनगर की संरक्षता मे पृथक् होकर स्वतत्रता की घोषणा की। नाम मात्र के लिए ये केन्द्रीय शासन की आज्ञा का पालन करते रहे। सन् १६१४ ई० से वेकटपति के शासन

(ग) जिञ्जी के नायक

काल ही मे जिजी के नायक पूर्णतया स्वाधीन हो गये थे। कुछ समय के पश्चात् विजयनगर शासक श्रीरग ने पुनः अपना आधिपत्य स्थापित करने के लिए जिजी पर चढाई की, परन्तु इसका फल अच्छा न रहा। मदुरा के नायक तिरुमल ने भविष्य मे युद्ध की आशका से जिजी की सहायता की ताकि उसका राज्य सुरक्षित रहे। विजयनगर के आक्रमण से जिंजी की रक्षा के लिए तिरुमल ने गोलकुण्डा के सुल्तान की सहायता मागी। सुल्तान ने जिंजी को विजयनगर के आक्रमण से बचा लिया, परन्तु स्वय उस राज्य को अपने अधीन कर लिया। दुर्बल होने के कारण जिंजी के नायको मे विरोध करने की शक्ति न रही। मदुरा के नायक तिरुमल ने इस घटना से दुःखी तथा अचम्भित होकर बीजापुर के सुल्तान से सहायता मागी। बीजापुर तथा गोलकुण्डा परस्पर विरोधी रियासतें थीं। तिरुमल ने इस झगडे से फायदा उठाने के लिए बीजापुर से निवेदन किया। तालिकोट के युद्ध मे सुल्तान आपस मे मेल का लाभ समझ गये थे, अतएव इस बार भी बीजापुर और गोलकुण्डा के बादशाहो ने मिलकर जिंजी और मदुरा पर चढाई की और दोनो नायको को युद्ध मे परास्त कर दिया। दोनो ने सन्धि कर सुल्तानो को वार्षिक कर देना स्वीकार कर लिया। उनके विरोध से तिरुमल को लाभ के स्थान पर गहरी हानि उठानी पड़ी। इस युद्ध मे छत्रपति शिवाजी के पिता शाहजी बीजापुर के सुल्तान की ओर से लडते रहे। जब तिरुमल ने बीजापुर के सुल्तान के पास सहायता के लिए निवेदन किया तो उसने शाहजी को अब्दुल्ला खॉ के साथ मदुरा भेजा। परन्तु जैसा कहा गया है कि इस प्रार्थना का फल बड़ा बुरा हुआ। उसी समय शाहजी ने जिजी के नायक को परास्त किया और इस प्रात के वे स्वय जागीरदार बन गये।

कर्नाटक प्रात मे इक्केरी का एक छोटा भाग था, जहा का नायक सदा विजयनगर के अधीन रहा। यहा का नायक एक लिंगायत शैव था। सदाशिव राय के राज्य-काल में सदाशिव नामक व्यक्ति ने राजा (विजयनगर के शासक) से बरकुर तथा मगलोर प्रान्त के शासन

करने की आज्ञा प्राप्त की। कहने का तात्पर्य यह है कि सन् १५६० ई० के लगभग राजाज्ञा प्राप्त कर सदाशिव इकेरी का नायक बन बैठा। वह सदा केन्द्रीय-शासक को कर भेजता रहा और उसकी आज्ञा के अनुकूल काम करता रहा। तालिकोट के महान् विध्वंसकारी युद्ध के पश्चात् सब नायक धीरे-धीरे स्वतन्त्र होते गये। इसी समय इकेरी भी स्वतन्त्र हो गया। इसका कारण यह न था कि सदाशिव नायक विजयनगर-शासक की संरक्षता से पृथक् होना चाहता था। इकेरी के जैन सरदार लिंगायतों के शासन के विरोधी थे। जैन होकर शैव-राजा के अन्तर्गत रहना सरदारों को खलता था। वे उस समय की प्रतीक्षा में जब वे लिंगायतों का सफल विरोध कर सके। सदाशिव के विरोधी होने से पूर्व ही जैन सरदारों ने विप्लव कर दिया। इस घरेलू युद्ध में जैन सरदार परास्त किये गये और वेंकटप्पा नायक ने इकेरी में स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया।

(ध) इकेरी के नायक सदाशिव

वेंकटप्पा अपने राज्य को शक्तिशाली बनाकर शासन करता रहा। इसको समकालीन नायकों के आक्रमण का डर था। अतएव जिंजी से पच्चीस मील दक्षिण में वेदनोर को इसने अपनी राजधानी बनाई। सन् १६४६ के समीप तंजौर के नायक शिवप्पा ने इकेरी पर आक्रमण किया। परन्तु इसमें उसे सफलता न मिली। बीजापुर की सेना ने इकेरी पर चढ़ाई की, परन्तु हार कर वापस चली गई। वेदनोर में इकेरी के नायक आदर्श-प्रणाली से शासन करते थे। उन्होंने शत्रुओं से सामना करने के लिए मजबूत किले तैयार कराये। इन किलों पर अधिकार करना सरल काम न था। यही कारण है कि शाहजी की अध्यक्षता में बीजापुर की सेना परास्त होकर वापस चली आई। प्रायः सौ वर्ष तक इकेरी के नायक वेदनोर में रह कर शासन करते रहे। उनके इतने लम्बे शासन-काल से यह प्रकट होता है कि सुप्रबन्ध के कारण प्रजा प्रसन्न थी और राजा की प्रबल शक्ति के कारण शत्रुओं को आक्रमण करने का साहस न होता था। मैसूर-राज्य में हैदरअली की उन्नति होने पर

वेंकटप्पा

दक्षिण-भारत के शासक उसके आधीन होते गये। उसने उनके राज्यों को जीत कर मैसूर-राज्य का विस्तार किया। हैदरअली ने सन् १७६० ई० केलगभग इकेरी पर आक्रमण किया और इस प्रकार इस प्रांत को हैदर ने अपने राज्य में मिला लिया।

दक्षिण-भारत में नायक-शासन

विजयनगर राज्य के शक्तिहीन होने पर तालिकोट के युद्ध के पश्चात् दक्षिण-भारत के नायक गण स्वतंत्र हो गये। उनका शासन करीब सौ वर्ष तक स्थिर रहा। हिन्दू राज्य के नष्ट हो जाने पर मुसलमान शासकों से नायकों का युद्ध होता रहा। बहमनी सुल्तानों के स्थान पर मरहठों तथा हैदर अली का आधिपत्य दक्षिण मे स्थापित हो गया। अतएव नायकों का राज्य इन्हीं के अन्तर्गत आ गया। धीरे-धीरे इन शासकों ने नायक राज्यों को अपने राज्य मे सम्मिलित कर लिया। सर्व प्रथम शाहजी की जागीर के के रूप मे मरहठा का शासन रहा, फिर शिवाजी और पेशवा के शासन तक उस पर मरहठों का अधिकार रहा।

नायक लोगों के शासन काल मे दक्षिण भारत की बहुत उन्नति हुई। उन लोगों ने 'पालिगर' प्रणाली को निकला। देश की रक्षा मे इससे पूरी सहायता मिली। शाहजी ने इस तरीके को नष्ट कर दिया। इस कारण से सेना-सम्बन्धी प्रबन्ध मे नायक लोग कमजोर पड गये। नायक लोगो का ध्यान जल सेना की ओर से भी हट गया। वे शत्रुओं का मुकाबिला करते रहे, पर नाविक-शक्ति कम हो जाने पर समुद्र पर विजय प्राप्त न कर सके। इनके नाश का यह भी एक मुख्य कारण था।

नायकों ने अपनी धार्मिक भावना के साथ-साथ धार्मिक-सहिष्णुता भी बनाये रखी। इन्होने साधुओ को जमीन दी और राजधानी में चर्च बनाने की आज्ञा दी। दक्षिण मे ईसाई धर्म का खूब विस्तार हुआ। पुर्तगाली पहले मित्रता का भाव रखते थे। परन्तु कारोमण्डल पर आधिपत्य स्थापित कर, इन लोगों ने हिन्दुओ के प्रसिद्ध तीर्थ स्थान रामेश्वरम् मे यात्रियो पर कर लगाना शुरू कर दिया। अतएव

धार्मिक जनता का राजा पर विश्वास न रहा। ये शासक धर्म की रक्षा न कर सके। जनता की सहानुभूति जाती रही और नायक-गण शनैः शनैः शक्ति-हीन होते गये।

समस्त नायको का राज्य समृद्धिशाली था। व्यापार की पूरी उन्नति थी। पुर्तगाली तथा डच लोगो के हाथ मे अधिक व्यापार आगया था। जब तक विदेशियों और नायको मे मित्रता रही, तब तक व्यापार मे पर्याप्त लाभ होता रहा। नायको की नाविक शक्ति कमजोर होने पर पुर्तगाली लोगो ने कारोमण्डल तथा पश्चिमी किनारे पर अपना प्रभुत्व जमाया। समुद्र के किनारे मोती निकालना तथा अन्य सामुद्रिक व्यापार इन्हीं के हाथों म रहा। उनकी समानता करना नायको की शक्ति के बाहर की बात होगई थी। नायक राजाओ का धन तथा वैभव कम होने लगा। राजाओं की आय तथा उनका प्रभाव घटने लगा जिसके कारण उनका अन्त हो गया।

नायको के शासन-प्रबन्ध का पता उनके सार्वजनिक कार्यों से लगता है। यो तो प्रत्येक नायक अपनी अपनी पृथक् मुद्रा रखते थे परन्तु उनके

सार्वजनिक-कार्य

सिक्के सर्वत्र चलते थे। नायक लोगो ने राजधानी मे अनेक भवन तथा मन्दिर बनवाये जो भारत की स्थापत्य-कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। इनकी एक पृथक् शैली तैयार हो गई थी। सभी ने इस कला-शैली की भूरि-भूरि प्रशसा की है। देश की रक्षा के निमित्त अभेद्य दुर्ग बनवाये गये थे, जिन पर अधिकार करके हैदरअली शक्ति-शाली बन गया था। जनता के हित के लिए नहर तथा तालाब खुदवाये गये थे जिनसे सिंचाई का काम अच्छी रीति से होता था। दान देने मे नायक गण किसी से पीछे न थे। सारे दक्षिण-भारत को धन, धान्य और वैभव पूर्ण बनाने मे नायकों का भी पर्याप्त हाथ था। परन्तु समय के परिवर्तन से मरहटो और हैदर अली की बढ़ती हुई शक्ति के सामने ये ठहर न सके और सदा के लिए काल के गाल में विलीन हो गये।

(२) राजधानी का परिवर्तन

विजयनगर इतिहास के अध्ययन के पश्चात् यह कहने की आवश्यकता नहीं मालूम होती कि राज्य का नाम राजधानी के नामकरण के बाद हुआ। राजाओं ने विजयनगर नामक नगर को स्थापित कर अपने साम्राज्य का विस्तार किया। परन्तु अभी तक यह विषय विवाद-ग्रस्त ही है कि इस नाम के नगर को सर्व प्रथम किस शासक ने स्थापित किया। यदि इस विषय की विवेचना की जाय तो ज्ञात होता है कि विजयनगर नामक नगर का संस्थापक कोई ऐसा व्यक्ति था जिसने दक्षिण भारत की भौगोलिक-स्थिति पर अच्छी तरह से विचार कर, राज्य की रक्षा निमित्त नये नगर की स्थापना की। इस विषय की जाच के लिए होयसल-राज्य के लेखों, विजयनगर के लेखों, साहित्यक-प्रमाणों तथा विदेशियों के यात्रा-विवरणों पर दृष्टि डालना परमावश्यक हो जाता है।

विजयनगर राज्य की स्थापना से पूर्व उसी भूभाग पर होयसल-वंश का राज्य था। उनके लेखों में 'विजयनगर' नामक नगर का उल्लेख नहीं मिलता। उनके लेखों में इसके लिए इन तीन नामों—(१) अनेगुंडी (२) हस्तिनावटी और (३) 'वीर विजय विरुपाक्षपुर' का उल्लेख मिलता है। एक लेख[1] में यह वर्णन मिलता है कि होयसल-वंश के प्रतापी नरेश वीर बल्लाल तृतीय ने अपने पुत्र के नाम पर राजधानी का नाम 'वीर विजय विरुपाक्षपुर' रक्खा। दूसरे लेख[2] में यह स्पष्टतया उल्लिखित है कि होयसल-वंश के नरेश विजय विरुपाक्षपुर में शासन करते थे। विजयनगर के शासक हरिहर द्वितीय के सन् १३८० ई० के लेख में विजयनगर का प्राचीन नाम 'विरुपाक्षपुर' मिलता है[3]। इससे पुरानी राजधानी का नाम

---

१ एपि० कर० भा० ६ पृ० ४३।   २ एपि० कर० भा० ११ पृ० ४।

३ मद्रास ए० रि० १९१६।

ज्ञात होता है। अतः इन लेखों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि विरुपाक्षपुर होयसल-वश की राजधानी थी। इसके दूसरे नाम के लिए विदेशी ऐतिहासिक पेई के कथन पर विश्वास करना पड़ता है। उसका कथन है कि राजा अनेगुडी मे शासन करता था। सम्भवतः बल्लाल तृतीय के समय मे यह होयसल राजाओ की दूसरी नगरी रही हो[१]। विद्वानों की राय है कि बल्लाल तृतीय ने तुंगभद्रा नदी के उत्तरी किनारे पर अनेगुडी नगर स्थापित किया था। दक्षिण की भौगोलिक-स्थिति पर विचार करने से यह बात सिद्ध होती है कि शत्रुओ से रक्षा करने के लिए बल्लाल ने इस नगर को अवश्य तैयार किया होगा। तुङ्गभद्रा के उत्तरी किनारे पर यह नगर बसाया गया था। बल्लाल तृतीय ने इसे सुरक्षित करने के लिए एक दुर्ग तैयार कराया। वास्तु-कला के ज्ञाता यह बतलाते हैं कि अनेगुडी की बनावट रगनाथ स्वामी के मन्दिर के सदृश थी। अतः इस आधार पर यही कहना पडता है कि होयसल वंशी राजा बल्लाल के समय में अनेगुडी एक प्रधान नगर था। सम्भवतः शासक ने इसी को अपनी राजधानी बना लिया। विजयनगर के लेखो से भी इसी बात की पुष्टि होती है। इन लेखों में अनेगुडी के लिए हस्तिनावटी का प्रयोग किया गया है, जिसका भाव एक ही है। एक लेख[२] में यह वर्णन पाया जाता है कि देवराय द्वितीय अनेगुडी दुर्ग या हस्तिनावटी मे थोडे समय के लिए निवास करता था। सन् १३६६ ई० में हरिहर द्वितीय का भी निवास स्थान हस्तिनावटी (अनेगुडी दुर्ग) वतलाया जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि होयसल राज्य की राजधानी अनेगुडी थी। दुर्ग के कारण वह स्थान सुरक्षित था। बल्लाल तृतीय ने रक्षा के निमित्त इसे स्थापित किया था।

होयसल-वश के उत्तराधिकारी विजयनगर के नरेशों ने अपनी अलग

---

१ सेवेल—ए फारगाटेन इम्पायर पृ० २५६।

२ एपि० कर० भा० ७ पृ० २८८

राजधानी बनाई, परन्तु राज्य की सीमा में स्थित हस्तिनावटी (अनेगाटी दुर्ग) में भी थोडे समय के लिए रहते थे। राज्य की यात्रा करते समय भी शासकगण वहा आकर रहते थे। अतएव यह बात निश्चत हो जाती है कि विजयनगर नामक स्थान से होयसला की नगरी भिन्न थी।

विजयनगर के शासकों ने अपनी राजधानी का नाम विजयनगर रक्खा। इस नगरी की स्थापना हेमकूट पर्वत पर तुगभद्रा नदी के दक्षिणी-भाग में हुई थी। इस नगर की स्थापना का यही कारण जान पड़ता है कि हिन्दू-शासक बहमनी के सुल्तानो से दूर रहना चाहते थे। होयसल-वश के उत्तराधिकारी होते हुए भी बुक्क तथा हरिहर ने राजधानी को परिवर्तित कर दिया। उन्होंने दक्षिणी-भाग को सुरक्षित समझ कर विजय-नगर की स्थापना अनेगुडी से दूर स्थान पर की।

इस विषय मे मतभेद है कि विजयनगर नामक राजधानी का सस्थापक कौन था ? न्यूनिज के कथन से प्रकट होता है कि होयसल-नरेश बल्लाल ही उस नये नगर की स्थापना की थी। उस समय इसका नाम 'होसपट्टन' (नया नगर) था[1]। कुछ विद्वान् इस मत के मानने वाले है कि होसपट्टन की स्थापना बल्लाल तृतीय ने की, परन्तु विजयनगर के शासक बुक्क प्रथम ने इसका नाम बदल कर 'विजयनगर' रक्खा[1]। इसी लेख में बुक्क को 'महाराजधिराज' कहा गया है। विद्वानो की धारणा यह है कि प्रजा ने बुक्क का अभिषेक हस्तिनावटी (नये नगर) मे किया और उस नगर का नाम 'विजयनगर' मे परिवर्तित कर दिया। एक विदेशी यात्री ने लिखा है कि नये नगर की स्थापना बुक्क ने की[2]। हम इस निष्कर्ष पर इस कारण भी पहुचते हैं कि बुक्क प्रथम से पूर्व शासक हरिहर की पदवी 'महाराज' की न थी। हरिहर के नेलोर के लेख[3] में वर्णन आता है कि हरिहर ने विद्यारण्य की सहायता से विजयनगर की स्थापना की। एक

---

१ एपि० कर० भा० ५। २ सेवेल—वही पृ० २२, २९९।
३ एपि० कर० भा० १०।

दूसरे एक लेख मे यह वर्णन आता है कि विद्यारण्य ने इस नगर की स्थापना की थी[1]। इसी बात की पुष्टि हरिहर द्वितीय के शृगेरी ताम्रपत्र से भी होती है। इसमे बुक्क के दान का वर्णन करते हुए यह लिखा है कि विद्यारण्य ने विजयनगर की स्थापना की[2]। इसमे कोई मौलिक विरोध ज्ञात नही होता। यह सभव है कि गुरु की आज्ञानुसार इन नरेशों ने अपनी राजधानी मे परिवर्तन किया हो। हस्तिनावटी का नाम बदल कर 'विजय-नगर' रक्खा गया। सम्भवतः सन् १३६८ ई० के बाद होयसल राजधानी को उसी अवस्था मे छोड कर 'विजयनगर' शासको ने नये स्थान को अपनी राजधानी बनाया, क्योंकि वे होयसलों के स्थानापन्न होते हुए भी पूर्ववर्ती राजा के यश के ध्वसकारक न थे। हरिहर द्वितीय के एक लेख मे विजयनगर को नई राजधानी बतलाया गया है[3]। उसमे बुक्क तथा हरिहर की समता कृष्ण तथा बलराम से और द्वारिका की समता विजयनगर से की गई है। इस प्रकार वर्णन मिलता है-[4]

अथानुजस्तस्य जगति प्रतीत· श्रीबुक्कराजो विजयाभिधानम्।

विजयनगर शासकों के एक लेख मे[5] राजधानी विजयनगर के साथ प्राचीन नगरों-अनेगुडी तथा हस्तिनावटी का नाम मिलता है। इसका तात्पर्य यह है कि प्राचीन राजधानी का नया नाम विजयनगर था। हरिहर तथा बुक्क के वशज इसी स्थान से शासन करते रहे। कम्पण की स्त्री गगदेवी ने अपने काव्य-ग्रथ 'मधुरा-विजयम्' मे स्पष्टतया लिख दिया है कि विजयनगर नामक नगर ही राजधानी थी—

तस्यासीद् विजया नाम, विजयार्जित संपदः राजधानी।

एक लेख[6] मे इसी प्रकार का वर्णन पाया जाता है—

---

१ एपि० कर० भा० ८। २ मद्रास एन्युवल रिपोर्ट १९१६।
३ एपि० कर० ५ पृ० ४४। ४ एपि० कर० भाग ११ पृ० ४२
५ एपि० कर० भाग ७ पृ० १४६। ६ एपि० कर० भाग ५ पृ० २३२

विजित्य विश्व विजयाभिधान विश्वोत्तरा या नगरी व्यधत्त।"
इस वर्णन के पश्चात् विवाद के लिए कोई स्थान ही नहीं रह जाता है और यह निश्चित रूप से सिद्ध हो जाता है कि विजयनगर के राजाओं ने अपनी नई राजधानी बनाई। परन्तु यह नगर (विजयनगर) होयसल राजधानी से सर्वथा भिन्न था। इसकी पुष्टि लेखों, यात्रियों के कथन तथा साहित्यिक प्रमाणों से होती है।

विजयनगर नामक नगर में बहुत समय तक अनेक राजा शासन करते रहे। परन्तु कालान्तर में आवश्यकता-वश राजधानी का परिवर्तन कर दिया

दूसरी राजधानी-पेनुगोंडा

करते थे। संगम के वंशज सदा बहमनी राज्य से युद्ध करते रहे। मुसलमानों के आक्रमण के भय से ही विजयनगर की स्थापना तुंगभद्रा के दक्षिण में की गई थी। परन्तु युद्ध के बराबर चलते रहने के कारण देवराय द्वितीय के पुत्र मल्लिकार्जुन के समय में राजधानी के परिवर्तन की आवश्यकता मालूम पड़ी। बहमनी सुल्तानों ने विजयनगर नरेशों को शक्ति-हीन तथा प्रभुत्व-रहित समझकर आक्रमण जारी रक्खा। यही कारण था कि पेनुगोंडा नामक स्थान को दूसरी राजधानी बनाया गया। विजयनगर से दक्षिण में सौ मील की दूरी पर पेनुगोंडा नगर स्थित था। यहां पर एक मजबूत किला भी बना था। अतएव मल्लिकार्जुन ने पेनुगोंडा को सुरक्षित समझ कर उसे अपनी राजधानी बनाया। शताब्दियों तक यही नगर राजधानी बना रहा। विजयनगर के दूसरे तथा तीसरे वंश के राजा पेनुगोंडा में शासन करते रहे। सन् १५७६ ई० में बीजापुर के सुल्तान ने पेनुगोंडा पर चढाई की। वहां का शासक (विजयनगर का चौथा वंश) श्रीरंग पराजित हो गया। मुसलमानों ने उसे पकड़ लिया परन्तु असंख्य धन देने पर मुक्त कर दिया।

उसके उत्तराधिकारी वेंकट ने इस बात को अत्यन्त आवश्यक समझा कि राजधानी को और दक्षिणी भाग में हटा दिया जाय। अतएव उसने

चन्द्रगिरि नामक सुन्दर स्थान को इस कार्य के लिए चुना । चन्द्रगिरि मे एक सुन्दर दुर्ग था । पठारी भाग मे इसकी स्थिति होने के कारण यह बहुत सुन्दर नगर था।

तीसरी राजधानी चन्द्रगिरि

कुछ लेखो[1] मे वर्णन मिलता है कि वेकट पेनुगोंडा मे शासन करता था, परन्तु इस उल्लेख का भाव यह है कि वह शासन-सम्बन्धी कार्यों के लिए राजकीय यात्रा के सिलसिले मे वहा जाया करता था। विजयनगर के नरेशों मे यह विशेषता थी कि वे राज्य मे भ्रमण किया करते तथा प्रजा की वास्तविक अवस्था की जानकारी प्राप्त करते थे। इसी सम्बन्ध मे सम्भवतः वेकट वहा गया हो। लेकिन यह निश्चत है कि उसने श्रीरग के मुक्त होने पर, शासन की बागडोर लेते ही, पेनुगोडा के स्थान चन्द्रगिरि को अपनी राजधानी बलाई । उस स्थान मे वेकट को नायको की सहायता प्राप्त थी । अतः नायकों की सहायता से सुल्तानों पर चढ़ाई करने के विचार से वेङ्कट ने चन्द्रगिरि को ही पसन्द किया । सालुव नरसिंह ने वहा एक विशाल दुर्ग तैयार कराया था । कृष्णदेवराय तथा अच्युत को भी चन्द्रगिरि प्रिय था और वे वहा वर्ष मे कुछ काल तक निवास किया करते थे। वेङ्कट ने जब राजधानी का परिवर्तन किया तब बडे धूमधाम के साथ नये नगर मे प्रवेश किया। उस समारोह के अवसर पर राजा की रानी भी थी। जलूस मे हाथी, घोडे तथा मनुष्यो का अपूर्व जमघट था। वेङ्कट वहा 'स्वर्ण-भवन' मे रहने लगा। सब सामन्त तथा नायक लोग वहा आते थे और राजा को भेट देते थे। फिरिस्ता ने लिखा है कि वेङ्कट ने चन्द्रगिरि पर स्थित होकर गोलकुण्डा पर चढ़ाई की। एक लेख[2] से भी फिरिस्ना के कथन की पुष्टि होती है। गोलकुण्डा पर विजय प्राप्त करने का उल्लेख कई लेखों[3] में पाया जाता है। अतः इससे प्रकट

---

१ एपि० कर० भा० ७ व १२। २ एपि० कर० भा० १२

३ एपि० कर० भा० ७, १६ पृ० २६७

होता है कि राजधानी के परिवर्तन से वेङ्कट की शक्ति बढ़ गई। सामंतो तथा नायको ने सहायता पहुँचाई। पेनुगोंडा के छोड़ने का फल अच्छा ही हुआ। विजयनगर के शासक अन्तिम समय तक चन्द्रगिरि में ही शासन करते रहे।

अतएव उपर्युक्त विस्तृत विवरण से यही प्रकट होता है कि विजय-नगर नरेश मुसलमानो (बहमनी सुल्तानों) के आक्रमण के भय से से अपनी राजधानी बदलते रहे और क्रमशः दक्षिण की ओर हटते रहे। इन शासको ने विजयनगर से पेनुगोंडा तथा वहाँ से चन्द्रगिरि को अपनी राजधानी बनाई। ये स्थान सुरक्षित होते हुए भी विजयनगर राजाओं की शक्ति-क्षीण होने के कारण मुसलमानो द्वारा ले लिये गये। यही इस साम्राज्य की विभिन्न राजधानियों की संक्षिप्त कथा है।

---

(३) विजयनगर-इतिहास-सम्बन्धी सामग्री

वर्तमान समय मे भारत के किसी प्राचीन राजवंश अथवा साम्राज्य का इतिहास लिपिबद्ध नही मिलता। परन्तु इससे यह अनुमान करना अनुचित होगा कि भारतियो की इतिहास मे अभिरुचि नहीं थी। ये पारलौकिक विषयों का चिंतन करते हुए भी इतिहास की महत्ता से अनभिज्ञ न थे। इतिहास को पढना तथा सुनना हमारी प्राचीन-शिक्षा में सम्मलित था तथा एक प्रधान अग था। यह कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक घटनाओ को क्रमबद्ध लिखने की परिपाटी इस देश मे नहीं थी। फलतः विजयनगर के इतिहास की सामग्री भी एकत्र उपस्थित नहीं मिलती। यह नाना स्थानो मे बिखरी हुई है। इन्ही सबको एकत्रित कर इस साम्राज्य का इतिहास तैयार किया जाता है। विजयनगर के इतिहास के निम्नलिखित साधन हैं—

(१) उत्कीर्ण लेख (२) साहित्य (३) शिल्पकला (४) मुद्राये (५) पुर्तगाली तथा मुसलमान यात्रियो के यात्रा-विवरण (६) मुसलमान इतिहास-लेखको के ग्रन्थ।

१. उत्कीर्ण लेख

भारत के किसी भी प्राचीन काल का इतिहास देखा जाय तो यह पता चलता है कि उसके साधनों मे उत्कीर्ण लेखो का महत्त्व-पूर्ण स्थान है। समस्त ऐतिहासिक सामग्रियों मे उनका स्थान सर्वोपरि है। विजयनगर के इतिहास को जानने मे लेखो से अत्यन्त अधिक सहायता प्राप्त हुई है। प्रायः प्रत्येक राजाओं के शासनकाल के अनेक लेख प्राप्त होते हैं। विजयनगर के लेख अधिकतर ताम्रपत्रों तथा प्रस्तर-खण्डो पर उत्कीर्ण मिलते हैं। इन लेखों से राजाओ के जीवन-वृत्त का पता चलता है। कभी-कभी राजाओ के विशिष्ट कार्यों का भी उल्लेख इन लेखो मे किया गया मिलता है। इन उत्कीर्ण लेखों

के द्वारा तत्कालीन शासन-प्रणाली, सामाजिक जीवन तथा धार्मिक अवस्था का परिचय मिलता है। ताम्र-पत्रो मे दान का अधिक उल्लेख पाया जाता है जिससे विजयनगर शासको की धार्मिकता तथा दयालुता ज्ञात होती है।

२ संस्कृत तथा तेलुगु साहित्य

विजयनगर की ऐतिहासिक सामग्रियो मे संस्कृत तथा तेलुगु-साहित्य का विशेष स्थान है। इस समय मे आचार्य सायण ने वेदो पर भाष्य लिखा। उनकी पुष्पिका मे सायण ने सर्वत्र विजयनगर राजाओ के नाम का उल्लेख किया है। सायण के भ्राता माधवाचार्य ने भी धर्मशास्त्र तथा वेदान्त पर अनेक पुस्तको की रचना की। विजयनगर राजाओ की आज्ञा से उन पुस्तको की रचना होती थी, अतएव इन ग्रथो मे शासको का नामोल्लेख होना स्वाभाविक ही था। ये ग्रन्थकार विजयनगर-राज्य मे मन्त्री पद को सुशोभित करते थे। अतः ऐतिहासिक विवरण इनके ग्रन्थो मे ठीक ठीक पाये जाते है। सायण तथा माधव के ग्रन्थो का वर्णन पहले किया गया है। यहा इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि सायण के भाष्य तथा माधव के ग्रन्थो से तत्कालीन इतिहास पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है।

इसके अतिरिक्त तेलुगु भाषा मे भी अनेक प्रामाणिक ग्रथो की रचना हुई जो इस राज्य के इतिहास जानने मे अत्यन्त सहायक हैं। कम्पण की स्त्री ने 'मधुरा-विजयम्' नामक पुस्तक की रचना की जिससे मुसलमानो के परास्त किये जाने का हाल मालूम पड़ता है। कृष्णदेव राय ने राज नीति पर 'आमुक्तमाल्यम्' नामक ग्रन्थ लिखा। विजयेन्द्र तथा पटकुश ने धर्म पर सारगर्भित पुस्तके लिखी। वेङ्कट सेनापति अनन्त की लिखी 'काकुस्थ-विजयम्' ऐतिहासिक सामग्री से भरी पडी है। अनेक ऐसी पुस्तकें मिलती हैं जिससे तत्कालीन राजनैतिक तथा धार्मिक अवस्था का ज्ञान होता है। जैनियो के रचित ग्रन्थ ऐतिहासिक उल्लेखो के साथ ही उनके धर्म की महत्ता को भी बतलाते हैं।

पुर्तगाली-साहित्य मे भी ऐसी पुस्तके उपलब्ध हैं जिसमें विजयनगर राज्य की घटनाओ का उल्लेख पाया जाता है। पुर्तगाली राजदूत विजय-

नगर दरबार में आते रहते थे। उनका समुचित स्वागत भी होता था। हिन्दू-राजाओं से उन्होने व्यापारिक-सन्धि भी की। इन सबका विवरण पुर्तगालियो ने लिखा है।

३ शिल्पकला

किसी भी जाति तथा राज्य की उन्नति का अनुमान उसकी शिल्प-कला से किया जा सकता है। विजयनगर के शासन-काल मे शिल्पकला को विशेष स्थान प्राप्त था। कला के प्रत्येक अङ्ग की उन्नति राजाओं तथा उनके सामतो के शासन काल मे हुई। कला के इतिहास में विजयनगर की एक पृथक् शैली (School) स्थापित हो गई है। परन्तु इसके उदाहरण कम पाये जाते हैं। दक्षिण-भारत में सर्वत्र इसी शैली का अनुकरण होता रहा। तजौर तथा मदुरा के मन्दिरो से उस समय की शिल्पकला की विशेषता जानी जा सकती है।

४. मुद्राये

इतिहास के निर्माण में तत्कालीन मुद्राओ का भी पर्याप्त स्थान रहता है। भारत के इतिहास मे कितने ऐसे काल-विभाग हैं जिनके अस्तित्व का परिचय केवल मुद्राओ से ही मिलता है। इससे उस समय की व्यापारिक अवस्था का भी ज्ञान होता है। सिक्कों से राजाओ के नाम तथा उन पर बनी आकृतियों से उनके इष्ट-देव का ज्ञान होता है। उनको देखने से प्रकट हो जाता है कि अमुक राजा शैव या वैष्णव था। विजयनगर के सिक्कों पर शिव, नन्दी की आकृतियाँ पाई जाती हैं। लक्ष्मी के चिह्न से वैष्णव होने की बात सिद्ध होती है। इनसे यह भी मालूम पडता है कि सर्व प्रथम कृष्णदेव राय ने सिक्कों पर नागरी अक्षर खुदवाये। इस प्रकार सिक्कों से इतिहास का अनेक बातें ज्ञात होती हैं।

५. विदेशी यात्रियों के यात्रा-विवरण

भारतीय इतिहास के निर्माण मे विदेशी यात्रियो के यात्रा-विवरणो से बहुत अधिक सहायता मिली है। विजयनगर राज्य में पुर्तगाली, इटालियन तथा मुसलमान यात्रियो का आवागमन जारी रहा। इन लोगो

के यात्रा-विवरण से तत्कालीन शासन, धर्म, समाज, व्यापार तथा राजा की दैनिक जीवन सम्बन्धी बातों का पता लगता है। अब्दुर रज्जाक तथा फिरिस्ता का नाम मुसलमान यात्रियों में प्रधान है। इनका विवरण अत्यन्त प्रामाणिक तथा सारगर्भित समझा जाता है। इटली देश के यात्री निकोलो ने भी राज्य का सुन्दर वर्णन किया है। पुर्तगाली पादरियों के अतिरिक्त पेई, फ्रेडरिक तथा बारबोसा लिखित वर्णन विजयनगर के इतिहास पर प्रचुर प्रकाश डालते हैं। इनके अतिरिक्त पुर्तगाली राजदूत का विवरण तत्कालीन व्यापार का परिचय देता है।

इस प्रकार विजयनगर के इतिहास की सामग्री इन विभिन्न लेखों, ग्रन्थों तथा यात्रा-विवरणों में बिखरी पड़ी है। इन सामग्रियों का उचित उपयोग करके ही विजयनगर का सच्चा इतिहास लिखा जा सकता है। आज कल विजयनगर के इतिहास के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने खोज की है जिनमें डा० कृष्णस्वामी, हेरास तथा सालातोर का नाम प्रसिद्ध है। इनकी पुस्तकें मौलिक हैं तथा इस साम्राज्य के इतिहास को जानने के लिए अत्यन्त उपयोगी तथा आवश्यक हैं।

—समाप्त—